नया ज्ञानोदय

अक्टूबर 2020
पृष्ठ 96
40 रुपये

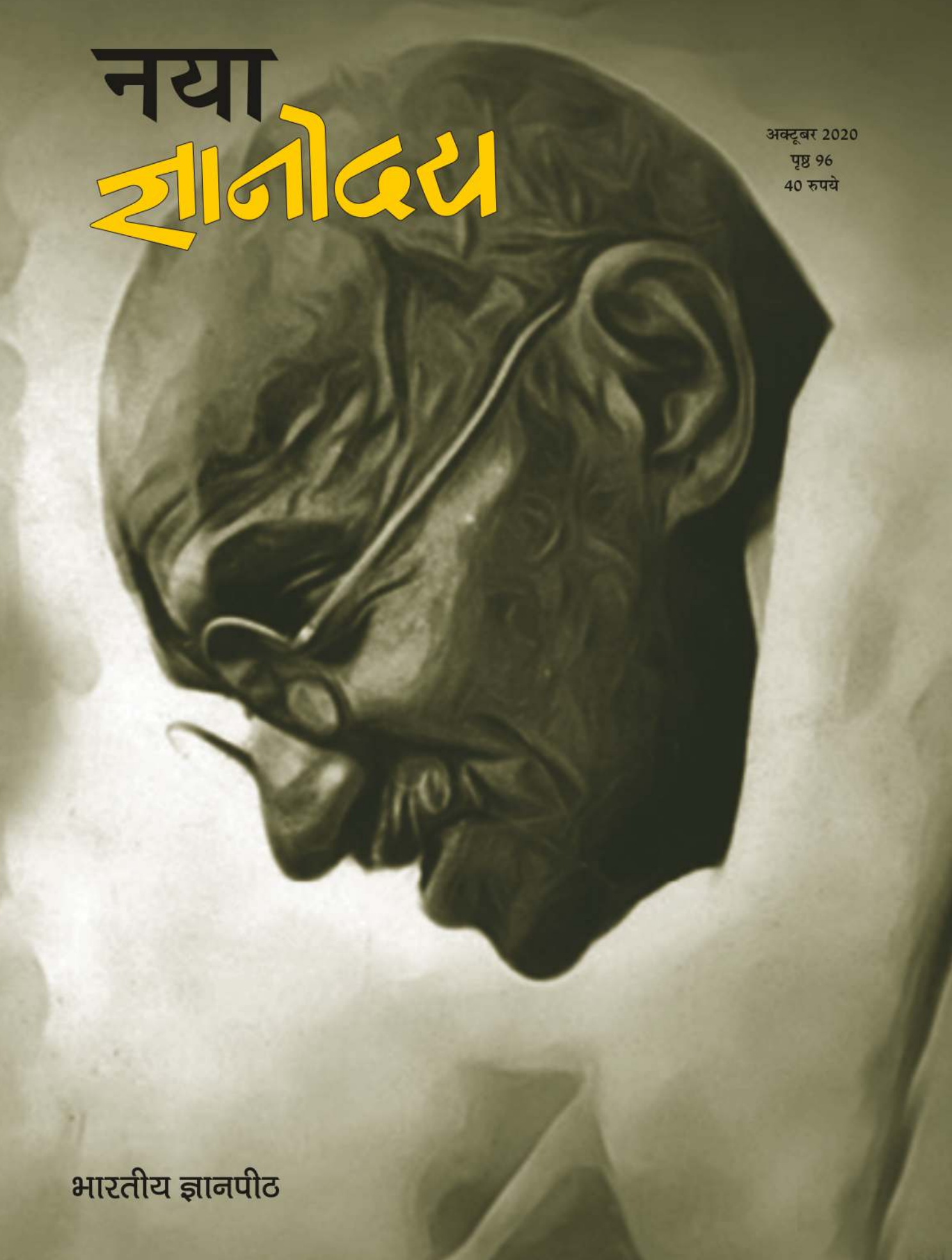

भारतीय ज्ञानपीठ

भारतीय ज्ञानपीठ
संस्थापक
श्रीमती रमा जैन
श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन

नया ज्ञानोदय

साहित्य, समाज, संस्कृति और कलाओं पर केन्द्रित

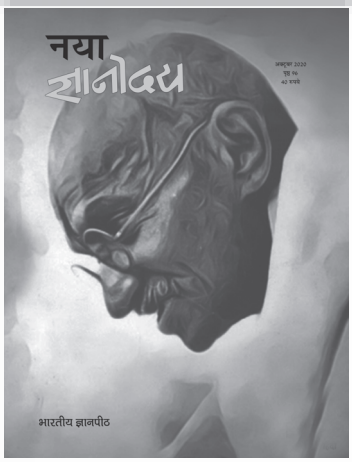

अंक 210 | अक्टूबर 2020

सम्पादक
मधुसूदन आनन्द

सम्पादकीय सहयोगी
महेश्वर

साहू अखिलेश जैन
प्रबन्ध न्यासी, भारतीय ज्ञानपीठ

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नई दिल्ली-110 003
फोन : 011-2462 6467, 2469 8417, 4152 3423
ई-मेल : nayagyanoday@gmail.com / bjnanpith@gmail.com
वेबसाइट : www.jnanpith.net

Naya Gyanodaya
A Literary Monthly Magazine
Editor : Madhu Sudan Anand
Language : Hindi
Published by **Bharatiya Jnanpith**
18, Institutional Area, Lodi Road,
New Delhi-110 003

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से भारतीय ज्ञानपीठ का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

मूल्य :
40 रुपये

व्यक्तियों के लिए :
वार्षिक : 400 रुपये / त्रैवार्षिक : 1100 रुपये
पंचवार्षिक : 1800 रुपये / आजीवन : 7000 रुपये

संस्थाओं के लिए :
वार्षिक : 450 रुपये / त्रैवार्षिक : 1300 रुपये
पंचवार्षिक : 2200 रुपये / आजीवन : 7000 रुपये

नया ज्ञानोदय रजिस्टर्ड पोस्ट से मँगाने हेतु एक वर्ष का डाक व्यय रुपये 250/- अतिरिक्त

विदेशों के लिए :
हवाई डाक : एक अंक 6 डॉलर / वार्षिक 60 डॉलर

नया ज्ञानोदय की पीडीएफ फाइल ई-मेल से प्राप्त करने हेतु शुल्क 10 डॉलर वार्षिक (विदेश), 200 रुपये वार्षिक (भारत)
विशेष जानकारी के लिए marketing@jnanpith.net **पर सम्पर्क करें**

शुल्क 'भारतीय ज्ञानपीठ' (Bharatiya Jnanpith) के नाम से उपर्युक्त पते पर भेजें।
(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)

आवरण चित्र : इंटरनेट के सौजन्य से, आवरण-सज्जा : महेश्वर, भीतरी रेखांकन : संदीप राशिनकर, साज-सज्जा : सीमा चौहान

www.jnanpith.net

साहित्य, समाज, संस्कृति और कलाओं पर केंद्रित

नया ज्ञानोदय मासिक पत्रिका के

वार्षिक सदस्य बनें

व्यक्तियों के लिए	संस्थाओं के लिए
वार्षिक : 400 रुपये / त्रैवार्षिक : 1100 रुपये	वार्षिक : 450 रुपये / त्रैवार्षिक : 1300 रुपये
पंचवार्षिक : 1800 रुपये / आजीवन : 7000 रुपये	पंचवार्षिक : 2200 रुपये / आजीवन : 7000 रुपये

नया ज्ञानोदय रजिस्टर्ड पोस्ट से मँगाने हेतु एक वर्ष का डाक व्यय रुपये 250/- अतिरिक्त

विदेशों के लिए हवाई डाक : एक अंक 6 डॉलर / वार्षिक 60 डॉलर

नया ज्ञानोदय की पीडीएफ फाइल ई-मेल से प्राप्त करने हेतु शुल्क
10 डॉलर वार्षिक (विदेश), 200 रुपये वार्षिक (भारत)
विशेष जानकारी के लिए marketing@jnanpith.net **पर सम्पर्क करें**

शुल्क 'भारतीय ज्ञानपीठ' (Bharatiya Jnanpith) के नाम से भेजें।
(केवल मनीआर्डर / चेक / बैंक ड्राफ्ट से)

सम्पादक : **मधुसूदन आनन्द** | सह-सम्पादक : **महेश्वर**

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110 003
फोन : 011-2462 6467, 2469 8417, 4152 3423 ई-मेल : nayagyanoday@gmail.com / bjnanpith@gmail.com

www.jnanpith.net

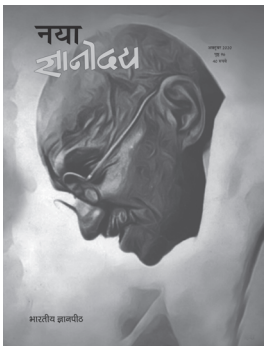

साहित्य, समाज, संस्कृति और
कलाओं पर केन्द्रित

अंक : 210
अक्टूबर : 2020
पृष्ठ : 100 (आवरण सहित)

www.jnanpith.net

अनुक्रम

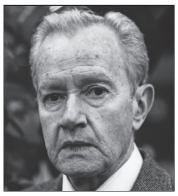
जुआन रुल्फो

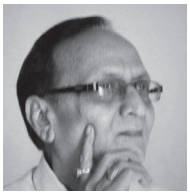
महावीर राजी

पुरुषोत्तम अग्रवाल

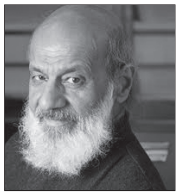
सुधीर चन्द्र

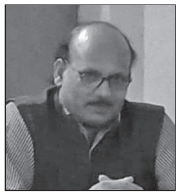
अरविन्द त्रिपाठी

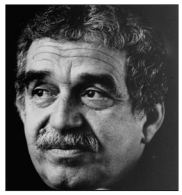
मार्खेज़

यह समय / 04
गाँधी को मानो या मरो : मधुसूदन आनन्द

चिट्ठियाँ / 05

कथा-कहानी

अन्तिम संस्कार का खेल... : तेजेन्द्र शर्मा / 6
पराँठा ब्रेकअप : क्षमा शर्मा / 13
सतह पर चाँद : रजनी गुप्त / 17
अमानुष : अपूर्व जोशी / 26
प्रेम का शोकगीत : शैलेन्द्र सागर / 28
अब इस तरह! : प्रकाश कान्त / 35
चुका नहीं हूँ मैं अभी : महावीर राजी / 38

मेक्सिको की कहानी

तुम्हें कुत्तों का भौंकना भी सुनाई नहीं देता ? : जुआन रुल्फो / 45

लातिन अमेरिकी कहानी

ट्रैमोंटाना : गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़ / 48

फिलिस्तीनी कहानी

आधी रात में उम्म कुल्थुम : नथाली हैंडेल / 51

कविताएँ

कुलदीप कुमार / 54
उमा शंकर चौधरी / 55
रवीन्द्र प्रजापति / 58
नरेन्द्र पुंडरीक / 59
सदानन्द शाही / 60
राजेन्द्र उपाध्याय / 62
अश्वघोष / 63
चित्रा मुद्गल / 64
सुलोचना वर्मा / 64
आर.सी. शुक्ला / 65
शहनाज जाफर बासमेह / 67

लोग भूल गए हैं!

राजनीति के जलसाघर से श्रीकान्त वर्मा : अरविन्द त्रिपाठी / 68

गाँधी-विचार

मज़बूती का नाम महात्मा गाँधी : पुरुषोत्तम अग्रवाल / 72
गाँधी की असम्भव अनिवार्यता : सुधीर चन्द्र / 74
सतह पर नहीं होता अहसास : प्रियदर्शन / 75
प्रतिरोध आत्म चेतना का एक जागृत रूप : अच्युतानन्द मिश्र / 76

डायरी

अपने को समृद्ध करते हुए : जयशंकर / 78

समीक्षा

स्त्री विमर्श का समवेत स्वर! : सुधांशु गुप्त / 84
मज़दूर बस्ती का इतिहास जो कहीं दर्ज नहीं : अरुण होता / 86
यह ग़ज़ल का रचना उत्सव है : ज्ञानप्रकाश विवेक / 88
घर बचाने की ज़िद की कहानियाँ : योगिता यादव / 90
यथार्थ और फैंटेसी की विरल कहानियाँ : रमेश अनुपम / 91

साहित्यिक समाचार / 94

यह समय

गाँधी को मानो या मरो

मधुसूदन आनन्द

यह में खेद है कि कोरोना की महामारी के कारण हम नया ज्ञानोदय नियमित रूप से नहीं छाप पा रहे हैं। पिछले संयुक्तांक (अप्रैल-जुलाई 20) का हमने पहले पीडीएफ जारी किया और फिर इस आशा के साथ कि स्थितियाँ सामान्य होंगी, हमने उसे छपने के लिए भी भेज दिया। लेकिन हमारा डाकघर उसे (एकमुश्त) भेजने के लिए तैयार नहीं हुआ। चुनांचे उसे स्पीडपोस्ट/रजिस्टर्ड डाक से पाँच-पाँच, दस-दस कॉपियाँ करके भेजना पड़ा। इन परिस्थितियों में हम अगस्त, सितम्बर के अंक छाप ही नहीं पाए। अब अक्टूबर का अंक पीडीएफ के जरिए आपके पास भिजवाया जा रहा है।

हमने चार प्रमुख विद्वानों—पुरुषोत्तम अग्रवाल, सुधीर चन्द्र, प्रियदर्शन और कवि अच्युतानन्द—से गाँधी पर आग्रहपूर्वक लिखवाया है। पिछले अंक में भी हमने गाँधी पर तीन लेख दिए थे। मानव जाति उपभोग की संस्कृति छोड़कर यदि गाँधीवादी विचारों पर चले तो उसका बचना सम्भव है। नहीं तो मनुष्य जाति को कोरोना जैसे भयावह संकटों का सामना करना पड़ेगा। ऐसी महामारी भविष्य में परमाणु हथियारों से भी सैकड़ों-लाखों गुना ज्यादा विनाश करेगी। हाल ही में एक दार्शनिक और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के 'फ्यूचर ऑफ ह्यूमैनिटी इंस्टीट्यूट' अर्थात् मानवता का भविष्य नामक विभाग में सीनियर फैलो टोनी ओर्ड ने कहा है कि 20वीं शताब्दी के मध्य से लेकर आज तक हुई सामूहिक प्रगति से मनुष्य जाति ने जो क्षमता प्राप्त कर ली है, वह इतनी भयावह है कि उससे एक दिन मनुष्य जाति ही विलुप्त हो सकती है। मनुष्य जाति ने हिरोशिमा और नागासाकी (जापान) पर दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान हुए परमाणु बम के हमले के बाद यह प्रतिज्ञा सी कर ली थी कि 'अब कभी दुबारा' परमाणु हमले की बात सोची भी नहीं जाएगी। लेकिन फिर भी देश नए से नए परमाणु बम बनाने में लगे हैं। टोनी ओर्ड कहते हैं कि सम्भावना इतनी ज्यादा है कि इस बात को इस तरह कहना चाहिए कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद आज तक कोई परमाणु हमला नहीं हुआ है। यानी परिस्थितियाँ तो कई बार बनीं मगर हर बार संयोग से सामूहिक विवेक ने बचा लिया। इधर सभी देशों ने 'जैव अस्त्र' जैसे खतरनाक कार्यक्रम न चलाने की प्रतिबद्धता जरूर दिखाई है, लेकिन माना जाता है कि प्राय: हर बड़ा देश चोरी-छिपे जैव अस्त्र बनाने के प्रयास में लगा हुआ है। चीन के हुआन प्रान्त से आया कोरोना का नया वायरस तो बस एक झाँकी है, मनुष्य ने अगर सद्बुद्धि से काम नहीं लिया तो आगे ऐसे बैक्टीरिया, वायरस या परजीवी विषाणु भी सामने आ सकते हैं जो इस सुन्दर पृथ्वी पर मनुष्य जाति ही नहीं, समस्त जीवन का ही खात्मा कर सकते हैं। यह जीवाणु कोई तानाशाह देश मनुष्य-प्रयत्न से भी बना सकता है और जीवन और वातावरण के साथ लगातार हो रही भीषण छेड़छाड़ के कारण खुद भी ऐसा खतरनाक जीवाणु अस्तित्व में आ सकता है। मनुष्य का जुनून आज लालच को प्रगति और विकास के लिए एक जरूरी मूल्य मान रहा है जबकि गाँधी मानते थे प्रकृति से उतना ही लो जितना एकदम जरूरी हो। गाँधी सादा जीवन, उच्च नैतिकता, सत्य और अहिंसा के पुजारी रहे हैं, हालाँकि युद्धों के मौकों पर उनके विचार तक डगमगा गए थे। दक्षिण अफ्रीका में बोअर के युद्ध में और दूसरे महायुद्ध में उन्होंने इंग्लैंड का समर्थन किया और अँग्रेजों का साथ दिया। लेकिन इसके बावजूद वे आज भी एक ऐसे 'आइकन' हैं, जिनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। वे कुल मिलाकर सत्य और अहिंसा का सन्देश देते हैं जो आज भी प्रासंगिक है।

बहरहाल गाँधी पर चार लेखों के अलावा इस अंक में तीन विदेशी कहानियाँ, सात हिन्दी कहानियाँ, ग्यारह कवियों की कविताएँ और अन्य पठनीय सामग्री भी शामिल है। आशा है यह अंक आपको पसन्द आएगा।

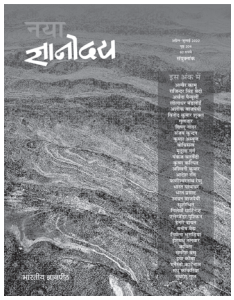

संयुक्तांक 2020

नया ज्ञानोदय का संयुक्तांक 2020 मिला। ऐसा लगा जैसे इन बन्द पड़े महीनों में अपने आपको भीतर कहीं बन्द करके सहेजी जा रही थीं रचनाएँ कि जिस दिन पट खुलेंगे, आप परोस देंगे पाठकों के सामने विविधताओं से भरा पिटारा कि लो, पढ़ो, अब अँधेरा दूर हो गया है! इस बीच डर के मारे हमने अख़बार लेकर पढ़ना बन्द कर दिया था, पत्रिकाएँ कोई भी नहीं छप रही थीं, वाकई अँधेरा-सा छा गया था।

आपने वह अँधेरा दूर किया है—हर विधा पर सुचयनित सामग्री। देवीप्रसाद मिश्र, कुमार अम्बुज और विनोद कुमार शुक्ल की कविताएँ बहुत अच्छी लगीं। विदेशी भाषाओं से ली गई कहानियाँ दिल को छूने वाली हैं! और आपका 'कोरोना में कृतित्व' जो सन्देश देता है, वही भाषा भी आपने ली है— ''बचेगा वही, जो जनमानस से जुड़ा होगा।'' आपका सम्पादकीय भी समय की दहशत और लेखकों की व्यग्रता को दर्शाता है, सादा शब्दों में, जनमानस से जैसे जुड़ने के लिए—जुड़ जाने के लिए, बिना किसी भारी-भरकम बौद्धिकता लिए। इस विषय पर गहन बौद्धिक आलेख भी लिखा जा सकता है, लेकिन आपने वह नहीं लिखा क्योंकि उसे पूरा पढ़ने वालों की संख्या सीमित है। साहित्य जनमानस से जुड़ा हो, जनमानस तक पहुँचे, इससे बड़ा सरोकार और क्या होगा? 'नया ज्ञानोदय' अपने उद्देश्यों में सफल हो और ऐसी ही सुचयनित सामग्री अब बिना रुके मिलती रहे...

शिवेन्दु श्रीवास्तव, भोपाल (म.प्र.)

नया ज्ञानोदय के कहानी विशेषांक में प्रकाशित दिव्या विजय की कहानी 'यारेगार' तथा तरुण भटनागर की कहानी 'प्रलय में नाव' सचमुच अलग तरह की कहानियाँ हैं। कथ्य और शिल्प दोनों ही दृष्टि से बेहद उल्लेखनीय। बहरहाल 'नया ज्ञानोदय' का वह कहानी विशेषांक संग्रहणीय बन पड़ा है। इसे एक किताब के रूप में भी आपके सम्पादन में ज्ञानपीठ से आना चाहिए।

'विश्व प्रेम कथा विशेषांक' भी लाजवाब है। विश्व की श्रेष्ठ कहानियों का यह चयन निश्चय ही मेरे जैसे पाठकों को अभिभूत कर देने वाला है। 'कहानी विशेषांक' और 'विश्व प्रेम कथा विशेषांक' के लिए मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

रमेश अनुपम, रायपुर (छत्तीसगढ़)

नया ज्ञानोदय का मार्च अंक मिला। सभी रचनाएँ स्तरीय हैं। ज्योति चावला रचित 'लाजो' ने विभाजन की त्रासदी को पुनर्जीवित कर दिया। उस काल के वीभत्स सत्य की प्रतिनिधि कहानियों में मंटो की 'खोल दो', कृष्णचन्दर की 'गद्दार' और यशपाल का उपन्यास 'झूठा सच' इत्यादि हैं। लेकिन ज्योति चावला की रचना ने पुन: उस कत्लोगारत की याद दिला दी है। मैं उस समय सोलह वर्ष का तरुण था और किस प्रकार दोनों समुदायों की भावनाएँ भड़की हुई थीं उसका मैं साक्षी हूँ। लेखिका ने लाजो के चरित्रांकन में पूरी करुणा ही उड़ेल दी है। ऐसा यथार्थ शायद ही किसी अन्य रचना में ऐसी बहुव्यंजकता के साथ अभिव्यक्त हुआ होगा। लेखिका की परिवेश पर आत्मीय और सूक्ष्म दृष्टि ने रचना को विश्वसनीय ज़मीन दी है। ज्योति जी ने पाठकों को देखे-सुने व बिसरा दिए गए यथार्थ को पुन: नए ढंग से देखा व दिखाया है। यह वास्तव में कालजयी रचना है। इसने अपने समय का सत्य तो दिखाया ही है और आने वाले समय के लिए भी प्रासंगिक है। कहानी निश्चय ही संग्रहणीय है। चयन के लिए सम्पादक मंडल को हार्दिक धन्यवाद।

बी.डी. बजाज, दिल्ली

नया ज्ञानोदय

रचनाकार कृपया ध्यान दें :

- जिन रचनाओं के साथ पूरा पता व फोन नम्बर आदि नहीं लिखा होगा, उन पर विचार नहीं किया जाएगा।
- हर अंक विशेष होने की वजह से हम रचनाकारों से सीधे सम्पर्क में हैं। अत: अंक योजना से बाहर की रचनाओं में विलम्ब सम्भावित है।
- रचनाओं की स्वीकृति व अस्वीकृति का निर्णय लगभग एक माह के अन्दर ले लिया जाता है। जिन रचनाओं के साथ लिफाफा संलग्न नहीं होगा उन्हें एक महीने के बाद अस्वीकृत समझें।
- ई-मेल पर भेजी गई रचनाओं पर निर्णय की सूचना शीघ्र दी जा सकेगी।
- रचनाएँ टंकित हों तथा रचनाकार का परिचय व फोटो, सम्पर्क सूत्र यथा पूरा पता, मोबाइल अथवा फोन नम्बर और ई-मेल अवश्य लिखें ताकि सम्पर्क करने में हमें सुविधा हो।
- रचनाकार मानदेय के लिए कृपया अपना वही नाम लिखें जो बैंक खाते में नाम हो।
- टंकित रचनाएँ यूनीकोड, कृतिदेव 010 अथवा चाणक्य फॉन्ट में हों तो सुविधा होगी।
- रचनाएँ : nayagyanoday@gmail.com पर ही प्रेषित करें।

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

अन्तिम संस्कार का खेल...

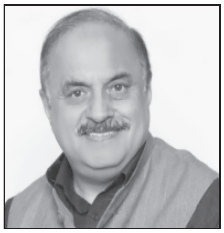

तेजेन्द्र शर्मा

जन्म : 21 अक्टूबर,1952 (जगरांव) पंजाब। शिक्षा: दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. अँग्रेज़ी, कम्पयूटर कार्य में डिप्लोमा। 16 कहानी संग्रह और एक कविता संग्रह प्रकाशित। क़ब्र का मुनाफ़ा,अभिशप्त,पासपोर्ट का रंग, कोख का किराया कहानियाँ विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल हैं। इसके साथ-साथ अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। फिलहाल यू.के. में रहते हैं।

E-mail: tejinders@live.com

नरेन के फ़ोन की रिंगटोन बज उठी।

उसने अपने फ़ोन पर एक फ़िल्मी गीत की धुन सजा रखी है। 'ज़िन्दगी के सफ़र में गुज़र जाते हैं जो मकां, वो फिर नहीं आते...' मज़ेदार बात यह है कि वह अपने अन्य मित्रों का मज़ाक उड़ाता रहता है जिनके फ़ोन पर फ़िल्मी रिंगटोन लगी हो। मगर अपने मामले में कहता है, ''देखो भाई, राष्ट्रकवि आनन्द बक्षी के इस गीत में पूरा फ़लसफ़ा है। ज़िन्दगी को समझना चाहते हो तो इस गीत को रोज़ सुबह शाम एक बार सुना करो... किसी हनुमान चालीसा से कम नहीं हैं इस गीत के बोल।''

नरेन आनन्द बक्षी को हमेशा राष्ट्रकवि के नाम से सम्बोधित करता है। अगर कोई पूछ बैठे कि भई ये कब राष्ट्रकवि बने और किसने बनाया, तो जवाब सीधा होता—'आम आदमी ने'। फिर आँख दबाकर कहता, ''... मगर केजरीवाल वाला आम आदमी नहीं।''

फ़ोन की ओर देखा। मगर नम्बर फ़ोन में सेव नहीं कर रखा था। इसलिये कुछ पता नहीं चला कि आख़िर फ़ोन है किसका। वह आमतौर पर जब ड्यूटी पर होता है तो बिना नाम वाले फ़ोन उठाता नहीं है। बहुत अनमने ढंग से फ़ोन उठा ही लिया, ''हलो, इज़ दैट नरेन?...''

''जी, मैं नरेन बोल रहा हूँ। आप कौन?''

''नरेन मैं कार्ला बोल रही हूँ। आपके कलीग रॉजर की पत्नी।

पहचान गया नरेन। रॉजर की पत्नी कार्ला और बेटी लिली से मिल चुका था। वे स्टेशन पर आई थीं एक बार, रॉजर का सामान लेने। उन दिनों रॉजर बीमार चल रहा था। नरेन ने मन ही मन सोचा... रॉजर की ख़ैर हो। वरना कार्ला उसे क्यों फ़ोन करेगी।

''अरे हाँ कार्ला, मैं आपको पहचान गया। कैसी हैं आप?... और रॉजर कैसा है?''

''नरेन, रॉजर इज़ नो मोर!... कल सुबह वो बिस्तर में...''

''ओह... बहुत दुःख हुआ सुनकर। तुम तो बिल्कुल टूट गई होगी... और लिली...''

''लिली भी रो रही है... सब बहुत अचानक हो गया। कल रात रॉजर डिनर के बाद ठीक-ठाक सोया। बस सुबह जब मैं उसके लिए चाय बनाकर उसे उठाने गई तो देखा कि वो तो वहाँ था ही नहीं।... हम उसे तत्काल अस्पताल ले गए। मगर...वो तो पहले ही जा चुका था।''

अभी पिछले हफ़्ते की ही बात है कि उसने रॉजर के साथ फ़ोन पर बात की थी। दोनों ने साथ साथ एक ही स्टेशन पर पाँच साल काम किया था। कलीग से कुछ आगे बढ़कर मित्र जैसे हो गए थे। रॉजर पहला गोरा ब्रिटिश था जिससे नरेन की दोस्ती जैसी हो गई थी। इससे पहले उसकी कुछ महिला मित्र तो बनी थीं मगर रेलवे से बाहर।

''क्या अन्तिम संस्कार की कोई तारीख़ तय हुई है अभी?''

''नहीं नरेन, क्योंकि मौत घर में हुई है इसलिए कोरोनर पोस्टमॉर्टम की डेट तय करेगा। पोस्टमॉर्टम के बाद ही कुछ फाइनल हो सकेगा।''

''मुझे बहुत अफ़सोस है कार्ला। रॉजर के साथ मेरी बहुत सी यादें जुड़ी थीं।... कई बार दोनों ने पब में शामें बिताई थीं।... मेरा तो दिल ही टूट गया है।''

''ओ.के. नरेन, जब कुछ तय हो जाएगा तो मैं तुम्हें फ़ोन करूँगी।''

फ़ोन रखने के बाद नरेन शून्य में ताकने लगा। उसे याद था कि रॉजर डनहिल सिगरेट पिया करता था... नरेन के मना करने के बावजूद उससे सिगरेट छूट नहीं पा रही थी। नरेन ने तो जीवन में कभी सिगरेट पी ही नहीं थी। रॉजर के फेफड़ों में पॉलिप्स उग आए थे। डॉक्टरों को शक था कि कहीं कैंसर न हो। खाँसी इतनी बढ़ी कि रॉजर के पास सिगरेट छोड़ने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं था।

रॉजर ने उसे कहा भी था, ''नैरी, मैन, आई ओ माई लाइफ़ टु यू...'' उस दिन भी दोनों एक साथ ही स्टेशन पर काम कर रहे थे। रॉजर खींच खींच कर साँस ले रहा था। पहले तो उसने कुछ ख़ास ध्यान नहीं दिया मगर आहिस्ता आहिस्ता रॉजर की साँसें उखड़ने सी लगीं। नरेन इन साँसों का अर्थ समझता था। उसके अपने पिता सिगरेट पिया करते थे।... ठीक ऐसे ही उसके सामने बैठे बैठे उनकी साँसें उखड़ती चली गयीं और वह बस देखता रह गया।

मगर आज नहीं... उसने रॉजर से पूछा, ''रॉजर, मुझे लगता है कि तुम्हें एम्बुलेंस की ज़रूरत है।''

''नहीं नरेन, मुझे तो ऐसा होता ही रहता है। अपने आप ठीक हो जाएगा।'' क़

नरेन भला कहाँ मानने वाला था। उसने फ़ोन उठाया, और एम्बुलेंस को बुलवा लिया। थोड़ी ही देर में मैनेजर भी आ गये। उनको पूरी स्थिति समझाई। मैनेजर ने नरेन की पीठ थपथपाई। मगर नरेन की पीठ जैसे अचानक सख़्त हो आई थी। उस पर मैनेजर का हाथ महसूस नहीं हो रहा था। उसके भीतर जैसे रॉजर का पूरा व्यक्तित्व जज़्ब हो गया था। उसके आसपास का पूरा माहौल रॉजरमय हो चला था।

तय कर लिया कि आज काम के बाद सीधा अस्पताल जाना है और अपने मित्र को हौसला देना है। वैसे उसे कुछ परेशानी भी हो रही थी क्योंकि उसके मैनेजर के चेहरे पर केवल प्रोफ़ेशनलिज़्म दिखाई दे रहा था किसी प्रकार का कोई इमोशन नहीं।

नरेन सोचता भी है। उसने लन्दन में आने के बाद यहाँ के लोगों से बहुत कुछ सीखा है। अपनी भावनाओं का सार्वजनिक प्रदर्शन करने से बचता है। मगर भीतर से तो भारतीय है। भावनाओं का पूरी तरह से दमन नहीं कर पाता। भीतर ही भीतर उसे कुछ न कुछ कचोटता रहता है।

शाम को ही वॉटफ़र्ड जनरल अस्पताल में पहुँच गया था। रॉजर को अभी तक ऑक्सीजन लगी हुई थी। साँस पहले से बेहतर चल रही थी। दोनों की आँखें मिलीं। रॉजर की आँखें शुक्रिया कर रही थीं। उसने ख़ुद ही ऑक्सीजन मॉस्क को हटा दिया और नरेन से बात करने लगा।

''अरे रॉजर, ऑक्सीजन लगाये रखो, यार। डॉक्टर से पूछकर हटाना।''

''इसमें कोई दिक्कत नहीं है। मुझे कहा गया है कि जब जब दिक्कत महसूस हो ख़ुद ही लगा लेना। बीच बीच में लगा लेता हूँ। फिर थोड़ा आराम देता हूँ।''

''अरे रॉजर आज एक ख़ासी कम्पलीकेटिड टिकट इश्यू करनी पड़ी।... उस वक्त तुम्हारी बहुत याद आई। एक तो वैसे ही मूड ख़राब था और अपना मैनेजर भी सिर पर था। मैंने अकाउंट सेक्शन को फ़ोन किया। वहाँ किसी ने उठाया नहीं। रेचल को फ़ोन लगाया, उसने हेल्प की तब जा के टिकट बना पाया। अगर तुम होते तो कितना आसान हो जाता।''

रॉजर के चेहरे पर एक मुस्कान सी उभर आई थी। उसे महसूस हुआ कि वह कितना महत्त्वपूर्ण है। उसके ज्ञान से कितने साथी कर्मचारियों को लाभ होता है।

नरेन ने उठते उठते पूछा, ''यहाँ का खाना कैसा है? टेस्टी लगता है क्या?... कुछ चाहिए तो नहीं?''

''खाने की तो यहाँ अच्छी च्वाइस है। हाँ अगर मेरे लिये ड्राईशैम्पू ले आओ तो ख़ासी मदद हो जाएगी।''

''ड्राईशैम्पू!... ये क्या होता है?''

''इसको लगाने के बाद सिर को धोना नहीं पड़ता। बूट्स केमिस्ट से मिल जाता है। जब अगली बार आओ तो लेते आना।''

नरेन की जानकारी में बढ़ोतरी हुई कि ड्राईशैम्पू नाम की कोई चीज़ भी होती है। इस मामले में उसे न तो किसी ब्रांड की जानकारी थी और न ही उसे यह मालूम था कि ड्राईशैम्पू एक स्प्रे होता है। गूगल से सहायता माँगी। बस हो गया काम। नरेन को मालूम था कि रॉजर को चिकन टिक्का बहुत पसन्द है। शैम्पू की तरह वो भी ड्राई ही पसन्द है। बस दोनों ड्राई चीज़ें लेकर अपनी दोस्ती की चाशनी में भरकर चल दिया अपने मित्र की ओर।

रॉजर की एक अलग सी आदत यह भी थी कि वह जब किसी चीज़ से प्रभावित होता तो होंठ को टेढ़ा सा करके मुस्करा देता। खुलकर तारीफ़ करना उसके

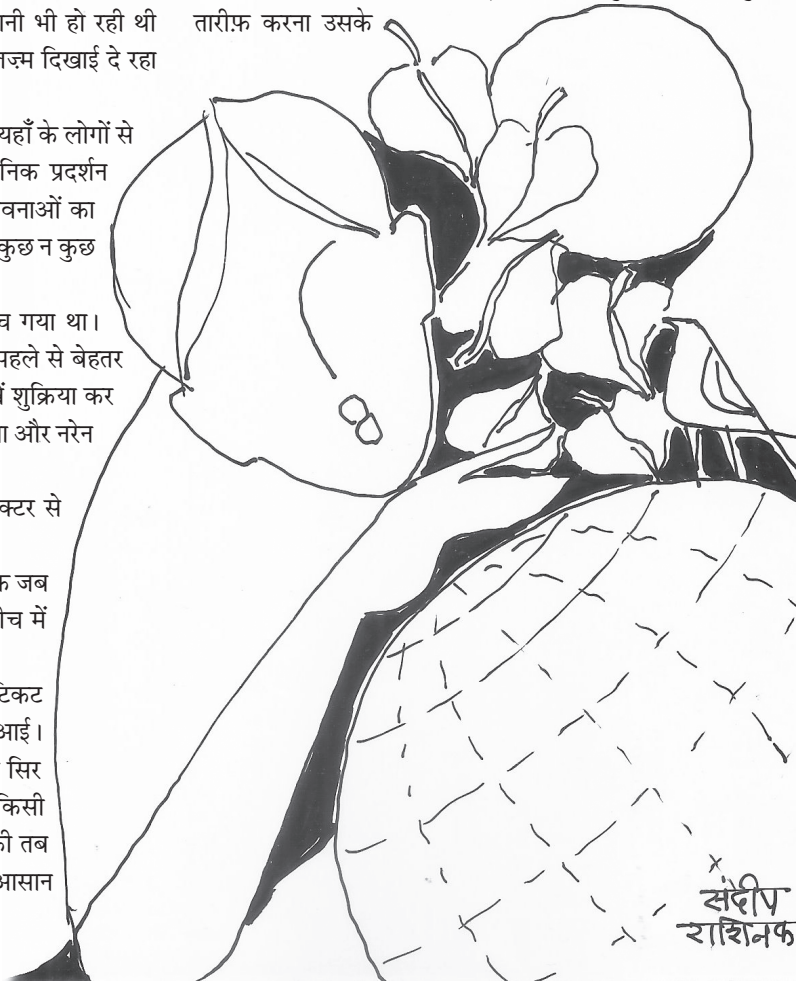

व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं था। शैम्पू देखकर उसने थैंक्स कहा और पूछा, ''ढूँढ़ने में मुश्किल तो नहीं हुई ?'' मगर चिकन टिक्का देखकर उसका नीचे का होंठ थोड़ा सा टेढ़ा हुआ और आँखों में ख़ास किस्म की ख़ुशी का भाव उभरा।

भाव तो नरेन के चेहरे पर आज भी उभरा है... अपने मित्र को खो देने का भाव। वह सोच में पड़ गया कि अब सबको कैसे सूचित किया जाए। कहीं मन में यह ख़्याल भी आया कि जब वह सबको रॉजर की मृत्यु का समाचार देगा तो सब पर एक अलग सा रौब भी पड़ेगा कि वह परिवार के कितना नज़दीक है। फिर अपने आप को डाँटा... कितनी घटिया सोच हो गई है उसकी।

नरेन को याद आया कि उसने कभी रॉजर के कुछ फ़ोटो भी स्टेशन पर खींचे थे। रॉजर को बाग़बानी का बहुत शौक था। वह अपने स्टेशन पर भी फूल पौधे लगाया करता था। एक दिन ऐसे ही उसे फूलों के साथ खेलते हुए नरेन ने कुछ फ़ोटो खींचे थे। उसने अपने कम्पयूटर में खोजा तो फ़ोटो वहाँ मौजूद थे।

एक ई-मेल बनाई। अपने एम.डी., डायरेक्टर, मैनेजर और तमाम रेलवे स्टेशनों पर ई-मेल भेज दी— ''मित्रो एक दुखद समाचार साझा करना चाहता हूँ। मुझे आज अभी अभी रॉजर की पत्नी कार्ला का फ़ोन आया और उन्होंने सूचना दी कि कल रॉजर का नींद में ही निधन हो गया। आप सबको याद होगा कि रॉजर मिचम ने हमारे साथ क़रीब दस वर्षों तक काम किया और अपने स्वभाव, कार्यशैली और विनम्रता से सबका दिल जीता। रॉजर को बाग़बानी का बहुत शौक़ था और उसने अपने स्टेशन को ख़ूबसूरत बनाने के लिए अलग अलग तरह के फूलों के गमले तैयार किये थे। रॉजर के नेतृत्व में हमारे स्टेशन को बेहतरीन स्टेशन का ख़िताब भी मिला था। अभी फ़्यूनरल की तारीख़ तय नहीं हुई है। तारीख़ तय होते ही कार्ला मुझे सूचित करेगी।''

नरेन ने ई-मेल के साथ ही अपने कम्प्यूटर में से रॉजर की एक फ़ोटो भी लगा दी थी। एम.डी. ने एकदम शोक सन्देश भेजा और कहा, कि फ़्यूनरल के बारे में उन्हें सूचित किया जाए। ज़ाहिर है कि नरेन को बहुत अच्छा लगा।

अचानक उसके फ़ोन में कुछ ऐसी आवाज़ आई जैसे कि व्हाट्सएप पर कोई सन्देश आया है। नरेन ने फ़ोन खोला और पाया कि चार्ली ने, जो कि रॉजर के स्टेशन पर काम करता था और यूनियन लीडर भी था, अपने ग्रुप में एक सन्देश छोड़ा था। सन्देश पूरा का पूरा नरेन की ईमेल से कॉपी किया था मगर उसे अपने नाम से ऐसे भेजा जैसे सारी सूचना उसी के माध्यम से साझा की जा रही है।

नरेन को यह बात चुभी कि चार्ली ने अपने सन्देश में उसके नाम का हवाला क्यों नहीं दिया। यदि कार्ला उसे न फ़ोन करती तो चार्ली को भला कैसे पता चलता कि रॉजर की मृत्यु हो गई है।

अभी वह अपनी भीतरी भावनाओं से जूझ ही रहा था कि अचानक एक बार फिर व्हाट्सएप ने सन्देश की घंटी बजाई। सन्देश खोला— ''हैलो, मैं रॉजर की बेटी लिली। डैड आपकी बहुत तारीफ़ किया करते थे। अभी कोरोनर ने फ़्यूनरल की डेट तय नहीं की है। अभी तो पोस्टमॉर्टम होना है। उसके बाद ही कुछ तय हो पाएगा।... मैं तुम्हें ताज़ा हालात की जानकारी देती रहूँगी।''

उधर ग्रुप में लगातार लोग चार्ली से सवाल पूछे जा रहे थे। ज़ाहिर है कि उसके पास उनका कोई जवाब नहीं था। कोई मृत्यु के कारण पूछ रहा था तो कोई मृत्यु का समय। और सभी अपने आपको रॉजर का बेस्ट-फ्रेंड दिखाने का प्रयास कर रहे थे। चिढ़ते हुए नरेन ने पूरी सूचना ग्रुप में दी कि कार्ला का फ़ोन उसे आया था। और यदि किसी को कोई जानकारी चाहिए हो तो उससे पूछ ले।

नरेन ने अपने मैनेजर को ई-मेल भेजते हुए कहा कि हमें रॉजर के अन्तिम संस्कार के लिए कुछ पैसे इकट्ठे करने चाहिए ताकि वहाँ ज़रा खूबसूरत सी पुष्पमाला बनवाकर भेजी जा सके। चाहें तो पुष्पमाला के बीच रॉजर की फ़ोटो लगवा दी जाए या फिर अंडरग्राउंड रेलवे का स्मृति-चिह्न।

अगले ही दिन व्हाट्सएप ग्रुप में चार्ली का सन्देश पहुँच चुका था कि यह निर्णय लिया जा चुका है कि सब दस दस पाउंड इकट्ठे करेंगे ताकि एक खूबसूरत सी पुष्पमाला या रीथ बनवाकर उसमें अंडरग्राउंड का स्मृति-चिह्न बनवाया जा सके।

नरेन इस बात को नहीं मानता था कि ब्रिटेन में रंगभेद की नीति आज भी सक्रिय है। बल्कि वह तो इस बात को सिरे से नकार देता था। आज अचानक उसके मुँह से निकला, ''साले अँग्रेज, ये सब क्यों आमादा हैं कि मुझे कोई क्रेडिट ना मिले ? क्यों ये रॉजर की मौत में भी अपनी चौधराहट दिखाने की कोशिश में लगे हैं ?''

मन के भीतर से आवाज़ आई, ''भाई तुम्हें क्या फ़र्क़ पड़ता है। अगर सब लोग एक आवाज़ में कह दें कि नरेन रॉजर का सबसे करीबी दोस्त है तो तुम्हें क्या हासिल हो जाएगा ? तुम अपनी ईगो में क्यों मरे जा रहे हो ? तुम यह क्यों नहीं समझ पा रहे कि हालात कैसे भी क्यों न हों तुम गोरे नहीं बन सकते। गोरों का देश है, वो जो चाहेंगे करेंगे। रॉजर तो मर चुका है। रॉजर तो तुम्हारे साथ ऐसी हरकत नहीं कर रहा। फिर इन लोगों से क्यों तुम कुछ महान एक्शन की अपेक्षा रखते हो ?''

अपने दिल को तसल्ली देने के लिए कार्ला और लिली को व्हाट्सएप

मन के भीतर से आवाज़ आई, ''भाई तुम्हें क्या फ़र्क़ पड़ता है। अगर सब लोग एक आवाज़ में कह दें कि नरेन रॉजर का सबसे करीबी दोस्त है तो तुम्हें क्या हासिल हो जाएगा ? तुम अपनी ईगो में क्यों मरे जा रहे हो ? तुम यह क्यों नहीं समझ पा रहे कि हालात कैसे भी क्यों न हों तुम गोरे नहीं बन सकते। गोरों का देश है, वो जो चाहेंगे करेंगे। रॉजर तो मर चुका है। रॉजर तो तुम्हारे साथ ऐसी हरकत नहीं कर रहा। फिर इन लोगों से क्यों तुम कुछ महान एक्शन की अपेक्षा रखते हो ?''

पर रॉजर के फ़ोटो भेजने शुरू कर दिए। एक के बाद एक भेजे जा रहा था। उधर से लिली हर फ़ोटो पर अपना कोई न कोई कमेंट लिखे जा रही थी। कुछ एक चित्रों में रॉजर और नरेन इकट्ठे भी खड़े थे। उसने तय कर लिया था कि लिली और कार्ला के मन में यह बैठा देगा कि रॉजर का सबसे करीबी दोस्त वही है।

नरेन ने हार नहीं मानी और एक बार फिर अपने मैनेजर को एक ई-मेल के ज़रिये सलाह दी कि रॉजर की याद में एक ऐसा प्लॉक स्टेशन पर लगाया जाए जिससे यात्रियों को उसे श्रद्धांजलि देने में आसानी हो। अबकी बार मैनेजर का जवाब आया, ''ओ.के., मैं चार्ली के साथ डिस्कस करूँगा।''

नरेन का ग़ुस्सा उसके क़ाबू से बाहर हुए जा रहा था।... उसका हर नया आइडिया भला चार्ली के साथ क्यों सलाह-मशविरा माँगता है। उसने अपने मन की भड़ास पुष्पा के साथ साझा करना चाही। पुष्पा पूर्ण रूप से एक सकारात्मक व्यक्ति है। उसके मुँह से किसी की बुराई निकलती ही नहीं। उसने पूरी बात ध्यान से सुनी और कहा, ''नरेन, तुम्हारे दोस्त रॉजर की मृत्यु हो गई है। तुम्हारी सोच यही होनी चाहिए कि कैसे उसके फ़्यूनरल को यादगार बनाया जाए। तुम उसके ज़रिये हीरो बनने के चक्कर में मत पड़ो। यह अशोभनीय है।''

अगर पुष्पा ऐसा कह रही है तो ज़रूर मैं कोई ग़लती कर रहा हूँ। मगर पूरी लाइन पर उससे फ़्यूनरल के बारे में कोई बात ही नहीं कर रहा। लग रहा है जैसे वह कोई डाकिया था जिसका काम केवल और केवल मृत्यु का सन्देश देना था। बाक़ी सब लोग उससे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं जो कि हर बात का निर्णय ले रहे हैं।

एक बार मन में आया कि फ़्यूनरल की डेट किसी को बताए ही न और अकेला फ़्यूनरल अटेंड कर आए। हैरानी यह भी थी कि दूसरों के कमीनेपन की शिकायत करता नरेन स्वयं उसी कमीनेपन का शिकार होता जा रहा था। उसका उद्देश्य होना चाहिए कि रॉजर के अन्तिम संस्कार में अधिक से अधिक लोग शामिल हो सकें ताकि सब मिलकर रॉजर को श्रद्धांजलि दे सकें। उल्टा ख़ुद अकेला वहाँ जाने के बारे में सोचने लगा है।

दरअसल उसके मन में एक निर्लज्ज चाह थी कि किसी अँग्रेज परिवार के फ़्यूनरल में एक हिन्दुस्तानी को वो महत्त्व मिले जो किसी भी और साथी कर्मचारी को कभी न मिला हो। वह गोरे लोगों से अधिक महत्त्वपूर्ण दिखाई देना चाह रहा था। दिखावा कभी भी उसके व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं था मगर न जाने क्यों रॉजर के मामले में वह कंजूस और छोटे दिल का होता जा रहा था। वह रॉजर के फ़्यूनरल में किसी और को महत्त्व लेते देख नहीं पा रहा था।

स्टेशन पर अचानक क्रिस्टोफ़रनोलन दिखाई दे गया। ''हैलो नरेन, क्या रॉजर के फ़्यूनरल की डेट फ़िक्स हो गई ? तुम तो जा रहे हो न ? मैं भी अपना रेस्ट डे एडजस्ट कर रहा हूँ। मेरा और रॉजर का पुराना साथ था।''

नरेन ने सोचा कि उसे भी अपने मैनेजर से बात कर लेनी चाहिए ताकि उसे भी यह तसल्ली हो जाए कि उसे फ़्यूनरल वाले दिन के लिए रिलीज़ मिल जाएगा। उसने एक ई-मेल मैनेजर को भेज दी।

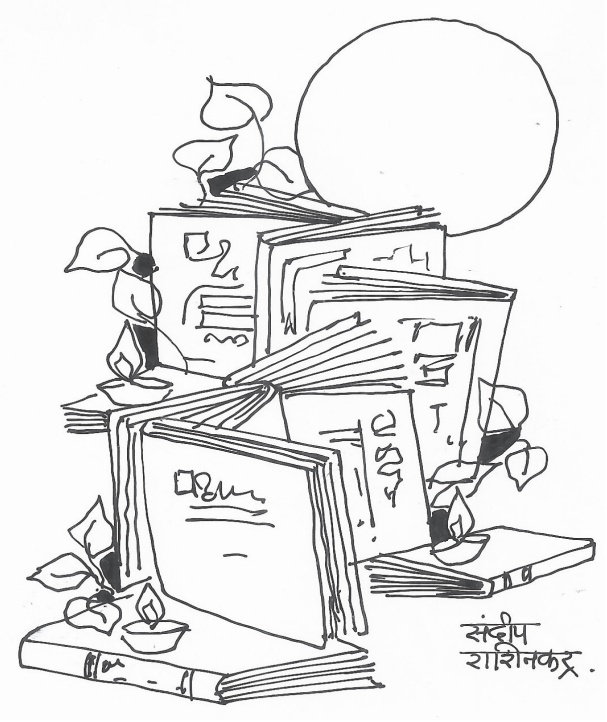

जवाब ने उसके बुझे हुए दिल को और बुझा दिया, ''नरेन, आप फ़्यूनरल के लिए एक दिन की छुट्टी की एप्लीकेशन भेज दीजिये। मैं छुट्टी सैंक्शन कर दूँगा।'' न जाने क्यों नरेन यह बात दिल में बैठाए हुए था कि उसे इस काम के लिए विशेष अवकाश दिया जाएगा क्योंकि वह रॉजर का बहुत करीबी दोस्त है। न जाने क्यों इतने वर्षों के बाद भी नरेन गोरे अधिकारियों की सोच को ठीक से समझ नहीं पाया है।... या फिर समझते हुए भी उसके मन में कहीं एक चाह है कि इन लोगों के दिल में भी भावनाएँ हिलोरें मारने लगें।...

नरेन के दुखते दिल पर नश्तर चलाने के लिए चार्ली का एक नया ई-मेल चला आया। ''यह तय किया गया है कि रॉजर की याद में एक मेमोरियल स्टेशन पर बनाया जाए जिसमें सभी यात्रियों को भी निमन्त्रित किया जाए। मैं इस बारे में अपने मैनेजर और उच्चाधिकारियों से बातचीत कर रहा हूँ। कुछ भी निर्णय लेने के बाद आपको सूचित किया जाएगा कि यह कब किया जाएगा।''

उसके मुँह से पंजाबी की भद्दी सी गाली निकली। सच भी है कि इन्सान या तो दुख में या ग़ुस्से में अपनी मातृभाषा में ही अपनी बात बेहतर ढंग से कह पाता है। अपने ग़ुस्से पर काबू पाने के लिए उसने एक बार फिर पुष्पा को फ़ोन कर लिया। अचानक ख़्याल आया कि कहीं उसी को लेक्चर न पिलाने लगे। फ़ोन बन्द कर दिया।

मगर तब तक पुष्पा ने फ़ोन की घंटी सुन ली थी। उसका फ़ोन वापिस आ गया, ''अरे क्या हुआ। दो घंटियाँ बजाकर फ़ोन रख क्यों दिया ?''

''कुछ नहीं, बस मूड थोड़ा ठीक नहीं था। फिर सोचा कि आपका मूड क्यों ख़राब किया जाए।''

बस अब नरेन का मन भीतर से ख़ुश था। कमाल तो यह है कि अपने मित्र की मृत्यु पर श्रद्धांजलि देने में वह भीतर से ख़ुशी महसूस कर रहा था। मगर उसे तो कुछ मालूम नहीं था कि अँग्रेज लोग फ़्यूनरल में श्रद्धांजलि देते कैसे हैं। वैसे तो कई बार कुछ अँग्रेजों के अन्तिम संस्कार में क्रेमेटोरियम गया है मगर न तो उनकी बात समझ आती और न ही उसे कोई रुचि होती। उसने तय किया कि वह बिल्कुल बी.बी.सी.अन्दाज़ में अपनी श्रद्धांजलि पढ़ेगा।

''मगर हुआ क्या?''

''यह ऑफ़िस में मेरे साथ राजनीति खेली जा रही है। सभी गोरे मिल कर लगातार मेरी बेइज़्ज़ती कर रहे हैं। आई फ़ील सो हेल्पलेस!''

''क्या फिर से रॉजर को लेकर कुछ हुआ है?''

''वही तो सिलसिला चल रहा है आजकल। मैंने अपने मैनेजर को आइडिया दिया कि स्टेशन पर रॉजर का एक मेमोरियल बनाना चाहिए। और देखिए, मुझे ही उस स्कीम से निकाल दिया और अब चार्ली से बात हो रही है। ऐसे कमीने लोग हैं...!'' पुष्पा के सामने कमीने से बड़ी गाली तो दे नहीं सकता था।

''हम्म... तुम ऐसा करो, थोड़ी देर टॉयलट में जाकर रो लो। दिल हल्का हो जाएगा।''

''यह क्या बात हुई कि रो लूँ। मैं क्यों रोऊँ?''

''वैसे भी तो रो ही रहे हो। वैसे तो तुम इतनी मैच्योर बातें करते हो। दूसरे लोगों की काउंसलिंग तक कर देते हो। और ख़ुद को समझा नहीं पा रहे कि तुम सिस्टम के विरुद्ध लड़ नहीं सकते। यह सिस्टम है कि मैनेजमेंट और यूनियन मिलकर ऐसे कामों में निर्णय लेते हैं और वही हो रहा है। तुम बस डाकिये का काम ही करो। उधर का सन्देश इधर करते रहो और अपने आपको नकारात्मकता से बचाने का प्रयास करो।''

''चलो छोड़ो इस बात को। कल दोपहर को फ़िल्म देखने चलते हैं। मेरी शिफ़्ट 12.30 पर ख़त्म होगी। 13.30 का शो देखते हैं सफ़ारी में। सुना है कि छिछोरे अच्छी फ़िल्म है। अब तो नये लड़के भी अच्छी एक्टिंग करने लगे हैं। सुशान्त सिंह है इस फ़िल्म में।''

''ठीक है। अब हँसो और कुढ़ना बन्द करो।''

नरेन का मन कहीं टिक नहीं पा रहा था। क्या इतना ही आसान है इस दबाव से मुक्ति पा लेना। दिमाग़ को चैन नहीं... एक बात अचानक दिमाग़ में आती है... लगता है कि यह तो सीधा सिक्सर होगा... बॉल बाउंड्री के बाहर...

रॉजर की बेटी लिली को एक मैसेज भेजता है, ''लिली, अगर तुम्हें ठीक लगे तो फ़्यूनरल में स्टाफ़ की तरफ़ से मैं दो शब्द श्रद्धांजलि के बोलना चाहूँगा। तुम तो जानती हो कि मैं और रॉजर एक दूसरे को बहुत पसन्द करते थे। ज़रा अपनी ममी से पूछ लेना।''

और पाँच ही मिनट में जवाब भी आ गया, ''अरे यह तो बहुत बढ़िया आइडिया है। मैं ज़रा फ़्यूनरल डायरेक्टर टैनर एंड डॉटर से बात कर लूँ। वहाँ की चीफ़ जिलियन ब्राऊन है। मैं तुम्हें एक दो दिन में बताती हूँ।''

नरेन को अच्छा लगता है कि लिली उसे अंकल वगैरह कहकर नहीं बुलाती। सीधे नरेन और तुम कहती है। उसे इसमें अपनेपन की ख़ुशी मिलती है।

इस बीच व्हाट्सएप ग्रुप में रोज़ाना रॉजर की तारीफ़ का कोई न कोई सन्देश ज़रूर पढ़ने को मिल जाता है। जैसे सब उसके चहेते थे।

उधर स्टेशन पर रॉजर के बनाए गमलों, क्यारियों पर चार्ली और डेविड मिलकर ख़ासा काम कर रहे हैं। एक लोकल नर्सरी को भी साथ जोड़ लिया है। नरेन की कुढ़न बढ़ती जा रही है। कम हो भी तो कैसे।

लिली का व्हाट्सएप सन्देश फ़ोन पर चमका। जल्दी से देखा... ''मेरी बात हो गई है। सब लोग इसे लेकर बहुत प्रसन्न हैं कि तुम इस अवसर पर ट्रिब्यूट दोगे। बस ऐसा करना कि अपना ट्रिब्यूट लिखकर टैनर एंड डॉटर की जिलियन को ई-मेल कर देना —लिली।''

बस अब नरेन का मन भीतर से ख़ुश था। कमाल तो यह है कि अपने मित्र की मृत्यु पर श्रद्धांजलि देने में वह भीतर से ख़ुशी महसूस कर रहा था। मगर उसे तो कुछ मालूम नहीं था कि अँग्रेज लोग फ़्यूनरल में श्रद्धांजलि देते कैसे हैं। वैसे तो कई बार कुछ अँग्रेजों के अन्तिम संस्कार में क्रेमेटोरियम गया है मगर न तो उनकी बात समझ आती और न ही उसे कोई रुचि होती। उसने तय किया कि वह बिल्कुल बी.बी.सी.अन्दाज़ में अपनी श्रद्धांजलि पढ़ेगा।

जल्दी से लिखने बैठा। सबसे पहले गूगल पर ढूँढ़ मचाई कि किसी साथी कर्मचारी की मौत पर लिखी कुछ मॉडल श्रद्धांजलियाँ पढ़ने को मिल जाएँ।

मिलीं तो कई मगर कोई भी श्रद्धांजलि उसके मन को छू नहीं पाई। अचानक उसने सिर को एक हल्का सा झटका दिया और तय कर लिया कि अब वह स्वयं अपने दिल की बात काग़ज़ पर उतारेगा। और एक झटके में सीधा टाइप करना शुरू कर दिया। सोच रहा था कि पाँच सौ से कम शब्द ही होने चाहिए वरना बहुत लम्बी हो जाएगी—

''हैलो लिली, कार्ला और रॉजर एवं उसकी स्मृति से प्यार करने वाले सभी मित्रो...

मैं लन्दन के ओवरग्राउंड में अपने सभी सहयोगियों एवं यात्रियों की ओर से रॉजर मिचम की याद में श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए यहाँ खड़ा हूँ।

एक सहकर्मी की मृत्यु कार्यस्थल में एक व्यक्तिगत और पेशेवर शून्य छोड़ देती है। मेरे मामले में रॉजर सिर्फ एक सहयोगी ही नहीं था। उससे बढ़कर बहुत कुछ अधिक था। हमने अपने स्टेशन पर एक साथ कुछ बेहतरीन समय बिताया।

किसी भी अन्य रिश्ते की तरह, हमें एक-दूसरे को समझने में कुछ समय लगा। और वैसे भी कोई हड़बड़ी नहीं थी। हम दोनों परिपक्व थे और एक दूसरे के साथ अच्छी तरह से मिलजुलकर काम कर रहे थे।

रॉजर अपने काम में एक परफ़ेक्शनिस्ट था। हमेशा सलीक़ेदार कपड़े पहन, एक प्रोफ़ेशनल की तरह अपने काम को अंजाम देता था। वह अधिकांश नियमित यात्रियों को उनके पहले नाम से जानता था। अपने काम के बारे में उसका ज्ञान इतना गहरा था कि अन्य स्टेशनों के कर्मचारी कुछ जटिल किस्म की टिकट जारी करते समय उनकी मदद लिया करते थे।

यह कहा जाता है, ''एक आदमी का मूल्यांकन इस बात को देख कर किया जाना चाहिए कि वह अपने जीवन में औरों को क्या देता है और वो नहीं जो वह प्राप्त करने में सक्षम है'' ... एक शब्द में कहूँ तो रॉजर इस मामले में खरा उतरता था। मैं यहाँ रॉजर की मृत्यु का सोग मनाने के लिए नहीं खड़ा हूँ; मैं उसकी ज़िन्दगी का जश्न मनाना चाहूँगा। वह एक विलक्षण प्रतिभा का धनी था, उसकी उपलब्धियाँ हमें प्रेरित करती हैं कि हम उसका अनुकरण करें।

एक टीम के रूप में रॉजर और मैंने सफलता का जश्न तब मनाया जब हमारे स्टेशन को वर्ष 2012 में श्रेष्ठ स्टेशन घोषित किया गया।

बाग़बानी रॉजर की विशेषता थी। उसने अपने स्टेशन पर हरित क्रान्ति का निर्माण किया। जहाँ तक बागवानी का सवाल है, मेरे पास दो हाथ हैं। खुरपी चलाना मेरे बस का काम नहीं। हमारे स्टेशन पर बनाए गए पौधों की क्यारियों की देखभाल के लिए वह अपने रेस्ट डे पर भी स्टेशन आ जाया करता था। यहाँ तक कि वह पौधों की देखभाल के लिए दूसरे स्टेशनों पर भी जाया करता था।

रॉजर तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि चार्ली और डेविड तुम्हारे लिए खुशख़बरी लाए हैं। इस वर्ष भी तुम्हारे स्टेशन को सर्वश्रेष्ठ फूल-व्यवस्था के लिए पुरस्कार मिला है। यह तुम्हें हम सबकी ओर से श्रद्धांजलि है।''

उसने एक, दो, तीन बार पढ़ा। अन्तिम पंक्ति तक पहुँचते-पहुँचते उसकी अपनी आँखें कुछ गीली होने लगीं। सन्तोष हुआ कि यदि उसके अपने दिल पर ये शब्द इतना असर कर रहे हैं तो ग़मज़दा लोगों के दिलों को तो ये शब्द झिंझोड़ ही देंगे।

उसने ई-मेल करने से पहले ज़रूरी समझा कि लिली को एक बार पढ़वा ले तो बेहतर रहेगा। उसकी प्रतिक्रिया जान लेना ज़रूरी है।

दस मिनट में ही लिली का सन्देश वापिस आ पहुँचा... ''दिस इज़ सिम्पली अमेज़िंग, नरेन! मुझे गर्व है कि मेरे डैड के तुम्हारे जैसे साथी और दोस्त थे। तुम कितने ग्रेट हो!''

मन ही मन नरेन को महसूस हुआ जैसे उसने अपने विरोधी दल को आधा दर्जन गोल के अन्तर से हरा दिया है। अब वे बॉल पकड़कर टापते रहेंगे और वह दनादन गोल पर गोल दाग़ता जाएगा। उससे अपनी ख़ुशी छिपाए नहीं बन रहा था।... पुष्पा को बता दे तो शायद मन को चैन मिल जाए। फ़ोन किया, ''आपसे एक बात शेयर करनी है।''

''आज रॉजर की बेटी का फ़ोन आया था। उसने मुझे कहा कि मैं उसके डैड के फ़्यूनरल में ट्रिब्यूट दूँ। मैं मान गया। अब इन सालों को पता चलेगा कि मैं परिवार के कितना निकट हूँ। किसी को नहीं बताऊँगा कि मैं श्रद्धांजलि पढ़ने वाला हूँ।... मैंने अपनी लिखित श्रद्धांजलि फ़्यूनरल डायरेक्टर को भेज भी दी है।... आपको भेजूँ?''

पुष्पा जानती थी कि इस वक्त नरेन पूरी तरह भावनाओं से सराबोर है। यदि उसने न कह दिया तो बेचारे का दिल टूट जाएगा, ''अरे वाह, ज़रूर भेजो। देखो मैं कहती थी ना कि रॉजर का परिवार तुमको चाहता है तो वही लोग तुम्हारा सम्मान भी करेंगे।''

नरेन ने जल्दी से अपनी श्रद्धांजलि पुष्पा जी को ई-मेल कर दी। वह हमेशा कोशिश करता है कि पुष्पा जी के साथ कभी झूठ न बोले... मगर ऐसे झूठ से क्या फ़र्क़ पड़ता है जिससे पुष्पा जी का कोई नुकसान नहीं हो रहा?''

अब नरेन ने इस मामले में चुप्पी साध ली थी। जब कभी कोई बात उठती भी तो वह ऐसा दिखाता जैसे उसे इसमें कोई ख़ास रुचि नहीं है।

लिली ने फ़्यूनरल की तारीख़ भी नरेन को ही सूचित की। ज़ाहिर है कि नरेन की ईगो थोड़ी और बूस्ट हो गई। अबकी बार उसने एक ई-मेल भी बनाई और एक व्हाट्सऐप सन्देश भी। दोनों में बहुत अकड़ के साथ लिखा कि रॉजर के परिवार ने उसे फ़्यूनरल की तारीख़ और विवरण भेज दिया है। मैं आप सबकी सुविधा के लिए साझा कर रहा हूँ।

नरेन को अभी तक समझ नहीं आया था कि उसका पाला चार्ली जैसे घाघ से पड़ा है। उसने कहीं शुक्रिया वगैरह तो नहीं कहा, बल्कि एक नयी ई-मेल बना दी, ''दोस्तो, अब रॉजर की अंत्येष्टि की डिटेल्स आ चुकी हैं। हम लोग वाटरलू स्टेशन से रेल द्वारा जाएँगे और वहाँ पहुँचकर हमें या तो टैक्सी लेनी होगी या फिर पैदल चलना होगा। वाटरलू से ट्रेन चलने का समय सुबह के दस बजकर तेरह मिनट का है। हम साढ़े ग्यारह तक अपने गंतव्य तक पहुँच जाएँगे। फ़्यूनरल बारह बजे है। यानी कि हम सब समय पर रॉजर के परिवार के साथ अन्तिम संस्कार के लिए ठीक समय तक पहुँच जाएँगे।''

नरेन ने आज बुरा नहीं माना। उसे यह तो अहसास था कि चार्ली इस बार भी उसे कोई महत्त्व नहीं देने वाला। मगर वह आहिस्ता आहिस्ता सीख रहा था कि गोरा आदमी कैसे शतरंज की चाल में हमेशा एक कदम आगे कैसे रहता है। यह भी तो एक खेल है। अन्तिम संस्कार का खेल। मगर कोई नहीं जानता था कि उसकी आस्तीन में तुरुप का इक्का छिपा हुआ है।

अन्तिम संस्कार के बाद क्रिमेटोरियम के निकट ही पब में भोजन का प्रबन्ध था। यह एक अद्भुत रिवाज़ है। नरेन तो इस रिवाज़ का मुरीद बन चुका है। रोना धोना घर पर, बस। सार्वजनिक रूप से मरने वाले के जीवन का जश्न मनाया जाए। दिवंगत आत्मा को ख़ुशी ख़ुशी विदा किया जाए और उसी पल से एक नये जीवन का संचार शुरू।

यहाँ भी परिवार केवल भोजन उपलब्ध करवाता है। शराब या बीयर हर व्यक्ति स्वयं ही ख़रीदता है।

निश्चित तिथि पर करीब दर्जन भर संगी साथी वाटरलू स्टेशन पर पहुँच गए। सबके पास रेलवे का पास था। इसलिए टिकट ख़रीदने का झंझट ही नहीं था। रास्ते में लिसा ने उसे कुरेदते हुए पूछा, ''नरेन तुम कोई स्पीच देने वाले हो क्या? रॉजर तो तुम्हारा अच्छा दोस्त था।''

नरेन ने बस कन्धे उचका भर दिए। लिसा ने फिर बात को आगे बढ़ाया, ''तुमने कोई कविता लिखी है रॉजर पर क्या?''

नरेन ने बात को पलट दिया। वह चाहता नहीं था कि किसी को भी

पता चले कि वह श्रद्धांजलि पढ़ने वाला है। ट्रेन के सफ़र में सब ऐसे बातें कर रहे थे जैसे किसी दावत में जा रहे हों। कहीं ऐसा महसूस नहीं हो रहा था कि किसी मैयत में शामिल होने जा रहे हैं।

स्टेशन से उतरकर सबने निर्णय लिया कि गूगल पर चेक कर लिया जाए कि क्रिमेटोरियम रेलवे स्टेशन से कितनी दूर है। जवाब आया कि करीब बारह मिनट का पैदल का रास्ता है। पैदल ही चला जाए। नरेन इन दिनों दिन में कम से कम दस हज़ार कदम चलने का प्रयास करता है और अपने टेलीफ़ोन में उसने हेल्थ का ऐप भी एक्टिवेट कर रखा है। उसे पैदल चलने का निर्णय पसन्द आया।

बारह लोगों में से तीन काले, आठ गोरे और एक अकेला भारतीय मूल का नरेन। फ़्यूनरल हॉल में दाखिल हुए तो वहाँ करीब पन्द्रह लोग बैठे थे। कार्ला, और लिली के साथ रॉजर का बेटा और भाई भी मौजूद थे। अन्दर घुसते ही फ़्यूनरल डायरेक्टर जिलियन ने पूछा, ''तुम नरेन हो?''

नरेन ने स्वीकृति में सिर हिला दिया और फिर मुड़कर अपने साथियों की तरफ़ देखा... उसके चेहरे के भाव कह रहे थे कि देख लो सब लोग यहाँ केवल मेरे बारे में पूछा गया है। उसे यह सोचकर प्रसन्नता हो रही थी कि सबके चेहरे उतर गए हैं। भीतर से डाँट लगी... बदतमीज़ अन्तिम संस्कार में शामिल होने आए हो। इस वक़्त घटिया सोच को बाहर करो।

रॉजर के बेटे ने अपने पिता की शान में एक कविता लिखी थी जो उसने सबके सामने पढ़कर सुनाई।

अगला नाम नरेन का पुकारा गया कि वह अब रॉजर को अपना ट्रिब्यूट देगा। अचानक नरेन के भीतर का महान पुरुष जाग उठा। उसने कहा कि वह यह श्रद्धांजलि पूरे रेलवे परिवार की ओर से दे रहा है। नरेन का अँग्रेज़ी पढ़ने का अन्दाज़ बिल्कुल बीबीसी टीवी जैसा था। एक एक शब्द को तौलते हुए, उसके अर्थ के अनुसार शब्दों पर ज़ोर देते हुए। पूरे हॉल में सब रॉजरमय हो रहे थे। बीच बीच में नरेन ने कार्ला, लिली और चार्ली के चेहरों को पढ़ने का प्रयास भी किया।

जब वह अपना सन्देश पढ़कर अपनी सीट पर वापिस बैठने को आया तो उसे महसूस हो रहा था कि चार्ली का चेहरा उतरा हुआ था। वहीं यह भी सच था कि चार्ली जल्दी से हार मानने वाले लोगों में से नहीं था। उसने अपने चेहरे को निर्विकार बना रखा था।

रॉजर के परिवार ने उसके पार्थिव शरीर को दफ़नाने के स्थान पर जलाने का निर्णय लिया था। बाइबल की हिम्स के साथ साथ कॉफ़िन आहिस्ता आहिस्ता अपने गंतव्य की ओर बढ़ चला। सच में कहीं कुछ खो जाने का अहसास नहीं था। लग रहा था कि हम सब रॉजर की उपलब्धियों का उत्सव मना रहे थे।

सिवाय कार्ला के बाक़ी सभी चेहरे किसी भी तरह के मातम से मुक्त थे। कार्ला और लिली सभी रेलवे-कर्मियों के सामने नरेन को कसकर गले मिलीं, जैसे अपना सारा दुःख भुला देना चाहती हों। नरेन का कमीनापन यहाँ भी उसे छोड़ नहीं पा रहा था। एक दबी हुई विजयी मुस्कान से उसने सभी साथियों की ओर देखा। न जाने क्यों सबने तय कर रखा था कि नरेन को ख़ुश नहीं होने देंगे। सब एक दूसरे से बतियाने में मस्त।

वहाँ से दो कारों में सवार होकर सभी सहयोगी पब में पहुँच गये। रॉजर हमेशा वोदका और डायट कोक पिया करता था। सभी मातमपुर्सी करने वाले अपने अपने ड्रिंक ख़रीद रहे थे। नरेन देख रहा था कौन कौन ड्रिंक ख़रीद रहा है। कौन कौन-सा ड्रिंक पी रहा है। उसने आगे बढ़कर एक डबल वोदका और डायट कोक का ऑर्डर दिया।

कार्ला ने सुना... ''अरे, यही तो रॉजर का फ़ेवरिट ड्रिंक था।''

''उसी की याद के लिए तो बनवाया है, कार्ला।'' और कार्ला एक बार फिर हल्के से नरेन के गले लिपट गई।

कार्ला से बातचीत के चक्कर में नरेन अपना छुट्टा वापिस लेना भूल गया। यह भी नहीं कहा कि टिप रख लिया जाए।... बारटेंडर पूरी तरह कन्फ़्यूज़्ड सा खड़ा रहा। फिर सिर को एक झटका देकर दूसरे ग्राहक का ड्रिंक बनाने लगा।

वहाँ भी नरेन ने देखा कि सभी गोरे लोग एक ग्रुप बनाकर रेलवे की बातें कर रहे थे। तीनों काले अपने ग्रुप में खड़े थे और वह हमेशा की तरह अकेला था। कालों के लिए गोरा था और गोरों के लिए काला था।

कार्ला और लिली ने वहाँ भी रॉजर और नरेन का एक चित्र दीवार पर लगा रखा था। नरेन के लिए इस चित्र ने जैसे एक जादू का सा असर किया। उसे इससे बढ़कर और क्या चाहिए था कि एक गोरा परिवार एक भारतवंशी को इतना महत्त्व दे रहा है। उसे क्या लेना है ऐसे सहयोगियों से जिनका मुख्य काम असहयोग है।

थोड़ी ही देर में उसे थकान सी महसूस हुई। उसने कार्ला और लिली से इजाज़त माँगी कि वह अब जाना चाहता है। कार्ला अचानक एक आज़दा का कैरियर बैग उठा लाई, ''नरेन तुमको शायद मालूम नहीं की रॉजर पेंटिंग किया करता था। उसने अपने स्टेशन की यह पेंटिंग बनाई है। मेरे हिसाब से तो यह तुम्हारे पास ही ठीक रहेगी।''

नरेन बिना किसी को बोले वो पेंटिंग उठाए घर आ गया। सारे रास्ते वह हर पल को कई कई बार जिया और अन्ततः अपने बैग में से पैनॉडॉल की दो गोलियाँ पानी के साथ निगल गया। इससे अधिक टेन्शन सह पाने की हिम्मत शायद उसमें नहीं थी।

घर पहुँचकर उसने पेंटिंग खोलकर अपने बिस्तर पर फैलाकर देखी। बहुत खूबसूरत पेंटिंग बनी थी। दो दिन वो पेंटिंग उसी तरह उसके बिस्तर पर पड़ी रही और वह लिविंग रूम में सोफ़े पर सोता रहा। शायद उसे कोई निर्णय लेना था। सवाल यह था कि क्या यह पेंटिंग उसके घर की दीवारों के लिए ठीक है? यदि उसके घर की दीवारों पर लगा दी जाती है तो बस वही इस पेंटिंग को देख पाएगा। उसे क्या करना चाहिए... क्या पुष्पा से बात करनी चाहिए?

बेचैनी बढ़ती जा रही थी। मन में यह इच्छा बलवती होती जा रही थी कि यह पेंटिंग स्टेशन की दीवार पर लगेगी तो आते जाते यात्री भी देखेंगे और रॉजर की याद अमर हो जाएगी। किससे बात करे अगर चार्ली से बात करता है तो वो सारा क्रेडिट ले जाएगा और सबको बताएगा कि कार्ला ने उसे यह पेंटिंग दी।

नरेन नहीं चाहता था कि अन्तिम संस्कार के खेल के बाद अब पेंटिंग का खेल शुरू हो जाए। उसने अपने फ़ोन से उस पेंटिंग की फ़ोटो खींची और अपने मैनेजर को व्हाट्सऐप कर दी।... अब चार्ली उससे यह खेल नहीं कर पाएगा।

पराँठा ब्रेकअप

क्षमा शर्मा

अक्टूबर, 1955 में जन्म। साहित्य और पत्रकारिता में पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त। उनके दस कहानी-संग्रह, चार उपन्यास और स्त्री-विमर्श से सम्बन्धित पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बाल साहित्य के लेखन और सम्पादन में शुरू से ही क्षमा शर्मा की रुचि रही है। उनके सत्रह बाल उपन्यास और चौदह बाल कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने बच्चों के लिए विश्व स्तर के बीस क्लासिक्स का हिन्दी रूपान्तरण किया है। आकाशवाणी के लिए कहानियाँ, नाटक, वार्ताएँ, बाल कहानियाँ आदि नियमित रूप से लिखती रही हैं। संस्कृति मन्त्रालय की सीनियर फैलो रही हैं।

मो.: 09818258822

तारा घबराकर उठ गई। लगा कि कोई सपना देखा होगा। लेकिन नहीं उसने ऐसा कोई सपना नहीं देखा था। गरमी लगने से भी कई बार उठ जाती है, वैसा भी नहीं हुआ था। उठकर डाइनिंग टेबल तक गई। पानी का एक घूँट पिया।

कमरे में अँधेरा था। सामने वाली खिड़की की लाइट भी नहीं जल रही थी। बारह से पहले तो बन्द होती नहीं। तो बारह के बाद इतनी रात को किसे आने की पड़ी है। मोबाइल में देखा। लो बारह भी नहीं, ढाई बजे हैं। कहीं कोई चोर-डाकू तो नहीं। कल ही तो अन्नू से जब फोन पर बात हो रही थी, तो वह कह रही थी कि अब सोसाइटीज में भी रहना सेफ नहीं। सी.सी.टी.वी. लगवा लो और सोसाइटी वालों से कहो कि इस तरफ भी चौकीदार रखें। इस तरफ हमेशा अँधेरा होता है। पीछे के पार्क में अक्सर ड्रग एडिक्ट और बदमाश बैठे रहते हैं। दीवार भी इतनी छोटी है। कोई कूदकर आ जाए तो। वैसे भी दीवार के किनारे जो आम का पेड़ है, वहाँ पीछे से पार्क से सीढ़ी लगाकर लोग आम तोड़ते हैं। तो कूदकर आ भी सकते हैं। इसीलिए मुझे हमेशा तुम लोगों के लिए डर लगा रहता है। उस समय तारा को लगा था कि लड़की पता नहीं कितनी दूर की बातें सोचती है। आज माँ की युगों पहले कही बात भी याद आने लगी। वह कहती थी— चोर अक्सर सवेरे की होन में आते हैं क्योंकि तभी अक्सर गहरी नींद आती है। क्या पता माँ की बात सही हो जाए।

लेकिन अब इतनी रात में दरवाज़े पर कौन है। चोर हुआ तो क्या करेगी। सिहरन सी हुई तारा को। सब्जीवाले से लेकर दूधवाले, कामवाली, चौकीदार, दुकानदार सबको तो पता है कि हम दो यहाँ अकेले रहते हैं। आकर कोई न कोई कहता ही रहता है कि अकेले रहना इस उम्र में कितना मुश्किल है, और क्यों न किसी रिश्तेदार को पास बुलाकर रख लें। या चौबीस घंटे के किसी सहायक को रख लें। कम से कम कोई जवान लड़का घर में रहेगा तो वक्त जरूरत काम भी आएगा। रात-बिरात कोई बीमार हो जाए, तो क्या हो। कम से कम दौड़ने वाला कोई तो होगा। वो तो अच्छा है कि अन्नू को उसने इस बारे में नहीं बताया नहीं तो वह पीछे पड़ जाती और हो सकता है किसी आन लाइन एजेंसी से ढूँढ़कर उसे घर ही भेज देती। कहती ही रहती है कि बस बहुत हुआ, कब तक तुम लोग काम ही काम करते रहोगे। हालाँकि तारा को कभी चौबीस घंटे के लिए किसी की जरूरत नहीं रही। शरीर की ऐसी भी गुलामी क्या कि जरूरत होने पर भी हिलने से मना कर दे।

अचानक तारा को फिर याद आया कि दरवाज़े पर कोई है। मगर कोई लुटेरा क्या घंटी बजाकर आएगा। हो सकता है आ ही जाए। जब चोर फेसबुक पोस्ट देखकर आ जाते हैं तो आकर घंटी भी बजा सकते हैं। पहले लगा कि पति को जगा दे। लेकिन क्या फायदा। अपनी तो नींद खराब हुई ही है, उनकी भी क्यों करे।

तारा ने दरवाज़े के पास जाकर मैजिक आई से झाँका। फिर लकड़ी के दरवाज़े की कुंडी हटाकर ग्रिल वाला दरवाज़ा भी खोल दिया।

सामने अन्नू खड़ी थी—''तू इस वक्त। शाम को ही तो बात हुई थी। बता नहीं सकती थी कि आ रही है।''

''बता देती तो सरप्राइज कैसे देती।''

''ये तुझे और तेरे भाई को हमेशा सरप्राइज देने की क्यों पड़ी रहती है। वह भी विदेश से एक रात ऐसे ही बिना बताए आया था, याद है। इतनी रात है। टैक्सी से आना कितना अनसेफ है।''

''हो गईं न शुरू। पता था कि ऐसा ही होगा। लैक्चर अनलिमिटेड शुरू हो जाएगा। संसार के सारे हादसे तुम्हारी ही बेटी के साथ नहीं होने वाले।''

''हाँ हादसे तो कहकर ही होते हैं। पहले से बता देते हैं कि वे होने वाले हैं। और तुझे तो सबसे पहले बता देंगे।''

''ओफ, नाउ स्टाप। कुछ हुआ तो नहीं न। आ गई न

सारी बातें याद करते-करते भी तारा से अब नहीं लेटा जा रहा था। वह चुपके से उठी। फिर बिना लाइट जलाए ही धीरे-धीरे चलकर पति के कमरे तक पहुँची। वहाँ से अपना वह छोटा थैला उठाया जिसमें अपना छोटा पर्स और मोबाइल रखती है। टटोल-टटोलकर फिर लौटी। अँधेरे में किसी चीज़ से पैर न टकरा जाए और चोट लगे, वैसे ही बुढ़ापे और बढ़ती उम्र के सत्तर रोग। लेकिन बच्चों का स्टीरियो टाइप बदलता ही नहीं। उन्हें वही माँ याद रहती है बचपन वाली, जो दिन के चौबीस घंटे उनके लिए बिना थके दौड़ती रहती थी।

ठीक से। जो नहीं हुआ उसके लिए सुना रही हो और मेरा टाइम वेस्ट कर रही हो। चलो कुछ खाने को दो।''

''खाने को तो इस वक्त क्या होगा। पहले से पता होता तो कुछ बनाकर रख देती। अब भुगतो। देखती हूँ, फ्रिज में क्या है।''

''पापा कहाँ हैं?''

''सो रहे हैं दूसरे कमरे में। तुम्हें पता तो है न कि ए सी उन्हें अच्छा नहीं लगता और मुझे ए सी के बिना नींद नहीं आती।'' तारा ने रसोई की तरफ जाते हुए कहा।

''और क्या तुम तो बड़ी आदमी हो। लोगों के पास पंखा तक नहीं और एक ये हैं कि बिना ए सी के रह ही नहीं सकतीं।'' कहकर वह हँसी फिर बोली, ''रहने दो कुछ बनाओ मत। ब्रेड हो तो टोस्ट बना दो।''

''अरे जितनी देर टोस्ट बनाने में लगेगी उतनी ही देर में पराँठा बन जाएगा। अजवायन वाला पराँठा बना देती हूँ। अचार से खा ले।''

'अरे तू।' अचानक आवाज सुनाई दी तो अन्नू बोली, ''लो पापा भी आ गए।''

''मगर तू आ कैसे गई।''

''फ्लाइट से।'' कहकर वह जोर से हँसी।

''हाँ यह तो मुझे भी मालूम है। लेकिन दिवाली पर इतना इन्तजार करते रहे, नहीं आई और अब चुपके से आ गई।'' उसके पापा ने कहा।

''हाँ मैंने सोचा कि दिवाली की कमी अब पूरी कर देती हूँ। डियर डैड, आफिस की मीटिंग थी। तो मैंने सोचा कि चलो अच्छा है तुम लोगों के साथ भी रह लूँगी।''

अन्नू को खाते-खाते बात करते चार बज गए। वह खाती जाती और यमी यमी करती जाती। फिर बोली, ''लग रहा है कि कितने दिन बाद अच्छा खाना खाया है।'' फिर उसने अपनी प्लेट सिंक में रखी और हाथ धोकर अपने कमरे में चली गई। बिस्तर पर पैर फैलाती बोली, ''अपने कमरे में आकर हमेशा कितना अच्छा लगता है। वहाँ कितनी बार सपने में कमरा दिखाई देता है, जैसे मुझे बुला रहा हो। अब इतने दिनों बाद अपने कमरे में आराम से सोऊँगी। तुम लोग भी सो जाओ।''

तारा मुस्करा उठी। बचपन से वह इस कमरे में रहती आई है। कितनी यादें जुड़ी हैं इससे। पहली क्लास से लेकर अब तक की उसकी कितनी शैतानियों, खुशियों, रोने-धोने को समेटे है, यह कमरा। इसे देखकर वह भी तो मुस्कराता होगा। कमरे को भी तो इसकी याद आती होगी।

तारा लेट गई तो नींद नहीं आई। अगर नींद न आए और वह लेटी रहे तो थकान हो जाती है। और दिमाग भी बुलैट ट्रेन की रफ्तार से भागने लगता है। पता नहीं कहाँ-कहाँ की चिन्ताएँ, डर, परेशानियाँ एक दूसरे से हम पहले कि हम पहले की प्रतियोगिता करने लगती हैं। और कोई समय होता तो उठकर कोई और काम करने लगती। अक्सर ऐसा करती है। नींद न आ रही हो तो लगता है कि वैसे ही बिस्तर पर पड़े रहकर क्यों समय बर्बाद करें। जो काम बाद में करना है, उसे अभी ही निपटा दे। इससे जो समय बचेगा, तब और कुछ कर लेगी। आखिर काम कभी खत्म तो होते नहीं। हमेशा मुँह फाड़कर अपने पास बुलाते रहते हैं—ये करो, वो कर, ये नहीं किया, वह नहीं किया, यह रह गया, वह रह गया।

करवट बदलते-बदलते जैसे-तैसे साढ़े पाँच बजे। नींद न आ रही हो, तो चाहे जितना अच्छा बिस्तर हो, काटने दौड़ता है। अन्नू तो उठेगी अपनी मरजी से। दस बजे से पहले तो क्या उठेगी और वहीं से चिल्लाएगी—चाय-चाय। इलायची वाली बनाना। इतने दिनों से अच्छी चाय नहीं पी, तुम्हारे हाथ वाली।

कभी तारा को गुस्सा आ जाता है—किस उम्र तक तू पल्लू पकड़े रहेगी। अपना काम खुद किया कर। पता नहीं क्या-क्या खयाल आते रहे। फिर यह भी लगता है कि परदेस में अकेली रहती ही है। सब काम खुद करती ही होगी। यहाँ आकर इतराती है तो पति की बात याद आ जाती है। वह कहते हैं—अपनी माँ के सामने नहीं इतराएगी तो भला फिर किसके सामने।

अरे क्या इतराती भर है, देखा नहीं कैसा हुकुम चलाती है।

सारी बातें याद करते-करते भी तारा से अब नहीं लेटा जा रहा था। वह चुपके से उठी। फिर बिना लाइट जलाए ही धीरे-धीरे चलकर पति के कमरे तक पहुँची। वहाँ से अपना वह छोटा थैला उठाया जिसमें अपना छोटा पर्स और मोबाइल रखती है। टटोल-टटोलकर फिर लौटी। अँधेरे में किसी चीज़ से पैर न टकरा जाए और चोट लगे, वैसे ही बुढ़ापे और बढ़ती उम्र के सत्तर रोग। लेकिन बच्चों का स्टीरियो टाइप बदलता ही नहीं। उन्हें वही माँ याद रहती है बचपन वाली, जो दिन के चौबीस घंटे उनके लिए बिना थके दौड़ती रहती थी।

चाहे जितने ढोल-नगाड़े बजते रहें उसके पति आराम से सो जाते हैं और एक वह है कि पिन भी गिरे तो नींद टूट जाती है, फिर रात भर बुलाने से भी नहीं आती। उसने पति के कमरे का दरवाज़ा भेड़ा फिर अन्नू का, जिससे उसके उठने से उनकी नींद खराब न हो। कम से कम वे लोग तो आराम से सो लें। सब काम धीरे-धीरे करने लगी बेआवाज़। चलो लड़की आ गई। कुछ दिन रहेगी। हालाँकि जब आती है तो लोकल आफिस और दोस्तों से ही फुरसत नहीं होती। शाम के वक्त अगर घर हो तो जरूर कुछ गप-शप की फुरसत होती है। हालाँकि ऐसा होता बहुत कम है।

घर की हर चीज़ को फेंकने, बदलने के लिए वह तैयार बैठी रहती

है। अक्सर तारा से उसकी बहस हो जाती है—जब सोफा अच्छा खासा है। पहले जितने में लिया था, आज उससे दस गुनी कीमत पर आएगा। मजबूत है, फिर इसकी जगह नया क्यों लाएँ। पैसा फालतू तो है नहीं। जो इस पर खर्च करो, बचाकर जमा कर लो। हाँ फालतू खर्च करो तो खत्तियाँ भी खाली हो जाएँ। लेकिन बचत तो काटती है।

डियर माताश्री यह तुम्हारे वाला जमाना नहीं है कि एक चीज़ खरीदोगी तो पोते का पोता यूज करेगा। और फिर पैसा कमा रहे हैं, तो खर्च भी करेंगे। एंड ओल्ड इज नाट आलवेज गोल्ड। कूड़ा भी होता है। वह कहती।

अरे कौन मना करता है कि मत खर्च करो मगर बेकार की चीज़ों पर क्यों। जिस चीज़ की जरूरत न हो उस पर क्यों। जरूरतों पर खर्च करने को कौन मना करता है। अपना घर बसा लो फिर चाहे जिस पर जैसे खर्च करो। रोकने नहीं आऊँगी। तारा कहती।

जब भी ऐसा होता, पता है तारा को कि अब वह पैर पटकती हुई भाग लेगी। रोके से भी नहीं रुकेगी। मुँह फुलाएगी। लड़ाई को तैयार हो जाएगी।

शादी की बात छेड़ते ही सींग निकालकर दौड़ती है। नौकरी के अलावा बाकी सब जिम्मेदारियाँ बेकार और मुसीबतों से भरी हैं तो उन्हें क्यों उठाएँ। और फिर लाइफ में किसी आदमी की जरूरत किसलिए हो। खर्चा उठाने के लिए। घुमाने-फिराने के लिए। वह कहती है न अक्सर-अकेली घूमती हूँ। इतना कमाती हूँ कि एक नहीं दस का खर्चा उठा लूँ। फिर सिर पर पति के बोझ को लादने की क्या जरूरत। मुझे नहीं चाहिए मि. हस्बैंड।

''तो जो इतने लड़के तेरे दोस्त हैं उनमें से कोई पसन्द नहीं। तेरे लिए क्या कोई नई काट और ब्रांड का विशेष लड़का भगवान बनाकर भेजेगा।''

''अरे स्टुपिड माम, जो भी दोस्त होता है, उससे क्या शादी कर लेते हैं। दफ्तर के काम से पता नहीं किस-किस के साथ, कहाँ-कहाँ जाती हूँ। अभी इटली गई थी न। पहले और भी इतने देशों में जा चुकी। फिर बचपन से लेकर अभी तक बहुत सारे दोस्त लड़के ही हैं। तो क्या सबके साथ शादी करती फिरूँ।''

''भाई तुम लोगों की बातें मेरी समझ में तो आती नहीं। जो दोस्त होता है, उससे शादी क्यों नहीं हो सकती। दोस्त अलग और शादी करने लिए कोई अलग।''

''इसीलिए तो कहती हूँ बुढ़िया, योर टाइम इज गौन। अब इस ऐज में मुझसे पंगा मत लिया कर। मैं आजकल की सुपरवुमैन। ये मेरी कलाइयाँ देखी हैं। बोल किसके दाँत तोड़ने हैं। फिर वह अपनी मुड़ी हुई कोहनी दिखाकर खुद ही हँसती है देर तक। और जोर से गाती है—मोहब्बत, मोहब्बत, मोहब्बत बस तुमसे है।''

फ्रेश होते हुए तारा के दिमाग में न जाने कितनी बातें कौंधती रहीं। लड़कियों की ज़िन्दगी कितनी बदल गई है। वैसे बदली तो अच्छे के लिए ही है। अब पीठ पर किसी गिल्ट का बोझ नहीं लदा है, तारा की जेनरेशन की लड़कियों की तरह। कुछ गलत किया हो, न किया हो फिर भी हर एक से डरना। मुँह खोलकर जवाब न दे पाना और ज़िन्दगी भर अफसोस मनाना कि उसने ऐसा कैसे कह दिया था। मैं तो ऐसी नहीं थी। ऐसी बदले की आग जो कभी नहीं बुझती।

पता नहीं एक बात सोचो तो उसकी पूरी चेन बनती चली जाती है। और एक हद के बाद घबराहट होने लगती है।

तारा जूते पहनकर बाहर निकली। धीरे से दरवाज़ा बन्द करके ताला लगाया। सीढ़ी उतरकर, घूमने लगी। सवेरा हो गया था। मगर आसमान में हल्का सा अँधेरा अभी बाकी था। मगर अभी इक्का-दुक्का ही कोई दिख रहा था। सन डे को हफ्ते भर के काम-काज से थकी पूरी दिल्ली जैसे देर तक सोती है और ऐसा लगता है जैसे सड़कों पर कर्फ्यू लग गया हो। सड़क पर खामोशी पसरी थी। एक स्कूटर तेजी से चला गया था। जिस पर 'तुम मुझे न चाहो तो कोई बात नहीं' बज रहा था। एक बस भी आवाज़ करती चली गई थी। स्कूल बस रही होगी। एक लड़का अपना लैपटाप लेकर जल्दी से सीढ़ियाँ उतरकर भागता हुआ चला गया था। पता नहीं कहाँ जाना है। इतनी सुबह अगर आफिस जा रहा है तो, शायद आफिस दूर होगा। बच्चों को जीवन चलाने के लिए रात-दिन कितनी मेहनत करनी पड़ती है। कब ज़िन्दगी निकल जाती है, पता ही नहीं चलता। तारा की भी तो निकल गई। यों हर एक की ज़िन्दगी निकलती है। किसकी ठहरती है कभी।

घर लौटी तो अभी तक अन्नू और पति सो ही रहे थे। क्या करे। खाना, नाश्ता बनाने में देर हो तो फिर पूरा दिन इसी में निकल जाता है। कुकर में दाल चढ़ाई। चाय बनने रखी और सब्जी काटने लगी। सवेरे के वक्त तीन-चार घंटे किचन में काम कर लो तो पूरे दिन की फुरसत हो जाती है। कई काम तो वह चाय पीते-पीते ही निपटा देती है। हाथ, कान, नाक सब अपने अपने काम में तेजी से लगे होते हैं। सब्जी को बिना देखे ही पता चल जाता है कि पक गई। कुकर की सीटियाँ बता देती हैं कि दाल पकने में अभी और कितना वक्त है।

वह सब्जी छौंकने ही जा रही थी कि सामने अन्नू आ खड़ी हुई—माम, चाय। जरा बढ़िया बनाना, अदरक, इलायची वाली। थकेली नहीं

शाम को सब्जियाँ बनाकर तारा इन्तजार करती रही कि कब वह लौटे और गरम पराँठा बनाए। लेकिन उसका मैसेज आया कि तुम और पापा खा लो। देर हो जाएगी। यहीं खा लूँगी। तारा को जैसे आग लग गई। इतनी मेहनत की। बाजार जाकर पनीर लाई। शाम से ही खाना पका रही थी। और अब यह मैसेज। अपने लिए तो सवेरे का ही इतना कुछ रखा था।

चाहिए, समझीं क्या।''

''मगर तू इतनी जल्दी कैसे उठ गई।''

''नौ बजे मीटिंग में पहुँचना है।''

''आज मीटिंग। सन डे को भी छुट्टी नहीं।''

''सन डे, मन डे, कुछ नहीं। वर्क इज वर्क। और तुम्हीं तो कहती हो कि इस उमर में काम नहीं करूँगी तो कब करूँगी।'' वह अपने फोन पर तेजी से उँगलियाँ चलाते बोली।

''तो खाना। ले जाएगी।''

''खाना नहीं, सिर्फ नाश्ता।''

''क्या बना दूँ। आलू के पराँठे।''

''खट्टी चटनी है तो बना दो। दो पैक भी कर देना। रोहित के लिए ले जाऊँगी। आम का अचार भी रख देना, उसे बहुत पसन्द है। जब भी वापस जाती हूँ, उसे तुम्हारे पराँठे-अचार बहुत अच्छा लगता है। पिछली बार तो सारा अचार अकेला ही खा गया।''

''अरे, शर्म नहीं आती। तू तो हमेशा खाती रहती है, अगर उसने एक बार खा लिया तो ऐसा क्या हो गया।'' तारा ने कहा।

''कर्टसी भी कोई चीज़ होती है। मेरी माँ के हाथ का बनाया खाना और अचार कोई अकेला कैसे खा सकता है।''

''अन्नू, इतने छोटे दिल का नहीं होना चाहिए। तू तो हमेशा खाती रहती है, एक बार किसी और ने खा लिया तो परेशान होने की क्या बात है।''

''जी नहीं, रहने दो अपना बड़ा दिल। सबके सब उल्लू बनाकर निकल लेते हैं। किसी ने तुम्हें कभी कुछ खिलाया है जो मैं किसी को कुछ खिलाऊँ।''

''लेकिन रोहित है कहाँ? वह आया है तो यहां क्यों नहीं आया?'' तारा ने पूछा।

''वह भी आफिस की मीटिंग अटेंड करने आया है। यहाँ क्यों आएगा।''

''क्यों का क्या मतलब। बच्चे जैसा ही तो है।'' तारा ने कहा तो अनघा बोली— ''हाँ तुम्हारी तो दुनिया बच्चा है। मुझे छोड़कर। लाओ एक कप चाय और दो। फिर मुझे नहाना है।''

वह नहाकर, नाश्ता कर तैयार होकर चली गई इस हिदायत के साथ कि शाम को उसके लिए पूरा कुकर भर कर पनीर, बैंगन का भुर्ता और सादा पराँठे बनाए जाएँ।

शाम को सब्जियाँ बनाकर तारा इन्तजार करती रही कि कब वह लौटे और गरम पराँठा बनाए। लेकिन उसका मैसेज आया कि तुम और पापा खा लो। देर हो जाएगी। यहीं खा लूँगी। तारा को जैसे आग लग गई। इतनी मेहनत की। बाजार जाकर पनीर लाई। शाम से ही खाना पका रही थी। और अब यह मैसेज। अपने लिए तो सवेरे का ही इतना कुछ रखा था।

दस बजे वह लौटी। साथ में रोहित भी था।

''यह लड़की हमेशा मुसीबत में डालती है। बता नहीं सकती थी कि वह भी आ रहा है।''

तारा चाय पानी का पूछने लगी तो रोहित ने मना कर दिया, ''आंटी कुछ नहीं चाहिए। आपसे मिलने आ गया। सवेरे निकलना भी है। इसलिए बस पन्द्रह मिनट में चला जाऊँगा।''

''मैं तो सोच रही थी कि रुकोगे।''

''नहीं अगली बार। आपके भेजे पराँठे इतने अच्छे लगे कि और कुछ नहीं खाया।''

''क्यों दही खाया तो था। झूठा कहीं का।''

अन्नू... तारा ने आँखें दिखाईं तो रोहित और वह दोनों जोर से हँसे।

''आदत है इसकी आंटी। कुछ भी बोलती रहती है।'' रोहित बोला।

''लेकिन बेटा खाना बना हुआ है। खाकर जाओ न।''

लेकिन उसने मना किया। कहा, ''आंटी अभी भूख नहीं है। आपके भेजे पराँठे देर से खाए थे। मीटिंग ही चार बजे खत्म हुई।'' नाश हो ऐसे काम का। जहाँ न बच्चों को खाने की फुरसत, न रहने की; न सोने की, जब देखो तब आफिस और उसका काम।

उसके जाने के बाद तारा ने कहा, ''तुझे भी कल जाना है, तो दोनों साथ ही चले जाते।''

''मुझे किसी चेप के साथ वापस नहीं जाना। अकेली नहीं जा सकती क्या। पूरी दुनिया में अकेली घूमती हूँ। साथ के लिए यही खड़ूस चाहिए।''

''एक तरफ उसे अपने साथ ले आई। उसके लिए अचार और पराँठा ले गई। और अब कभी उसे खड़ूस कह रही है, कभी कुछ और। तुम लोग आखिर चाहते क्या हो।'' तारा ने गुस्से से कहा।

''कुछ नहीं, वह आखिरी बार तुमसे मिलने आया था। आखिरी बार ही तुम्हारे हाथ के पराँठे खाए हैं।

''क्या मतलब?''

''मतलब-वतलब समझी नहीं। हमारा दो महीने पहले ब्रेक अप हो गया। अब हम रिलेशनशिप में नहीं हैं। आज उसी ने तुमसे मिलने की ज़िद की थी, इसलिए ले आई। अब कभी नहीं।''

''मतलब। ब्रेकअप। किस कारण से।''

''कारण पर्सनल है।'' अनघा ने कहा तो तारा को बुरा लगा। अब माँ-बाप से भी बहुत सी बातें पर्सनल कहकर छिपा लेनी चाहिए। इतनी दूरी कैसे पैदा हो गई। अभी ये हाल तो आगे क्या होगा।

तारा सही समझती है कि वह इस जेनरेशन को बिल्कुल नहीं जानती। उसके और इनके बीच में लम्बी दूरी है, जो बढ़ती ही जा रही है। वह चाहे जितनी तेज दौड़े, इन्हें पकड़ना तो दूर इनके पास भी नहीं पहुँच सकती।

सतह पर चाँद

रजनी गुप्त

जन्म : चिरगाँव, झाँसी, उ.प्र.। शिक्षा: एमफिल. पी-एच.डी.। जे.एन.यू. नई दिल्ली। प्रकाशित पुस्तकें : 8 उपन्यास, 5 कहानी संग्रह, 2 आलोचनात्मक पुस्तकें। अनेक पुस्तकों का सम्पादन। सम्मान : युवा लेखन सर्जना पुरस्कार, आर्यस्मृति साहित्य सम्मान, अमृत लाल नागर पुरस्कार, अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में द्वितीय पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा रावी स्मृति सम्मान तथा महादेवी वर्मा अवार्ड।

मो.: 09452295943

चमचमाते थ्री स्टार होटल गिलियार्ड के अहाते में जब उसने कदम रखे तो वहाँ के भव्याकार झाड़-फानूस, लकदक करते रंग बिरंगे लट्टू और गद्देदार रेड कार्पेट पर दफ्तर के दर्जनों सहकर्मी तेजी से इधर उधर घूमते फिरते दिख रहे थे। वह अपने दोस्त सचिन को फोन मिलाने की सोच ही रहा था कि सामने से आते दिख गए मंडल प्रमुख और उनकी हमकदम बनी स्मार्ट सी महिला पर नजरें टिक गईं। दोनों हँसते बतियाते हुए रेडकार्पेट पर वीआईपी की तरह कदमताल कर रहे थे जिन्हें देखकर माहौल में गहमागहमी व्याप गई।

''अरे, अरे, डीएम आ गए। बाकी लोग अभी तक नहीं पहुँच पाए। क्या बात है? क्या हुआ? अमुक अमुक कहाँ पर अटक गया? उसे फोन करो। उसे तुरन्त बुलाओ। यहाँ की व्यवस्था कौन देख रहा है? कॉल हिम...'' वे सबके बारे में पूछने लगे।

''सर, मल्होत्राजी यह सारी व्यवस्था देख रहे हैं। आते होंगे। वैसे भी वे थोड़ी देर से आते हैं।'' तिर्यक मुस्कराहट में एक विशेष मुद्रा से उचारे उनके बोल सुनकर वे तैश में आ गए।

''ओ, तो ऐसी बात है। ये सब पहले क्यों नहीं बताया? अभी ठीक करता हूँ इस मल्होत्रा को।'' कहते हुए वे डिवीजनल मैनेजर को फोन पर ही डाँटने लगे।

''सर, मैडम ने ही तो कहा था कि ताजे रजनीगंधा के फूलों वाले बुके ही लाना। वही ले रहा हूँ। फ्लावरमैन अभी अभी आया है।''

''क्या बुके लाने का कहा था आपने?'' मोबाइल पर हाथ रखे पूछते हुए उन्होंने सहमति में सिर हिलाया। तब तक वे आश्वस्ति भरी आवाज में बोलीं, ''एनीवे, कम फास्ट। सीएम सर पहुँचने ही वाले हैं।''

उनकी आवाज की अतिरिक्त मिठास सुनते हुए अलौकिक की नजरें पल भर के लिए उसी एक सीन पर अटक गईं— तो यही है शताक्षी मैडम जिनकी आँखें मंडल प्रमुख के साथ एक विशेष भंगिमा से नृत्य कर रही हैं। एक खास खम के साथ टेढ़े होते होंठों पर सायास लाई मुस्कान —''अरे सर, शर्माजी तो बहुत बढ़िया काम करते हैं मगर मैडम नेगी किसी काम की नहीं। अपने विभाग के अलावा कुछ और करने में दिलचस्पी नहीं इनकी। पता है आपको?'' उनकी आवाज में खनकता तंज सुनकर बॉस के चेहरे पर तनाव व्याप गया।

''अच्छा, देखता हूँ मैडम नेगी को। पूछता हूँ आज ही बुलाकर...'' उन्होंने अपनी सत्ता के रोब का हुंकारा भरा।

तब तक लगभग सभी स्टाफ सदस्य होटल के कारीडोर में जमा होते गए। एक से बढ़कर एक नायाब परिधानों में लिपटी महिलाएँ और सूट टाई संग मैचिंग कोट में चमचमाते मोबाइल लिए अधिकारीगण। अनायास माइक पर मैडम की भाव भरी मधुर मीठी आवाज समाँ को बाँधने लगी— ''रेस्पेक्टेड सर एंड माई विलव्ड कलीग्स, टुडे आई वांट टु कन्वे सम इंपोरटेंट मैसेज... माहौल में ठांय ठांय आवाज में अँग्रेजीदाँ रंग घुलने लगे थे।

अलौकिक तो उस दिव्य सुन्दरी कही जाने वाली महिला के लफ्जों को मुग्ध भाव से सुन गुन रहा था। गहरी नीली साड़ी में चटख पीले फूलों के रंग संयोजन से बना बॉर्डर और नीले पीले रंगों के सहमेल से बना ब्लाउज। उनकी खुली पीठ पर लहराती केशराशि और चमकते चेहरे पर लावण्य के अनगिनत रंग। सबसे अनूठा था— उनके होंठों से झरती शहदनुमा वाणी—डियर फ्रेंड्स, आज हम सभी कितनी शिद्दत से अपने कार्पोरेट टारगेट छूने के लिए दिलोजान से मेहनत कर रहे हैं फिर भी नतीजे हमारे फेवरेबल क्यों नहीं हैं? ये तो सोचने की बात है। आपको पहले से ज्यादा मुस्तैदी से फील्ड में अपना परफार्मेंस देना होगा, गिव योर हंड्रेड परसेंट...

बोलते हुए उनके होंठों ने कमाल का अभिनय किया। गोल गोल होंठों को एक झटके से मुस्कराती मुद्रा में बॉस की तरफ विशेष अदा से निहारते हुए बोलती रहीं वे । फिर अचानक से मेज तक आईं और उनकी फाइल उठाकर

पूरा दफ्तर दोनों के सहमेल से चलता। शताक्षी की धाक बहुत जबरदस्त थी। नीचे से ऊपर तक उनका दबदबा कायम रहता। इनके पहले वाले बॉस के साथ भी जुगलबन्दी ऐसी ही थी जब वे उनके साथ कौसानी फील्ड विजिट पर साथ गईं। जब वे वहाँ से लौटीं तो बॉस उनके इर्द गिर्द भँवरे की तरह मँडराते नजर आने लगे। शताक्षी बॉस के केबिन में साधिकार आतीं जातीं। कहे, अनकहे अधिकार क्रमशः समझौतों या लेन देन में बदलते गए।

माइक पर फिर से बोलने लगीं। इस समय वे विधि विशेषज्ञ की हैसियत से नहीं बल्कि बॉस की पीए बनाम दाईं हाथ बनकर सारी टीम की इकलौती सूत्रधार बनी इठलातीं रूपसी के रूप में सम्मोहक मुद्रा में खड़ी थीं। उनके चेहरे पर बिछे थे आत्ममुग्धता के भाव। आत्मलिप्त मुद्रा में उन्होंने सामने बैठे लोगों पर ऐसे नजरें फेंकीं जैसे प्रभु ने अपने भक्तों पर निगाह डालकर उन्हें निहाल कर दिया हो।

अलौकिक गौर से देखते हुए सोच रहा था या सोचते हुए देख रहा था, कहना मुश्किल है। मन्त्रमुग्ध भाव से निहारता, सुनता, गुनता या बुनता रहा उनके बोलों को। माइक पर फिकती उनकी मद्धिम मधुर आवाज कानों में घंटियों की तरह प्रार्थना धुन बनकर रस घोलने लगीं। उनकी नीली पीली साड़ी आसमान के दो टुकड़ों में तब्दील हो गई जैसे आधा आसमान नीले रंग का हो और बाकी में पीले बादल। साफ गोरा रंग, सामान्य कद काठी, भरा बदन और मेकअप में रंगा लिपा-पुता चेहरा। धीरे धीरे दूर दराज से आए अधिकारियों की समस्याओं पर चर्चा केन्द्रित हो गई। बॉस का सपोर्ट करती शताक्षी, एक एक अधिकारी को गौर से देखते हुए कुछ कुछ टिप्पणी करती जा रही थी जैसे सीटी स्कैन पर हरेक स्टाफ सदस्य की जाँच की जा रही हो।

''तो आप कब से वहाँ हैं? 5 साल से ज्यादा हो गए और अभी तक गाँवों में हमारे प्रोजेक्ट के टार्गेट पूरे नहीं हुए। फील्ड में क्यों नहीं जाते आप लोग? बस बैठे बैठे की तनखा चाहिए सबको... कुर्सी से उठकर धूप में जाने की जहमत नहीं उठाएँगे तो कैसे आगे बढ़ेंगी हमारी स्कीमें? आई बात समझ में?'' बॉस जानबूझकर ऊँची आवाज में बोलते जा रहे थे कि वे बीच में टोकने लगीं—

''सर, इनका पिछला रिकार्ड अच्छा रहा।'' वे धीरे बॉस के कान में फुसफुसाईं तो उनके तेवर ढीले पड़ गए— ''ठीक है, जाओ, सारी योजनाओं का लाभ नीचे तबके तक पहुँचना चाहिए। समझ गए न?''

एक एक करके सम्बन्धित अधिकारी नमूदार होता और वे अपने हिसाब से गोटियाँ बिठाकर बॉस को उसकी खूबियाँ या खामियाँ गिना देतीं। वे वही करते, जैसा वे कहतीं। अपनी सत्ता का गुरूर और कर्ता होने का बोध उनके हावभाव से टपकता रहता।

पूरा दफ्तर दोनों के सहमेल से चलता। शताक्षी की धाक बहुत जबरदस्त थी। नीचे से ऊपर तक उनका दबदबा कायम रहता। इनके पहले वाले बॉस के साथ भी जुगलबन्दी ऐसी ही थी जब वे उनके साथ कौसानी फील्ड विजिट पर साथ गईं। जब वे वहाँ से लौटीं तो बॉस उनके इर्द गिर्द भँवरे की तरह मँडराते नजर आने लगे। शताक्षी बॉस के केबिन में साधिकार आती जातीं। कहे, अनकहे अधिकार क्रमशः समझौतों या लेन देन में बदलते गए। ये प्रोफेशनल रिश्ते तभी तक, जब तक कि रिश्ता लेनदेन पर टिका रहे। अलौकिक उनकी रासलीला के किस्से सुनता या उनको देखते हुए न जाने क्या क्या सोचता रहा।

किसी दिन उड़ती खबर आई कि दफ्तर के कुछ अनाम लोगों ने उनकी लिखित शिकायत मुख्यालय तक पहुँचा दी है। वहाँ से जाँच टीम आई ओर कुछ घंटे सवाल जवाब शताक्षी से भी हुए। उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती नजर आईं मगर जल्दी ही वे फिर से पूर्ववत चमकते चाँद की तरह रोशनी बिखेरने लगीं। दरअसल उनकी फितरत ही ऐसी मस्तीखोर औरत की थी जिसे हरदम अपने आसपास कुछ न कुछ अनूठे रस का सोता चाहिए था जिसमें आकंठ डूबकर वह जीवन रस को घूँट घूँट करके गले से नीचे उतार लें। गरिमाबोध के रस को चुभलाते औरों को अपने से कमतर समझकर वे एक विशिष्ट भावभंगिमा ओढ़ लेतीं और आत्ममुग्धता के नशे में डूबी सबसे ऊँचे पायदान पर इठलाते हुए बैठ जातीं।

''हाँ तो मिस्टर अलौकिक, आपने अपने टार्गेट पूरे किए?''

''यस सर, उसके बाद उसने सिलसिलेवार अपने क्षेत्र से जुड़े मुद्दों पर खुलकर बोलना शुरू किया। देर तक शताक्षी उसे घूर घूरकर देखती रही। बॉस के बीच में वे मीठी आवाज में आहिस्ते से बोली, ' गुड, वेरी गुड, मिस्टर अलौकिक, व्हाट ए लवली नेम यू कैरी, व्हाट्स द मीनिंग ऑफ योर नेम...'

''यूनीक...'' उसने सहजता से जवाब दिया।

''व्हाट?'' इस बार चौंकने की बारी उनकी थी।

''यस, दिस इज द मीनिंग ऑफ माई नेम। '' इस बार वह मुस्कराने लगा।

''ग्रेट...'' वे चहकते हुए बोलीं, ''एंड यू कैरी इट्स मीनिंग टू ...'' एक खास खम के साथ होंठों को मोड़ते हुए उन्होंने भरपूर प्यार भरी नजरों से उसे देखा फिर मिठास भरी जुबान में बोली— ''नाइस मीटिंग मिस्टर यूनीक। आई विल कॉल यू यूनीक। सी यू सून।''

''यू हैव गुड कमांड ऑन इंग्लिश।'' उन्होंने सराहना भरी नजरों से देखकर बॉस के कान में कुछ कहा तो वे तपाक से बोल पड़े— ''इट्स ओवर मिस्टर अलौकिक, कीप इट अप। वैल डन।''

दोनों लंच पर फिर एक दूसरे से टकराए। शताक्षी खाने की प्लेट लेकर उसके पास आई और चंद मिनट बाद सीधे सीधे पूछ बैठी— ''आर यू मैरिड मिस्टर यूनीक?''

''यस मैम।'' कहते हुए उसने चारों तरफ अपनी नजरें घुमाईं और निर्लिप्तता से जवाब देकर अपनी जगह पर लौट गया।

शताक्षी ने गर्दन घुमाकर एक बार फिर से अलौकिक की तरफ

देखा, वह मोबाइल में उलझा था। देर रात तक बैठक चलती रही। चाय कॉफी व स्नैक्स के दौर चलते रहे। डिनर के बाद वे तेजी से अपनी काले रंग की लम्बी बड़ी कार की तरफ नपे तुले कदमों से मुड़ गईं । अगले ही पल बॉस भी उनके पीछे वाली सफेद कार में चलते बने। अलौकिक ने घड़ी देखी— रात के ग्यारह बज चुके थे। वह भारी कदमों से खुद को ठेलते हुए अँधेरी रात में पैदल चलते हुए होटल की तरफ चल पड़ा। रात गई, बात गई, सोचकर अलौकिक वापस अपने सेंटर लौट आया। रोज की तरह पूर्ववत काम करते हुए अपने में तल्लीन कि अचानक से मोबाइल पर मैसेज चमका— हैलो मिस्टर यूनीक, कैसे हैं आप डू यू रिमेम्बर मी आई डू मिस यू डियर... योर फ्रेंड... कुछ देर वह उसी सन्देश को पढ़ता रहा, सोचता रहा कि दो मिनट बाद फिर एक सन्देश— ओ मिस्टर यूनीक, सोच रहे होंगे कौन हैं ये अब और ज्यादा दिमाग न लगाएँ। मैं शताक्षी...

''ओ मैम...'' अनायास उसने टाइप कर दिया।

''हा... हा...'' करते हुए स्माइली चस्पाँ कर दिए गए उस तरफ से। फिर लिखने लगी— ''यू आर सो सिंपल एंड जेनुइन पर्सन मिस्टर यूनीक। उस दिन की बैठक में आपको देखा और आपकी नपी तुली सन्तुलित व सटीक बातें सुनीं। यू आर सिंपली टेलेंटेड एंड ग्राउंडेड पर्सन। आई एडमायर यू सो मच...''

अपनी तारीफ पढ़कर वह असहज सा हो उठा। फिर संयत सधे ढंग से जवाब दिया— ''थैंक्स ए लॉट...

''वैलकम डियर। हाँ, एक जरूरी बात करनी थी। क्या तुम नोएडा आना चाहते हो? बड़ी महत्त्वपूर्ण पोस्टिंग है। तुम कहो तो सिफारिश करूँ तुम्हारी?''

वह सोचने लगा, ये खामहखाँ क्यूँकर उस पर इतनी मेहरबान होने लगी। वजह? कुछ तो बात होगी।

''हैलो, अरे आप तो चुप हो गए। बोलिए न?'' फिर वही हँसी की स्माइली ।

''अपनी वाइफ से पूछकर बताऊँगा। शी इज टीचर इन ए स्कूल...'' ऐन मौके पर कुछ भी बहाना गढ़ने की कला में वह बचपन से ही पारंगत था।

''वैल मिस्टर यूनीक। बिल वेट। लेट मी नो सून...''

''श्योर मैम, सो नाइस ऑफ यू। थैंक्स अगेन...'' अपने बिखरे शब्दों को समेटते हुए उसने आहिस्ते से एक एक शब्द भेज दिए।

अनायास उसकी स्मृति में उस दिन की सारी घटनाएँ कौंध गईं कि किस कदर चमक चौदस की तारीफ में कसीदे काढ़ने शुरू कर दिए थे— ''लिसन यार, कमाल की चीज है यह चमक चौदस। क्या हँसती है कि हँसती चली जाती है। अरे, जादू है उसके बोलों में, ऐसा जादू जो सीधे सर चढ़कर बोलता है जिसे सुनकर मुर्दे के प्राणों में जान लौट आए कि जिसे देखते रहने का जी करे, जिसकी चाल देखकर विकलांग आदमी खुद चलने पर मजबूर हो जाए। गजब है चमक चाँदनी की हर चीज...।''

''अरे यार, उसका नाम क्यों नहीं लेता ये क्या बात बात पर चमक चौदस लगा रखा है।''

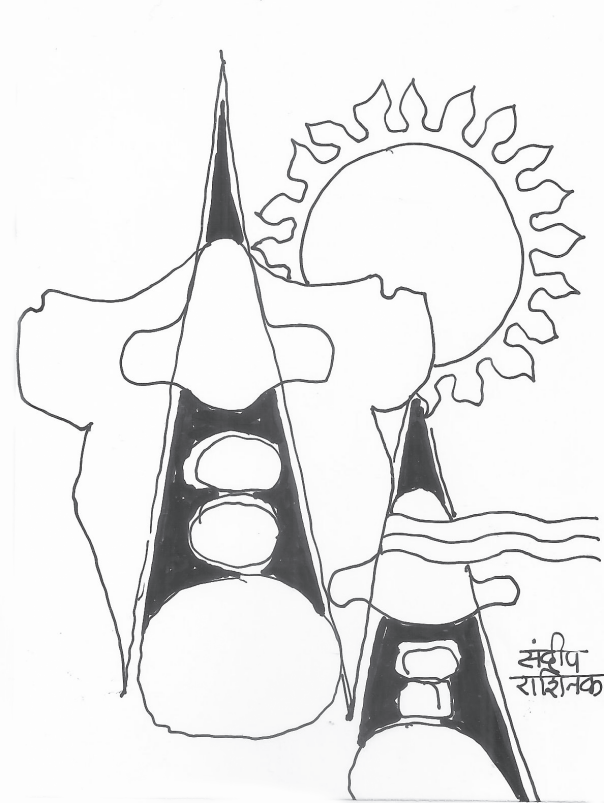

''तू नहीं समझेगा। उसका रंग है धवल चाँदनी के माफिक, एकदम सुफेद जैसे छत पर बिछी हो स्वच्छ चाँदनी...

''ऐ, तू तो कविता बाँचने लगा? तू कहना क्या चाहता है, साफ साफ बता न...

''यार, जब वो कमर मटकाकर चलती है, तो गजब ढाती है। एक बार बात करते करते उसने कन्धे पर नरमी से अपना मखमली हाथ रखा तो ये सोया घोड़ा जाग जाता, हाँ यार, तब मन बेकाबू हो जाता है, सच्ची कै रिया...।'' उसने ठेठ अन्दाज में बोला।

''क्या फालतू बातें सोचता रहता है तू? भाभी मायके गई हैं क्या?''

''तू नहीं सुधरेगा कभी। सुन, वो तुझमें बहुत दिलचस्पी ले रही थी। अरे हाँ, ऐसे चौंककर मत देख।''

''क्या? क्यों इतनी रुचि लेने लगी मुझमें? उसका टाँका तो कइयों संग फिट है, तू ही तो कह रहा था उस दिन?''

''तू पढ़ाकू है, खासा हैंडसम है, स्मार्ट है, ठाँय ठाँय अँग्रेजी बोलता है सो तुझे देखकर रीझेगी वो जरूर। क्या जवाब दूँगा मैं अपनी भाभीजान को? उसे देखकर जल्दी से दोस्ती करने का हाथ मत बढ़ाना गुरु। उसने गोलमोल जवाब देकर बात को लच्छेदार बनाने की कोशिश की।

''लिसन, मेरी दिलचस्पी ऐसी औरतों में कतई नहीं जो अपना दिल लिए घूमती रहतीं कि जैसे ही कोई मिले और उसे दिल का वो नाजुक टुकड़ा सौंप दिया जाए। आई लाइक टु बी चूजी एंड स्पेसिफिक...'' उसने सावधानी बरतते हुए जवाब दिया।

पहली बार सुना था— चमक चौदस, बहुत अटपटा लगा । ये कैसा अजीब सा संबोधन है, मगर उन पर ऐसे संज्ञा, सर्वनाम या विशेषणों का कोई खास असर नहीं पड़ता था। वे रूपसुन्दरी थीं, गुणसुन्दरी थीं पर क्या सचमुच ? यूँ उनके नाम के चर्चे क्षेत्रीय कार्यालय से लेकर सुदूर मंडल कार्यालय, यहाँ तक कि दूरस्थ ग्रामीण केन्द्रों तक भी थे। जितने मुँह, उतनी बातें। जितने लोग, उतने मुख से उतनी चर्चा, कुचर्चाएँ, वातवितंडा, प्रपंच और मनगढ़न्त मसालेदार बातों के चटखारेदार किस्सों की धूम मची रहती, जिनकी सूत्रधार थीं शताक्षी सचदेवा।

''हूँ, सो व्हाट ? उसे भा गया होगा और क्या ?''

''अरे ऐसी गलतफहमियाँ न पनपें, उसी में उसकी भलाई है, समझा कुछ ?''

''हमने भी ऐसे किस्से सुने हैं। अपने बॉस को मुट्ठी में दाबने के लिए वह नियम से उसके घर जाती थी। उसके पेरेंट्स का इलाज कराने मेडिकल कॉलेज ले जाती तो उसकी बीवी को शॉपिंग कराने मॉल ले जाती। पूरा कॉकस है इसका दफ्तर में। चुनचुनकर चारा डालने की कला में माहिर है ये औरत। फिर एक बार जो शागिर्द बन जाए, फिर कहना ही क्या ? उस पर सवारी करती रहती ये शेरनी बनकर बेखौफ बेलगाम।'' ऐसे रसीले किस्सों में मजा लेते हुए वे बोलते रहे।

पहली बार सुना था— चमक चौदस, बहुत अटपटा लगा । ये कैसा अजीब सा संबोधन है, मगर उन पर ऐसे संज्ञा, सर्वनाम या विशेषणों का कोई खास असर नहीं पड़ता था। वे रूपसुन्दरी थी, गुणसुन्दरी थी पर क्या सचमुच ? यूँ उनके नाम के चर्चे क्षेत्रीय कार्यालय से लेकर सुदूर मंडल कार्यालय, यहाँ तक कि दूरस्थ ग्रामीण केन्द्रों तक भी थे। जितने मुँह, उतनी बातें। जितने लोग, उतने मुख से उतनी चर्चा, कुचर्चाएँ, वातवितंडा, प्रपंच और मनगढ़न्त मसालेदार बातों के चटखारेदार किस्सों की धूम मची रहती, जिनकी सूत्रधार थीं शताक्षी सचदेवा।

''हूँ'' एक लम्बी साँस लेते हुए अलौकिक ने जवाब दिया— ''दरअसल ऐसी औरतें भीतर से बेहद खाली, तन्हा और खोखली होती हैं कि हाथ रखते ही ढहने के लिए तैयार। दोहरी पर्सनैल्टी होती है इनकी। सच तो ये है कि इन्हें आज तक कायदे का पुरुष मिला ही नहीं। न जाने कब से भटक रही है इसकी रूह।'' सोचते हुए चुन चुनकर बोलता रहा वह।

''रूह ऊह नहीं जानती वह। उसे तो सीधे शरीर से मतलब रहता है, झपट्टामार शैली में किसी को भी अपने कब्जे में लेने के लिए बौराई औरत है ये, फिर वो बेचारा कहीं का नहीं रहता। कइयों के किस्से सुने हैं इसके संग।'' उन्होंने ऐसे रोचक प्रसंगों को नमक-मिर्च लगाकर उनके ज्ञान में इजाफा करना चाहा ।

''जो भी हो, हमें क्या ?'' अलौकिक ने तटस्थ ढंग से जवाब दिया।

''पूरा दफ्तर थर्राता है इसकी एक आवाज से। जहाँ जी चाहा, किसी भी समय उठकर चल देती है ये। कौन है इसे रोकने टोकने वाला ? पति कहीं बाहर बिजनिस के सिलसिले में आता जाता रहता। एक बच्ची है शायद जिसके लिए कह रही थी कि हमें किसने पढ़ाया जो हम इसे पढ़ाएँ। अपने आप पढ़ लिख लेगी।'' कहकर ठहाका मारकर उन्मुक्त ढंग से हँसी थी शताक्षी उस दिन।

वह चुपचाप सुनता रहा ऐसे बेतरतीब किस्सों को। उसकी स्मृति में पल भर के लिए जरूर टिकतीं ऐसी बातें मगर अगले ही पल वह अपनी दुनिया में जा पहुँचता जहाँ अतीत की रेखाएँ बोलने लगीं। कैसी पजल बन गई है उसकी ज़िन्दगी। नौकरी के खटराग में थम गया है उसका गीत लेखन-गायन। इस महकमे में कोई कद्रदाँ नहीं जबकि वह अखिल भारतीय स्तर पर दो बार टीवी चैनल के प्रोग्राम्स में प्रतियोगिता जीत चुका है। मुम्बई में गुजारे वे संघर्ष भरे दिन रात जब वह एक स्टुडियो से लेकर दूसरे तीसरे तक चक्कर काटते काटते घर लौटता तो खुद को इस गलाकाट प्रतियोगिता में कहीं नहीं पाता। न, कोई ऐसा मजबूत खम्भा मिला जिस पर सिर टिकाकर वह सुकून भरे दो पल बिता पाता। जो एकाध संगी साथी टकराए भी, वे शॉर्टकट के रास्ते पेट भरने लायक कमा खा रहे थे।

न, उसे यह कतई मंजूर नहीं था कि उसके लिखे गीत किसी और नाम से बाजार में खप जाएँ। सारे सपने एक एक करके धूल चाटते नजर आए और वह इस बेमजा ज़िन्दगी से तंग आकर घर लौट आया, जहाँ उसकी बचपन की दोस्त मायरा ने उसे मजबूत संबल दिया और अपने प्रेम से बाँध लिया। तब लगा, कितने खूबसूरत रंग होते हैं प्रेम के, एक बूँद असीम सुख के लिए, सिर्फ उससे बात करने के लिए बौराई रहती वह। जहाँ ऐंद्रिकता नहीं बल्कि स्वाभाविक संवेगों से ऊर्जस्वित सहज बालसुलभ बातें, ममत्व और देखरेख ने उसके अन्दर जीने की ताकत बख्शी। जीने की लालसा बढ़ने लगी और जीने की वजह भी । वह सीने से लपेटकर मीठा मनुहार करतीं—

''अलौकिक, इस बार हम दोनों एक साथ कम्पटीशन की तैयारी करते हैं। कुछ न कुछ तो होगा ही।'' उसकी आँखों में अपने लिए बरसते नेह में भीगता रहा वह। उसके प्रेम का नशा उसके अन्दर उतरता गया। उसकी वे मासूम बातें— ''हम साथ हैं तो एक शानदार ज़िन्दगी हमारी राह तक रही है। तुम्हारे लिखे व गाए गीतों की तो मैं शुरू से ही फैन रही हूँ। बस, एक बार पैर टेककर जमना होगा किसी नौकरी में, फिर अपने सपने को भी जी लेंगे। जाएँगे कहाँ सपने हमें छोड़कर ?'' कहकर वह विशेष अदा से मुस्कराई तो उसकी पलकों में उगते सपनों की फसल देखकर उसने हिम्मत की— अभी तो हमारे पास पेट भरने लायक काम है ही नहीं। किसी तरह बिखरे शक्ति कण समेटकर दे दी राज्य स्तरीय परीक्षा। नौकरी के तुरन्त बाद चटपट कर ली शादी। धीरे धीरे रूटीन ज़िन्दगी में उसके गीतकार- गायक बनने के सपने न जाने कहाँ किस बिल में दुबक गए, पता ही नहीं ।

क्रमशः चेहरे पर उम्र की महीन रेखाएँ अपनी जगह बनाने लगीं।

उनके अन्तस में सफेद उजाले भोर की तरह रोशनी बिखेर रहे थे। तब दूर दूर तक अँधेरों का अन्दाजा नहीं लगा पाया वह। नवजात बेटे की गम्भीर बीमारी ने तोड़ दिया पत्नी को। पूरी कोशिशों के बावजूद नहीं बचा पाए वे उसे। तब से पत्नी डिप्रेशन से जूझ रही थी।

वह समझ नहीं पा रहा था कि उसका अचानक तबादला मुख्यालय नोएडा कर दिया गया। पत्नी की सेहत के लिहाज से तो ठीक रहेगा, सोचकर उसने राहत की लम्बी साँस ली।

नए सिरे से ज़िन्दगी की नई शुरुआत। दफ्तर में पहला दिन। एक खुशगवार लम्हा। स्मार्ट और जहीन लड़के लड़कियों के बीच खुद को पाकर वह खुश हो उठा। शताक्षी अपनी मनमोहक मुस्कान के जादू से उसे कनखियों से देखे जा रही थी। बीच बीच में बॉस उसे बुलाकर छोटे बड़े काम समझाने लगता। यहाँ तो सचमुच शताक्षी का रुतबा बरकरार था। दफ्तर के अधिकांश लोग उस पर निर्भर थे, मसलन, कब कहाँ, कौन सी पार्टी होनी है, वही तय करती। किसके जन्मदिन पर पार्टी होगी या किसके लिए विशेष तोहफा आए या बॉस के टूर प्रोग्राम्स में कौन साथ जाएगा जैसी छोटी बड़ी सब बातें। एक बार वीआईपी प्रोग्राम्स की एंकरिंग में वह अलौकिक को साथ ले गई और जब माइक उसके हाथ में आया तो उसने अपनी मीठी मधुर जुबान में स्वरचित प्रार्थना गीत सुनाया तो मन्त्री का पी.ए. तो अलौकिक के पास खिंचा चला आया।

''क्या कमाल का गाते हैं आप इतना शानदार गाना आपने खुद लिखा है? गजब बोल हैं। क्यों नहीं हमारे मन्त्री जी के नाइट प्रोग्राम्स में आकर गाते हो?'' कहते हुए उन्होंने अपना कार्ड उसे थमा दिया।

''श्योर...?'' कहते हुए वह चुप हो गया पर शताक्षी मैडम ने अपने विशेष अन्दाज में उसकी तरफ अपना फ्लाइंग किस उछाला और एक बार में ही तीर सीधे निशाने पर गहरे धँसता गया। अनायास कृतज्ञता बोध तले दबता गया उसका वजूद ।

अक्सर ऐसे मौके आते रहते जब वह उससे सीधे सीधे टकरा जाती और वह कन्नी काटकर खुद को बड़े सलीके से अलग कर लेता। एक बार उसके विभाग की सीनियर के जन्मदिन के मौके पर सब उससे गाने की मनुहार करने लगे पर उसने जवाब दिया— ''आज तो कुछ भी सुनाने का मन नहीं है।''

''नहीं, नहीं, कोई बहाना नहीं चलेगा। एकदम नहीं चलेगा। आज तो कह दिया सो कह दिया, मानना ही पड़ेगा।'' शताक्षी जैसे अपनी बात पर अड़ गई। उसकी जिद भरी तेज आवाज सुनकर अलौकिक को गुस्सा आ गया— ''मन नहीं। घर जल्दी जाना है, मायरा को डॉक्टर को दिखाना जरूरी है।'' उसने सीधे सीधे टका सा जवाब उसके मुँह पर दे मारा ।

''नो बहाना, प्लीज... कहते हुए उसने तरेरती नजरों से उसे घेरने की तैयारी कर ली। तभी ऐन मौके पर मंडल अधीक्षक आए और केक कटने के बाद तेजी से चलते बने। मौके की नजाकत भाँप वह भी उनके पीछे पीछे चल पड़ा।

सारा दफ्तर देखता रह गया। शताक्षी की बात की अवहेलना करने का साहस तो किसी में नहीं था। अलौकिक की हिम्मत तो देखो, कैसे दो टूक लहजे में कह दिया— ''मुझे भी निकलना है, माफ कीजिएगा।'' फिर पलटकर देखा भी नहीं। तमतमायी नजरों से शताक्षी ने घूरकर देखा।

''देख लेंगे तुम्हें भी, बड़ा आया बीवी की चमचागिरी करने वाला। हुँह, हिम्मत है किसी में जो मुझे चैलेंज करे। ऐसे चुटकियों में मसलकर रख दूँगी इसे तो...'' नाक फुलाकर बड़बड़ाते हुए चल दी शताक्षी अपनी कार की तरफ ।

''दम्भ से अकड़कर गर्दन टेढ़ी हो गई होगी उसकी तो...'' दफ्तर का वाकया सुनकर मायरा ने अलौकिक की आँखों में देखते हुए पूछा।

''तो? अरे, हमने ठेका ले रखा है उसे खुश करने का? सारे दफ्तर को उंगलियों के इशारे पर नचाती है, तो क्या मुझे भी वैसा ही केंचुआ समझ रखा था? उसके हुकुम का पत्ता हूँ, कि गुलाम बना उसके इशारों पर नाचता रहूँ? नो, नैवर। उसे जो सोचना हो, सोचे। सौ बार सोचे, हजार बार सोचे । हू केयर्स? तबादले का कोई डर नहीं रहा अब... कहते हुए उसने मायरा की हथेली दबाई और दोनों मुस्कराने लगे।

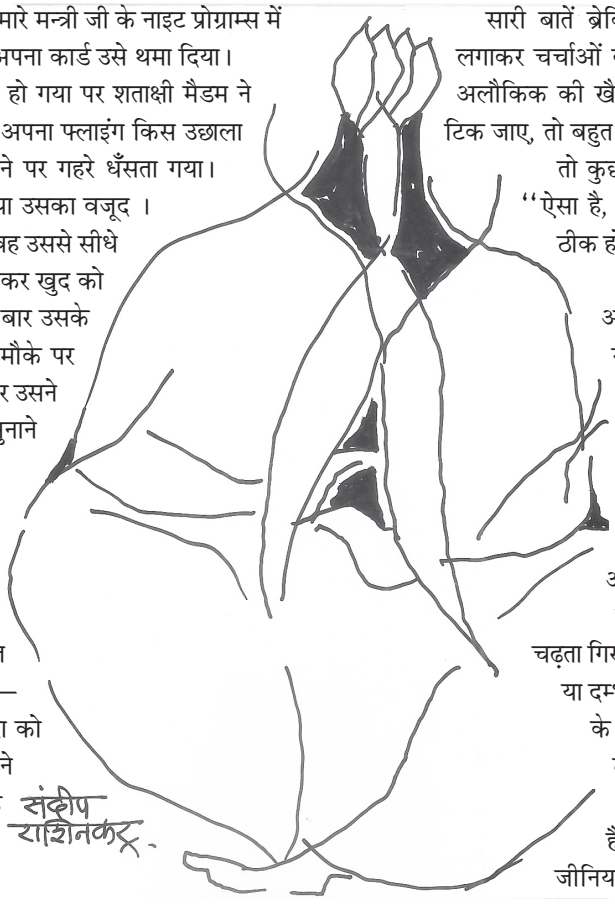

सारी बातें ब्रेकिंग न्यूज बनती गईं। नमक मिर्च लगाकर चर्चाओं का बाजार गर्म होता गया— ''अब अलौकिक की खैर नहीं। ज्यादा से ज्यादा हफ्ता भर टिक जाए, तो बहुत है। इससे ज्यादा नहीं।''

तो कुछ लोग उसे सलाह देने पहुँच गए— ''ऐसा है, तुम मैडम को सॉरी बोल दो। सब ठीक हो जाएगा।''

''पर मेरा गुनाह क्या है? बिना अपराध के अपराधी क्यों बनाया जा रहा है मुझे? नहीं स्वीकार मुझे। जिसे जो दिखाए सो करे। मैंने जो ठीक समझा, बोल दिया। मैं अडिग हूँ अपने बोलने पर। किसी की भी चापलूसी स्वीकार्य नहीं मुझे। बस, बहुत हो चुका। इस टॉपिक पर अब और कोई बात नहीं।''

कुछ दिन अफवाहों का बाजार भाव चढ़ता गिरता रहा, सेंसेक्स की तरह। उनके अहं या दम्भी मिज़ाज का आकलन करते स्टाफ के लोग और मोहतरमा की पिछलग्गू टीम के लोग उन्हें भड़काते रहते।

''देखा, कैसे अकड़कर चलता है अलौकिक। खुद को बड़ा भारी जीनियस समझता है। तुम तो इसे सीधे

झुमरीतलैया भिजवाना मैडम।'' तभी बीच में कोई और बोल पड़ा— ''अरे इसे तो किसी गुमनाम से गाँव में पटकवा दो मैडम जिससे तंग आकर ये नौकरी छोड़ने पर मजबूर हो जाए। अरे, आपसे सीधे सीधे टकराने की हिमाकत की है इसने। कल का लौंडा, आपको चैलेंज करने लगा। इसकी इतनी जुर्रत? ऐसा करने की हिममत कैसे आई इसमें?'' उसका खास चमचा उनके कानों में जहर भरने में लगा रहा।

''आखिर चाहता क्या है वो? क्यों नहीं सीधे सीधे मैडम के पास आकर सुलह कर लेता? पर वो तो कह रहा था, मेरा गुनाह तो बताए कोई। वैसे कानूनन तो वो सही कह रहा।'' कम बोलने वाले सागर ने बीच में कुछ कहा तो इस बार मोहतरमा ने उस कलीग की तरफ तरेरती नजरों से देखा मगर कुछ बोली नहीं।

''सही बात । कौन से नियम कानून का उल्लंघन किया उसने? कोई किसी को गाने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। हाँ... कुछ सामने तो कुछ पीठ पीछे बातें घूमती, चक्कर काटती रहीं। अचानक एक दिन मुख्यालय से कोई गुमनाम खत आया जिसमें शताक्षी समेत कुछ और स्टाफ के लोगों के नाम लेकर आरोप लगाए गए जो अपने प्रभुत्व व दबदबे का गैर बाजिब प्रयोग करके स्टाफ के लोगों को प्रताड़ित करते हैं। अगले ही दिन मुख्यालय से टीम आई और दफ्तर के एक एक सदस्य को बुलाकर स्टेटमेंट लिया गया। उनका चिल्लाना सुनकर लोग सकते में आ गए— ''क्या चिड़ियाघर बना डाला है आपने इस दफ्तर को? आप सब यहाँ काम करने आते हैं या तफरीह करने?'' शताक्षी से अलग से घंटों बातें हुई।

दफ्तर में गहमागहमी रही। माहौल में अनकही चुप्पी। किसने लिखा होगा ऐसा पत्र? कौन था ऐसा बंदा जिसने यहाँ की एक एक खबर को मुख्यालय तक पहुँचा दिया? सवाल ही सवाल पर जवाब किसी के पास नहीं। अलौकिक पर शक इसलिए नहीं गया कि उसे यहाँ आए अभी महीना भी पूरा नहीं हुआ था और पत्र में दर्ज बातें लगभग 6 महीने पुरानी थीं। शताक्षी अपने चिर परिचित अन्दाज में पहले की तरह सबसे मिलती। काम के नाम पर कम्प्यूटर खोलती। कुछ घंटों तक मोबाइल पर बतियाती या फिर गाड़ी उठाकर कहीं चल देती।

इस समूचे माहौल में अलौकिक का दम घुटने लगा। जिसके अन्दर संवेदना का सूखा पड़ा हो, ऐसे धूर्त, पाखंडी या नकली लोगों से मेरा कोई संवाद सम्भव नहीं। झूठे अहंम का मुखौटा ओढ़कर जीते लोगों से माफी, किसलिए? कुछ नियमों की अवहेलना का आरोप उस पर मढ़ दिया गया जैसे जानबूझकर दफ्तर से जल्दी घर चला जाता है या बिना बताए सीट से गायब रहता है पर उस पर ऐसी बातों का कोई असर नहीं होना था, सो नहीं हुआ।

इस समूचे माहौल में अलौकिक का दम घुटने लगा। जिसके अन्दर संवेदना का सूखा पड़ा हो, ऐसे धूर्त, पाखंडी या नकली लोगों से मेरा कोई संवाद सम्भव नहीं। झूठे अहंम का मुखौटा ओढ़कर जीते लोगों से माफी, किसलिए? कुछ नियमों की अवहेलना का आरोप उस पर मढ़ दिया गया जैसे जानबूझकर दफ्तर से जल्दी घर चला जाता है या बिना बताए सीट से गायब रहता है पर उस पर ऐसी बातों का कोई असर नहीं होना था, सो नहीं हुआ।

इन सबसे राहत पाने वह एक दिन मायरा संग अंडमान आइलैंड की सैर करने निकल पड़ा। दोनों अपनी ज़िन्दगी में मस्त। बेफिक्री में समन्दर में गोते लगाते उछलकूद कर रहे थे कि कहीं से उसे शताक्षी नजर आई। किसी सुदर्शन साथी का हाथ पकड़े समन्दर की लहरों संग अठखेलियाँ करती।

''मायरा, देखो, दूर क्षितिज की तरफ जाती हुई, पतली नारंगी रेखा के नीचे, धीरे से चलते हुए, वो जो शॉर्ट्स में दिख रही है, वह शताक्षी ही है न? या कोई और...''

''चलकर उसी से पूछ लेती हूँ, उसके जवाब का इन्तजार किए बिना वह उसकी तरफ चल दी जहाँ काले रंग की टीशर्ट पहने एक लड़की लहरों का लुत्फ लेते हुए खोई खोई सी कहीं देख रही थी।

''हाय, आई एम मायरा। हाउ आर यू?''

''फाइन, बट आई डांट नो यू...'' उसकी आँखों में अपरिचय के अक्स उभर आए।

''हाय, शताक्षी नाम है न आपका?''

''नहीं, सॉरी। मेरा नाम मीनाक्षी है, बट, यस, शताक्षी मेरी कजिन है, शायद थोड़ी शक्लें मिलती हों।'' कहते हुए वह हँस दी।

''आप उसे जानती हैं। कैसी है वो?''

''वैसे हमारी ज्यादा बातें नहीं होतीं। यू नो, वो लाइफ के हर पल को निचोड़कर बूँद बूँद पीकर जीना जानती है। उन्मुक्त ढंग से जीना पसन्द है उसे। बचपन में ही घर छोड़कर मुहल्ले के लड़के संग भाग गई थी। बाद में उसे भी छोड़ दिया। शी इज सिंगल नाव।''

''क्या? और वो बच्ची? सुना है, पति कहीं बाहर बिजनेस करता है, ये सब क्या हैं? उसने प्रश्नातुर नजरें उस पर टिका दीं।

''सब कोरी अफवाहें। खुद उसी ने फैलाई हैं। एक बात, पावर या सत्ता को अपनी मुट्ठी में कैद रखने की कला में माहिर है वो।''

''पर अपने बारे में इतना सब झूठ बोलते हुए उसे कोई गिल्ट वगैरा नहीं होती?''

''पता नहीं पर हाँ, सच्चे प्यार की भूखी है वो। जो मिलता है, उसे यूज करके बाद में किनारा कर लेती। सुन्दरता का जादू बिखेरकर मतलब साधना कोई उससे सीखे।'' उसने विरक्ति भरे उचाट स्वर में कहा।

''पर ये रंग, ये रूप, ये सब कब तक? उसके बाद?''

''ये सब बातें समझाकर हम लोग थक चुके। काश कि उसकी ज़िन्दगी में कोई सलीके से रहने वाला मजबूत इरादों वाला आदमी आया होता जो उसे जीने की कला सिखाता। इसके टेंशन में पेरैंट्स गुजर गए। वे इससे कितनी बार कहते रहे कि ये घर लौट आए मगर इट्स माई

लाइफ, सो मैं अपनी मर्जी से जिऊँगी, हरदम यही गाना गाती रही।'' उसने एक एक बात सोचकर कही।

''और ये नौकरी?''

''लिसन, नौकरियाँ तो इसके आगे पीछे दौड़ती हैं। पढ़ाई में होशियार रही है। डिग्रियाँ हैं इसके पास। पैसों को एय्याशी से खर्च करती है। सबसे बड़ी बात, खुले हाथों से पैसों को उड़ाती है। मनचली या मस्तीखोर तो है मगर अपना भला बुरा खूब समझती है।''

अभी वे दोनों बातें कर ही रहे थे कि पीछे खड़े अलौकिक ने सारी बातें सुनकर कहा, ''मुझे इसके झूठ बोलने का तभी पता चल गया था, जब वो बोली कि अपने पापा के साथ ऐश से रहती है मेरी बेटी। मुझे अपनी बेटी की पढ़ाई की कोई परवाह नहीं। अपने आप पढ़ लेगी जैसे मैं पढ़ी हूँ।'' सुनकर तभी मैं चौंका था कि जरूर कोई बात है। तब से मैं इसे ऑब्जर्ब कर रहा था।''

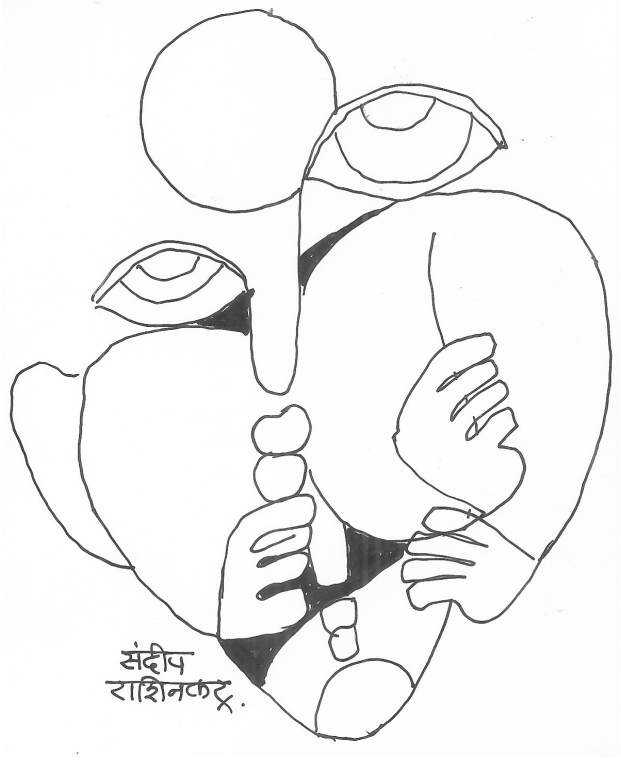

तीनों की गुफ्तगू घंटे भर तक चलती रही। अँधेरा बढ़ने लगा था और आसपास की रोशनियाँ के पीले रंगों का जादू सड़क पर तैरने लगा। हल्की बारिश से तर ब तर दोनों ने बगल वाली दुकान पर बैठकर गर्मागर्म पकौड़े खाए। समन्दर अभी भी हल्की हवा के थपेड़े खाता हुआ किनारे पर खुद को ला पटकता और सिर उठाते हुए वापस अपनी गठरी समेट भीतर तलहटी की तरफ मुड़ जाता। न जाने क्या सोचकर अलौकिक के होंठों पर मुस्कान तैरने लगी— ''मैंने पहले ही दिन पहचान लिया था उसे। एकदम खाली, खोखली और जीवन रस से शून्य बेजान औरत हो तुम। ज़िन्दगी में जो डूबा नहीं, वो भला जीवन रस को कैसे पिएगा। यूँ ही अराजक ज़िन्दगी जीने के लिए अभिशप्त हो तुम। अपने ही दम्भ और अकड़ में चूर, बड़बोली शताक्षी, भीतर से खोखल पेड़ की तरह पल भर में ढहने के लिए अभिशप्त आत्मा की तरह...

''ऐ, कहाँ खोए हो?'' मायरा के टोकने पर उसने जल्दी जल्दी दो गर्म पकौड़े एक साथ खा लिए।

अलौकिक को उसकी कही बातें रह रहकर याद आने लगीं— ''यू नो मिस्टर यूनीक, आप इस भीड़ से अलग हैं, बस इसलिए तो पसन्द हैं आप मुझे। आपके साथ घूमने फिरने या वक्त गुजारने की ख्वाहिशें जगने लगी हैं मिस्टर यूनीक... . ''

''रियली?'' उसके मुँह से अनायास निकल गया।

''और नहीं तो क्या? मैं किसी ऐरे गैरे नत्थू खैरे को जरा भी लिफ्ट नहीं देती। यू आर वैरी स्पेशल फॉर मी। वैरी वैरी स्पेशल, लाइक यू...'' इस बार उसने हवा में रंग बिरंगे वैलून फेंकते हुए खास लहजे में जुमले फेंके— ''यू आर सिंपली ए टेलैंटेड एंड जेनुइन पर्सन। उस दिन का गजब का प्रेजेंटेशन देखकर तो बॉस बहुत खुश हैं। कहने लगे, तुमने बिल्कुल सही बंदे को चुनकर सही जगह फिट किया। वो मेरी च्वाइस पर मुहर लगा रहे थे...।''

''थैंक्स...''

''अब हम अच्छे दोस्त तो बन ही गए हैं।'' कहते हुए उसने दायीं हथेली बढ़ाई और बरबस उसकी हथेली भी बढ़ गई, किसी स्वचालित मशीन की तरह। शताक्षी देर तक तमाम मीठी बातों का जादू जगाती रही— ''यू नो, हम सब अपनी अपनी जगह बहुत तन्हा हो गए हैं। हसबैंड की दूर पोस्टिंग, मैं यहाँ अकेली। यार, कोई तो ऐसा दोस्त चाहिए न जिसके साथ हम दो पल सुकून से हँस बोल सकें, नहीं क्या?'' उसने आगे बढ़कर खुद पहल करते हुए उसके कन्धे पर आत्मीयता से हाथ रखते हुए कहा— ''आई एम ऐ ग्रेट एडमायर ऑफ योर सिंपलीसिटी एंड...

''थैंक्स थैंक्स।''

''ये क्या थैंक्स थैंक्स लगा रखी है। मारूँगी मैं तुम्हें। यार, तुम इतने संकोची हो कि क्या बताएँ... खैर छोड़ो। यू आर रियली ग्रेट एंड आई एडमायर योर सेंस ऑफ बिलांगिंगनैस। यूनीक, आई रियली लाइक यू । लिसन, इस संडे खाली हो तो चलें कहीं घूमने, हम और तुम...''

''सोचकर बताता हूँ। जल्दी ही। थैंक्स अगेन... संकोचवश वह चुन चुनकर एक एक लफ्ज बोलता रहा पर उसके लगातार आते फोन और संदेशों की तो जैसे झड़ी लग गई थी। वह कतई नहीं चाहता कि मायरा को यह सब बताकर उसे डिस्टर्ब किया जाए। बेशक वह खुले विचारों की है, पर ये सब पढ़कर पता नहीं क्या सोचे ।

फोन पर उसकी लम्बी लम्बी बातें। उसके सान्निध्य में साथ गुजारने की ख्वाहिश और उन एकान्त लम्हों की कल्पनाएँ। वह उसके हाव भाव को बखूबी समझ रहा था पर वह चुप बना रहा। ज्यादा से ज्यादा— ''हाँ, हूँ ... ओके, सोचकर बताएँगे... कहकर टाल जाता। एकान्त क्षणों में उसे लेकर कुछ खयाल उड़ते हुए आए, रंगीन तितलियों की शक्ल में फिर उसके साथ निकटता भरे पल गुजारने की अदम्य इच्छाएँ फन उठाकर फुफकारने लगतीं पर अगले ही पल वापस मुड़ जाते खयाल समन्दर से लौटती लहरों की तरह। अपने भीतर वैसी उमड़न घुमड़न महसूस करता। एक दिन उसने साफ शब्दों में उसे समझाना चाहा— ''मैडम, बुरा न मानें तो एक बात कहूँ आपमें इतनी बेचैनी, इतनी

सुनकर वह अचानक से बुझ गई। उत्साह भरे गुनगुने मौसम में अचानक जैसे गर्म हवा के थपेड़े लगे हों। लम्बी साँस लेकर सोचने लगी— कैसी विचित्र पहेली है ये लड़का। कभी तो इतनी केयर करेगा जैसे हमारा सबसे बड़ा आत्मीय हो तो अगले ही पल हमसे सैकड़ों किलोमीटर दूरी पर नजर आएगा। अभी तक तो जो भी उसकी ज़िन्दगी में आए, उन पर यूँ चुटकियों में उसके रूप सौन्दर्य का जादू चल जाता था पर ये किस मिट्टी का बना है जिस पर इन सबका जरा भी असर नहीं।

अस्थिरता या इतनी अधीरता क्यों? हर जगह क्यों उड़ेलती रहती हैं खुद को? ये ठीक बात नहीं। समय निकालकर थोड़ी देर मेडिटेशन किया करो। सँभालो अपने आवेग को वरना बिखर जाएँगी।''

''मिस्टर यूनीक, इतनी गहराई कहाँ से आई आपके अन्दर? बड़े फिलॉस्फर हो, मगर, पहले मुझे ये आप कहना छोड़ दें।''

''मगर इतना खालीपन क्यों? सपनों, आकांक्षाओं यानी उम्मीदों से भरी पूरी ज़िन्दगी है तुम्हारी। खुद पर भरोसा भी है...वो तो जरूरत से ज्यादा है...।'' कहते हुए उसने कनखियों से उसे देखा।

तभी तो वो दम्भ में बदल जाता है... उसने कहना चाहा मगर प्रकट रूप से इतना ही बोल पाया— ''खुद को मजबूत बनाओ कि कोई तुम्हारे भीतर की दुनिया में न पहुँच सके, न जान सके तुम्हारे अन्तस को। इतनी दमदार बनाओ खुद को कि...

अचानक बीच में बात काटते हुए बोल पड़ी— ''मगर तुम तो पहुँच सकते हो। दोस्त हो न...'' हँसते हुए जवाब दिया उसने।

''अपनी भीतरी दुनिया में उतरना सीखिए आप। दुनिया को सिर्फ अपनी नजरों से देखोगी तो एकपक्षीय तस्वीरें दिखेंगी। औरों की नजरों से खुद को तटस्थता से देखो। तनिक ठहरकर सोचो कि दूसरे आपके बारे में क्या सोचते हैं। वैसी ग्रेविटी या गहनता लाइए न अपने अन्दर।'' उसने एक एक बात को चबाते हुए समझाना चाहा।

''हू केयर्स फॉर अदर्स आई डांट।'' उसने तुनककर जवाब दिया।

''पर तुम्हारे आँखें मूँद लेने से क्या होगा? सच तो वही है जो दुनिया अपनी नजरों से देख रही हे। सोचो जरा, कोई आँखें मूँदे गुफा में ये सोचकर तपस्या करने चला जाए कि उसने तो किसी को नहीं देखा पर दुनिया ने तो उसे गुफा में जाते देखा था न यू गॉट माई प्वाइंट?''

''हुँह...'' उसने मुँह बिदकाकर जवाब दिया।

''शताक्षी, ये जीवन तुम्हारा है जिस पर तुम्हारा हक है, जैसे चाहो, जियो। मैं तो बस दोस्त होने के नाते, अपने अनुभव के कुछ टिप्स दे रहा था। मानना, न मानना आपकी मर्जी... बीच में बात काटते हुए बोल पड़ी वह— ''आज शाम शॉपिंग करने चलें कहीं तुम्हें कुछ कपड़े खरीदवाने हैं और हाँ मुझे भी। यहाँ से सीधे चल पड़ेंगे...''

''फिर कभी...'' उसने टालना चाहा।

''ऐ यूनीक महाशय, इतने नखरे ठीक बात नहीं। बस, हम चल रहे हैं, समझ गए न?'' कहने के साथ उसकी पीठ पर धौल मारते हुए बोली— ''ठीक 6 बजे चलेंगे। ओके?''

बाजार में चहकते अन्दाज में सामान खरीदती शताक्षी। ट्रायल रूम से बाहर निकलकर उसे अपने परिधान दिखाते हुए— ''इसमें कैसी लग रही हूँ ये ब्लैक तो मेरा फेवरेट है, तुम्हारा भी तो? और ये पर्पल वाला टॉप, कैसा लग रहा?''

''ठीक है, अच्छा है,'' वह हाँ, हूँ करता रहा। फिर अपनी पसन्द का कुर्ता उठा लाया। शताक्षी ने ललचायी नजरों से उसे देखकर कहा— ''यूनीक, ये क्रीम कलर मुझे जरा भी पसन्द नहीं।''

''पर ये तो मैंने मायरा के लिए लिया है... माई वाइफ।''

सुनकर वह अचानक से बुझ गई। उत्साह भरे गुनगुने मौसम में अचानक जैसे गर्म हवा के थपेड़े लगे हों। लम्बी साँस लेकर सोचने लगी— कैसी विचित्र पहेली है ये लड़का। कभी तो इतनी केयर करेगा जैसे हमारा सबसे बड़ा आत्मीय हो तो अगले ही पल हमसे सैकड़ों किलोमीटर दूरी पर नजर आएगा। अभी तक तो जो भी उसकी ज़िन्दगी में आए, उन पर यूँ चुटकियों में उसके रूप सौन्दर्य का जादू चल जाता था पर ये किस मिट्टी का बना है जिस पर इन सबका जरा भी असर नहीं।

अलौकिक सोचने लगता, इसे अपने सौन्दर्य का इतना गुमान क्यों है। माना कि वह गोरी है, चेहरा मोहरा ठीक ठाक है मगर इससे क्या? अपने इर्दगिर्द इतना प्रभामंडल कि तमाम भयातुर लोगों को अभयदान की असीम तुष्टि या तृप्ति रस में मगन रहती। अभी तक बचकानी हरकतें, हर बात में उछलकूद। मानसिक विचलन इतना कि हर घंटे उससे फोन पर बात करने के लिए लालायित, जब कि उसके पास बताने को कुछ खास होता नहीं। दुनिया को अपने सम्मोहन में जकड़ने का उसका ये दर्प कतई प्रभावित नहीं करता। अक्सर अहसास होता जैसे इसके जीवन में सूनापन तो है जिसे वह बाहरी चीजों से भर लेना चाहती और भरकर दुनिया को दिखाना भी चाहती। इसके अन्दर कहीं कोई ठहराव नहीं। इसके बहाव को देखकर चिढ़न होती। दर्जनों लोगों से हँसी ठट्ठा करती और उनकी तारीफ से खुशी से दुहरी तिहरी होती और खुद को बेहतरीन मानने की आत्ममुग्धता। किसी ने इसके अन्दर मजबूती के बीज नहीं बोए। उसके वृक्ष बनने तक के सफर को वह पूरे धीरज और संकल्प के साथ प्रतीक्षा करती। फिर उसकी शाखाओं की छाँह में सुकून से बैठने का लुत्फ उठाती। नहीं जानती वह धीरज की परिभाषा। न ही सीखना चाहा कभी। जो भी उसके प्रतिकूल बात करता, वह बेरहमी से उसे झिड़क देती, फिर चाहे वो कोई भी हो। सच तो ये है कि खुद के खिलाफ कुछ भी सुनना उसे गवारा नहीं। हर समय चाटुकारिता भरी बातें करते हुए तारीफें बटोरना, बस यही रास आता है उसे।

फिर एक दिन। दफ्तर के दो दिन का प्रशिक्षण शिविर कार्यक्रम में शहर से बाहर जाकर शामिल होना था। मुख्यालय से दो सौ किलोमीटर दूर सुबह सवेरे कैसे जाना होगा, अभी वह उधेड़बुन में ही था कि ऐन

मौके पर मोहतरमा का फोन आ गया— ''ऐ मिस्टर यूनीक, कल सुबह चल रहे हैं न हम ?'' आवाज में एक खास किस्म की खनक थी।

''जाना तो पड़ेगा ही पर कैसे, यही तय नहीं कर पा रहा कि बस लूँ या टैक्सी या...

''अरे, अरे, मैं हूँ न। कितनी शानदार कार चलाती हूँ। सभी कहते हैं। अब ये भी मुझे ही बताना पड़ेगा कि मैं लेने आऊँ या महाशय खुद तशरीफ लाएँगे ? ओके यार, मिस यू डियर। हम रास्ते भर खूब बातें करेंगे, खूब मस्ती भरे गाने सुनेंगे, आपके श्रीमुख से भी सुनने की तमन्नाएँ पूरी हो जाएँगी...'' उसने अपना बोलना जारी रखा।

''एक्चुअली, उस दिन मुझे कहीं और जाना है, पहले से प्लान है वरना साथ चलते। वैसे वहाँ रुकने की व्यवस्था भी तो है, तो मिलेंगे वहीं पर।'' वह जल्दी से अपनी बात खत्म कर देना चाहता था।

''हाँ, मैंने वो सब प्लानिंग कर ली है। हम कर लेंगे रुकने की व्यवस्था। डोंट वरी, मेरे बुद्धू...'' चुनौती भरे अन्दाज में कहते हुए वह हँस पड़ी। आवाज में फिर से वही दम्भ, वही अहं, वही दम खम वाला ओवरस्मार्ट रवैया ।

रात भर कल्पनाओं के भँवर में डोलते रहा वह । ये वह क्या करने जा रहा है, क्यों कर रहा है ? सीधी सादी मायरा को धोखा देने की योजनाएँ बना रहा है जबकि उसकी खातिर मायरा ने क्या नहीं किया। अपनी नौकरी तक छोड़ दी थी कि हम अकेले नहीं रहेंगे। उसके डिप्रेशन का कितने दिनों तक इलाज कराया और आज वह, ऐसी स्थिति में उसे छोड़कर, उससे छिपाकर इसके संग कुछ खास आत्मीय लम्हे बिताने की योजनाएँ बनाने लगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि यह प्रशिक्षण वगैरह भी शताक्षी के दिमाग की उपज हो। होने को तो कुछ भी हो सकता है। वो कुछ भी कर सकती है पर...

अनायास दिमाग किसी और दिशा में घूमने लगा। शक, सन्देह और साजिश की सुई यहाँ वहाँ घूमने लगी। सुबह होते ही वह चल पड़ा। अगली सुबह की ताजा हवाएँ और बादल के नायाब रंग अठखेलियाँ करते हुए उगते बालसूर्य को घेरे हुए थे जिसे देखकर अलौकिक का मन रोमांच से भर उठा। अक्सर हवाई यात्रा करते हुए उसका मन करता कि काश कि वह बादलों पर चल पाता । आसपास घना अँधेरा, बादलों की लुकाछिपी, चिड़ियों का सुरीला संगीत और हवा की लय सुनते हुए मन किसी अनजान दिशा की तरफ झूमने लगा। विचार भी तेजी से आते जाते रहे। प्रशिक्षण केन्द्र के पास बने हॉलीडे इन में उसके रहने का इन्तजाम कराया है शताक्षी मैडम ने। उसका मैसेज आया था— ''इट्स ए वंडरफुल प्लेस, प्लैजेंट सरप्राइज फॉर यू, ओके ?''

''ठीक है, सीधे वहीं पहुँच जाएँगे।'' बात यहीं इस बिन्दु पर आकर खत्म हो गई थी।

ट्रिंग....ट्रिंग...अनायास घंटी की आवाज सुनकर नींद खुल गई।

''कौन ?'' नींद में डूबी किसी महिला की आवाज सुनकर शताक्षी बुरी तरह चौंकी।

''काले रंग के टाइट पैंट और जालीदार सफेद टॉप में बनी ठनी शताक्षी ने उसे चुनौतीपूर्ण नजरों से देखते हुए पूछा, ''आप कौन ?''

अलौकिक की जगह किसी महिला को देखकर वह पल भर के लिए हतप्रभ रह गई जैसे बोलना भूल गई हो। एक दूसरे को एकटक निगाहों में देखते हुए जैसे उसे तौल रही हो। सवालिया अन्दाज में तीखापन शुमार था। मौन भंग करते हुए मीठी आवाज में वह बोली—

''मैं मायरा, अलौकिक की शरीकेहयात, उसकी वाइफ... आप शताक्षी मैडम हैं न, आइए न, प्लीज, ये अलौकिक तो आपकी दिन रात तारीफ करते नहीं अघाते। यू आर सो स्पेशल फॉर अस... प्लीज कम इन। एक एक चाय हो जाए ?''

अकबकाई नजरों से उसने मायरा की तरफ देखा। चेहरे पर बदहवास रेखाएँ बनने लगीं। काश कि उसे छिपने के लिए कोई छोटा सा कोना मिल जाता । एक अजीब तरह का सन्नाटा माहौल में पसर गया। पल भर के लिए हतवाक्य रह गई वह। हाव भाव में उतर आए आवाज के रूखेपन को सायास सरस बनाने की कोशिश करते हुए बोली, ''अभी थोड़ी जल्दी में हूँ, फिर कभी...'' उचटती आवाज में विरक्ति का अहसास साफ समझ में आ रहा था।

थोड़ी देर बाद मायरा ने पहल करते हुए कहा, ''दरअसल मैं खुद आपसे मिलकर थैंक्स कहना चाह रही थी। कल अलौकिक ने जब यहाँ आने का प्रोग्राम बताया कि आप भी यहाँ आ रही हैं तो मैंने ही चलने की ज़िद की। आप बहुत अच्छी हैं, थैंक्स अगेन। हमारे लिए आपने कितना सारा फेवर किया, शुक्रिया तहेदिल से।'' कहते हुए मायरा ने हाथ जोड़ दिए।

''ओके, वैल, अलौकिक से कहना कि सुबह ठीक 7 बजे योगा क्लास है, बस यही इन्फार्म करने आई थी। चलते हैं।'' जवाब का इन्तजार किए वगैर वह ठक ठक करते हुए अपने रास्ते वापस मुड़ गई।

हवाएँ अभी भी सनसना रही थीं। पेड़ों पर बैठी चिड़ियाएँ पूरी ताकत से चिचिया रही थीं। लाल बजरी पर आवाज करते उसके तेज तेज कदमों की धमक को दोनों सुन रहे थे, सोच रहे थे लगातार। मायरा ने मौन भंग करते हुए अलौकिक के कन्धे पर सिर टिकाते हुए कहा— ''कमाल है, आज तो आसमान के चाँद को सचमुच धरती पर उतार लाए तुम। इट्स अमेजिंग, मिरेकल हैपेंस...

''हूँ, इसे कहते हैं सतह पर उतर आया है चाँद...'' कहते हुए उसने मायरा को कसकर अपने सीने से चिपटा लिया। उच्चरित शब्द पूरी ताकत से सतह से आसमाँ तक अपने ध्वन्यार्थ को जीवन्त करने लगे ।

अमानुष

अपूर्व जोशी

जन्म : 24 नवंबर 1960 मेन उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा जनपद के रानीखेत में। साप्ताहिक 'द संडे पोस्ट' के हिन्दी और अँग्रेजी संस्करण का संपादन। हंस, वागर्थ, पुनर्नवा, निकट व पाखी आदि पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित। 'विकल्पहीनता का दंश' और 'यहाँ पानी ठहर गया है' प्रकाशित पुस्तकें। दैनिक 'जनसत्ता' तथा 'नवभारत टाइम्स' में लेखों का प्रकाशन। इंदिरा गांधी नेशनल सेंटर फॉर आर्ट एंड कल्चर से सम्बद्ध।
सम्प्रति : साहित्यिक पत्रिका 'पाखी' का संपादन।

प्रकाश मामा नहीं रहे। मौसी के फोन से अभी-अभी यह सूचना मिली। मेरे लिए यह सूचना भर ही तो है। ऐसी सूचना जिसे सुन न तो मैं अवाक् हुआ, न ही भावुक। बस दो क्षण को मामा का चेहरा मानस पटल पर उभरा जरूर। निचली मंजिल पर माँ के कमरे का दरवाजा खोलने से पहले एक क्षण को ठिठका यह सोचने के लिए कि माँ को यह सूचना धीरे से सरकानी ठीक रहेगी। माँ मामा के बेहद करीब थी। उन्हें आघात न पहुँचे इसलिए पहले से भूमिका बनाना जरूरी था।

प्रकाश मामा यूँ तो माँ की मौसी के लड़के थे, लेकिन माँ सगे भाइयों से कहीं ज्यादा उनके करीब थी। मामा ने एक सरकारी बैंक में मैनेजरी करते अपनी सारी नौकरी लखनऊ में काटने का रिकार्ड बनाया था। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है अपने लखनऊ प्रेम के चलते उन्होंने प्रोमोशन तक छोड़ दिए थे। नजरबाग में उनका विशाल पैतृक आवास था। किले जैसा मजबूत, हालाँकि आर्किटेक्चर के हिसाब से बेहूदा। हम लोग तब रानीखेत में रहा करते थे। पापा भारतीय रक्षा लेखा विभाग में ऑडिटर थे। इस विभाग का काम हमारी तीनों सेनाओं को आवंटित बजट का ऑडिट करना है। गर्मियों की छुट्टियों में हमारा घर मैदानों में रहने वाले मेहमानों से गुलजार रहता तो जाड़ों के दिनों में हम मैदान की हवा खाने इन रिश्तेदारों के यहाँ चले जाते थे।

यूँ तो हमारी एक बुआ इलाहाबाद में, तो एक ताऊ इज्जतनगर, बरेली में रहते, बड़े ताऊजी, छोटी दो बुआएँ और प्रकाश मामा लखनऊ में, हम लेकिन हमेशा जाड़ों की छुट्टियों में लखनऊ बड़े ताऊजी के यहाँ ही जाते थे। इसके दो कारण थे। बड़े ताऊजी अपने भाई-बहिनों के लिए पिता समान थे। सभी वक्त-जरूरत उनकी ही शरण में जाते। उत्तर प्रदेश सरकार की स्वास्थ्य सेवाओं में उच्च पदस्थ ताऊ जी के यहाँ जाने का एक बड़ा लाभ डॉक्टरी सुविधाओं का था। पापा हार्ट पेशेंट थे। उनका इलाज ताऊ जी के सहारे ही चलता था। बाद में पापा की मृत्यु बाद भी यही सिलसिला जारी रहा। मेरी बारहवीं पूरी होने के साथ ही माँ ने, जो पापा की मृत्यु के बाद उनके स्थान पर सरकारी नौकरी पा चुकी थीं, अपना ट्रांसफर लखनऊ करा लिया। माँ की सोच दूरगामी थी। मेरा विवेक अल्प था। मैं किसी भी सूरत में रानीखेत नहीं छोड़ना चाहता था। रानीखेत के डिग्री कॉलेज से ही अपनी उच्च शिक्षा करने की मेरी ज़िद लेकिन कामयाब हुई नहीं थी। माँ ने पहले से ही तय कर लिया था कि मेरी आगे की पढ़ाई और भविष्य के लिए रानीखेत छोड़ना जरूरी है। निश्चित ही माँ ठीक, मैं गलत था। यह कहानी शायद आप तक कभी पहुँचती ही नहीं, यदि मैं रानीखेत में ही रह जाता। जो पाया सो बाहर निकलकर ही, जो खोया वह भी बाहर निकलने के चलते।

बहरहाल, हम यानी मैं, मेरे दो बड़े भाई और माँ, जाड़ों की छुट्टियों में लखनऊ बड़े ताऊजी के घर जाते। जैसा मैंने बताया ताऊजी स्वास्थ्य विभाग में थे। उनका घर राजभवन कॉलोनी में था। लखनऊ के बाशिन्दे मेरी बात से इत्तेफाक जरूर रखेंगे कि राजभवन कॉलोनी दिल्ली की लुटियन जोन से कमतर नहीं। आज का मुझे पता नहीं, तब सभी आला हकीम वहीं रहा करते थे। राजभवन कॉलोनी के 23 नम्बर फ्लैट का पूरा नक्शा आज भी मेरे मानस पटल में जीवित है। हालाँकि मैं खुद को और मेरे जानने वाले मुझे अव्वल दर्जे का भुलक्कड़ मानते हैं। लेकिन बचपन की कुछ यादें अभी तक बनी रह मेरे साथ प्रेत की तरह चिपकी रहती हैं। शुक्र केवल इस बात का कि ये यादें दुख की नहीं, एक शानदार बचपन की हैं, जो हमें हमारी माँ के चलते नसीब हुआ। 23 राजभवन की यादें भी 80 प्रतिशत सुनहरी हैं। जो थोड़ी बहुत कष्टदायक हैं, उन्हें भी मैं सहेजकर रखता हूँ। उनका धन्यवाद करता हूँ क्योंकि उनके चलते मुझे खुद को बेहतर इंसान बनाने में मदद मिली। प्रकाश मामा का घर राजभवन से लगभग 2 किलोमीटर पुराने लखनऊ नजरबाग में था। हमारी ताई गजब की महिला थीं। इतनी रौबदार कि उत्तर प्रदेश हेल्थ

सर्विसेज के बॉस यानी मेरे ताऊ उनके आगे भीगी बिल्ली बने रहते। दोनों पति-पत्नी में शायद अंडरस्टैंडिंग थी कि फैमिली मैटर्स ताई के, निर्णय भी ताई के। हालाँकि कई बार मैंने उन्हें ताऊ को डॉक्टरी सलाह भी देते सुना। बेचारे ताऊजी, ख्यातिप्राप्त सर्जन, ताई की मेडिकल सलाह को भी सिर-माथे रखते। इसके पीछे ताई का अद्‌भुत मैनेजमेंट कौशल था। हमारे विशाल कुनबे का हर संकट अन्ततः ताऊ के दरवाजे आकर ही ठिठकता। किसी की बीमारी हो, आर्थिक समस्या हो या फिर परिवारिक रार। सबका ठेका घर के बड़े बेटे का होता। दादाजी यानी रायसाहब पद्मादत्त जोशी से यह संस्कार ताऊ ने लिए तो दादी बसन्ती देवी से कड़ा अनुशासन और बड़े कुनबे को सँभालने का कौशल ताई ने।

ताई का कड़ा अनुशासन हम भाइयों को फूटी आँख न सुहाता था। समय पर नाश्ता, समय पर लंच, डिनर। खेलना-कूदना भी समय पर। पूरी डिक्टेटरशिप ताई की रहती। ऐसे में अपनी बुआओं या मामा के घर जाना मतलब फुलमफुल आजादी। मामी हमारी बेहद प्यार करने वाली, जो कहा उसे तत्काल पूरा करने वाली महिला थी। प्रकाश मामा थोड़ा रिजर्व नेचर के। ज्यादा बोलना उन्हें पसन्द नहीं था। उनकी आवाज शाम 6 बजे के बाद ही मुखर होती। हालाँकि मामा की परवरिश, उनका जन्म आदि मैदानी इलाकों का था लेकिन 'सूर्य अस्त पहाड़ मस्त' को उन्होंने नजरबाग में जीवित रखा था। उनके दो पैग लगाते ही मामी सहम जाती। बच्चे अपने कमरे में दुबक जाते। माँ चूँकि मामा की लाडली थी इसलिए उन्हें शायद फ़र्क़ नहीं पड़ता हो, बाकि सब शाम के वक्त मामा के सामने आने से घबराते थे। मैं अपवाद था। मुझे शराब के नशे में धुत मामा ज्यादा भाते। उनका मामी पर बरसना लेकिन मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता था। बाद के बरसों में जब माँ ने अपना ट्रांसफर मेरी बारहवीं के बाद रानीखेत से लखनऊ करवा लिया था मैं मामा संग भिड़ने लगा। मामी बेचारी हम दोनों के बीच पिस जाती। तब लखनऊ कैंट में सरकारी घर माँ को एलॉट हो गया था। महीने में एक बार जरूर ही या तो हम नजरबाग जाते या मामा लोग विवेक विहार आते। दिन में तो सब ठीक रहता, शाम को यदि मैं और मामा आमने-सामने पड़ते तो निश्चित ही युद्ध सी नौबत आ जाती। हालाँकि मामा मुझे बहुत अच्छा मानते लेकिन नशे में घुत होते ही उनका रूप बदल जाता था। मेरी यादें लेकिन उनके साथ बिताए समय की, बेहद सुन्दर है। मामा का घर माने हमारी आजादी का घर। बुआओं के घर में भी हमारा साम्राज्य रहता था। ताई के यहाँ यानी हमारी शरणस्थली में हमारी स्थिति जेल में बन्द कैदी समान होती। ताई हम बच्चों को बहुत प्यार से रखती थीं, प्यार करती भी सच्चे दिल से थीं। लेकिन रजवाड़े परिवार का खून होने के चलते अपना रूआब रखने की रवायत वे बखूबी निभाती थीं।

आज मामा के नहीं रहने का समाचार, उनके एक एक्सिडेंट में मरने का समाचार सुन मैं न तो दुखी हूँ, न ही किसी प्रकार का कोई इमोशन मुझे महसूस हो रहा है। मेरी चिन्ता केवल माँ को सँभालने को लेकर है। भाई की मौत का समाचार उनके लिए बड़ा आघात होगा। कैसे रिएक्ट करेंगी आदि मेरी चिन्ता का कारण हैं।

खैर माँ के कमरे का दरवाजा खोलने जा रहा था कि बड़े भाई ने पीछे से पुकारा। 'प्रकाश मामा की खबर मिल गई?'

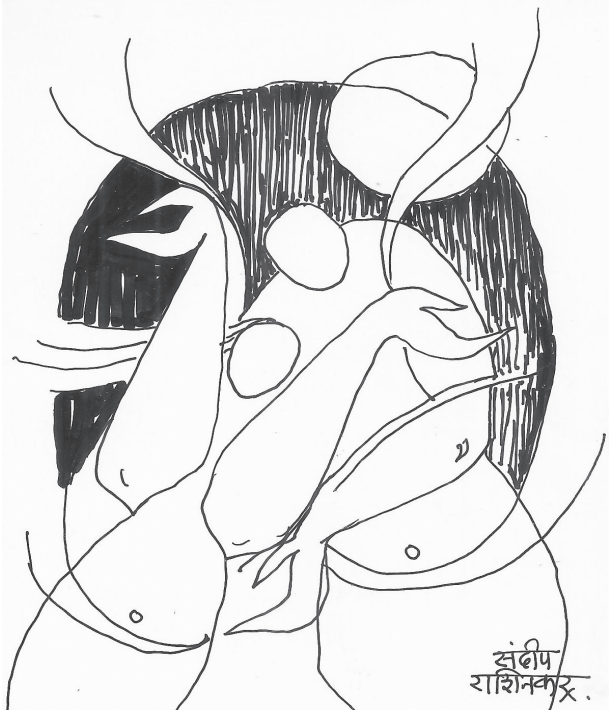

''हाँ वेरी सैड यार। माँ को कैसे बताऊँ!''

''मैं बताता हूँ। तू साला सीधे सपाट समाचार की तरह बकेगा। लैट मी टैल हर।''

मुझे बड़ी राहत महसूस हुई। तुरन्त वापस तिमंजिले अपने कमरे लपक लिया। आराम कुर्सी पर झूलते हुए खुद को टटोलने लगा हूँ।

'मैं तो बड़ा इमोशनल हुआ करता था। हरेक का लाडला। आज भी सबके काम आने का प्रयास करता हूँ। हमेशा हर किसी की अपना हो या पराया, मदद के लिए तैयार रहता हूँ। फिर कैसे मामा की मौत ने कहीं हल्का सा भी मेरे को डिस्टर्ब नहीं किया? क्या मैं इन्सेन्सेटिव हो गया हूँ? क्यों लेकिन? कैसे?

'आर यू ऑल रॉइट'। गीतिका की आवाज सुनाई देती है। शायद उसे भी खबर लग गई है। मामा के घर में वह पेइंग गेस्ट थी। लखनऊ में मेडिकल की कोचिंग के दौरान। उन्हीं दिनों हमारा इश्क परवान चढ़ा था। गीतिका को ज्यादातर कठोर, मेरे से कम इमोशनल मानते हैं। हकीकत यह कि वह व्यावहारिक मुझसे ज्यादा है, इमोशनल भी मुझ से कहीं अधिक। खासकर परिवार के मामलों में। उसकी सुर्ख आँखें बता रही हैं कि मामा के न रहने का उसे पता चल चुका है। मैं उसकी आँखों को देख खुद से सहम सा गया हूँ। शर्म आ रही है। सहम गया हूँ अपने अमानुष होते जाने को देख। समझ नहीं पा रहा हूँ खुद में आए इस बदलाव को। सबकी मदद करने को आतुर रहने वाला मैं क्या वाकई में एक संवेदनशील इंसान हूँ या फिर दूसरों की मदद कर खुद को खुदा समझने का नशा मुझ पर सवार है जो भले ही बाहरी तौर पर मेरी छवि को चमकाए हुए हैं। कहीं भीतर से मैं सही में अमानुष होते जा रहा हूँ।

क्यों? भला क्यों?

प्रेम का शोकगीत

शैलेन्द्र सागर

जन्म 5 अप्रैल 1951 को रामपुर उप्र में।

विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में लगभग सौ कहानियां, लघुकथाएं, व्यंग्य प्रकाशित। 'चतुरंग', 'चलो दोस्त सब ठीक है', 'एक सुबह यह भी' तथा 'ये इश्क नहीं आसां..' (उपन्यास), सात कहानी संग्रह और एक स्मृति आख्यान 'फिर मुझे रहगुजर याद आया' प्रकाशित। स्त्री विमर्श पर दो पुस्तकों एवं उत्तर समय की प्रेम कहानियां का संपादन। 'विजय वर्मा सम्मान', 'प्रेमचंद सम्मान' एवं 'अमृतलाल नागर सम्मान' से सम्मानित। कथाक्रम पत्रिका के लिए उ.प्र. हिंदी संस्थान का 'सरस्वती सम्मान', 'साहित्य भूषण सम्मान' से समादृत।

मो.: 09415138626

पूरे तीन दिन और दो रात बाहर रहकर अवनि लौटा है। तकरीबन तीस साल के संग साथ में यह उसकी सबसे लम्बी अनुपस्थिति है। अमूमन शुभी को अकेला छोड़कर वह मजबूरी में ही जाता है, अक्सर बेमन से और जितना जल्दी मुमकिन होता वह घर में नमूदार होता— उदास और खिन्न। उसे शुभी के अकेलेपन और जरूरत का अहसास है। वैसे भी अब उसके रिश्ते बेहद सीमित हैं। काफी नाते रिश्तेदार, दोस्त उससे कट गए हैं या उससे दूरी बनाकर रखते हैं। हर जगह जाने में उसे भी बहुत संकोच होता है। इतना अरसा गुजरने के बावजूद हर किसी की निगाह जैसे उससे सवाल करती नजर आती है। कभी उपेक्षा तो कभी उपहास, कभी तिरस्कार तो कभी तंज के भाव उसे कचोटते रहते हैं।

पर इस बार वह बेहद खुश दिख रहा है। उसके चेहरे पर उल्लास और उपलब्धि की अचूक आभा है। उसकी आँखें सस्वर, वाचाल और तारामंडल के किसी पिंड की भाँति दिपदिप कर रही हैं। बार-बार ऐसा लगता जैसे वह कुछ कहने या बतियाने के लिए बेताब है। पर एक तो झिझक और फिर सुधर गए घाव के पुन: उघड़ने और रिसने का भय उसे हमेशा आशंकित और त्रस्त करता है।

शुभी उसकी मन:स्थिति को बखूबी समझती है। पर न तो वह कुछ सुनना पसन्द करती है और उसके पूछने का तो सवाल ही नहीं। हाँ, मन ही मन उसने तय कर रखा था कि अवनि के मुख्तसर सा कुछ बतलाने पर वह कोई नकारात्मक प्रतिक्रिया नहीं देगी। अब इस उम्र में पुरानी बातों से घर पर तनाव का चन्दोला तानना किसके हित में है। घर में मात्र दो प्राणी और जब उनके बीच ही कसक और अबोला का निष्प्रभ, अपारदर्शी जाल बुन जाए तो जीवन में कुछ भी शेष नहीं रह जाता। जीवन निकृष्ट और निरर्थक लगने लगता है। तब एक निर्वात घर के ऊपर, अन्दर बाहर ठहर जाता है— नकारात्मक, अवसादपूर्ण और दयनीय....।

क्या अटूट प्यार, समर्पण और त्याग की नियति ऐसे त्रासद समय के लिए है? ये सब क्यूँ नहीं सोचा था तब? पर उन्माद की उस मन:स्थिति में भविष्य कब और कहाँ नजर आता है। प्यार के तरणताल की अतल गहराइयों में डूबे शख्स को पानी और सिर्फ पानी ही तो दिखता है।

''तीन दिन में एक बार भी फोन करने की जरूरत नहीं समझी?'' खाने के बाद बिस्तर पर लेटे शुभी ने हौले से कहा।

''हाँ यार, सॉरी। वहाँ बहुत काम था, बिजी रहा।''

''क्यों, अंशु कहाँ था?''

''अंशु तो था पर बहुत परेशान और घबराया हुआ था। डॉक्टर ने कुछ कम्प्लीकेशन भी बतलाया था, काफी टेंशन हो गया था। किसी बड़े का होना जरूरी था।''

''बच्चा तो वह भी नहीं है।''

''पिता के लिए तो बच्चा बच्चा ही रहता है।''

अवनि धीरे से मुस्करा दिया है।

शुभी का चेहरा निर्विकार और संवेदनशून्य है। इस जड़ता के पीछे उसके रोष और खीझ को अवनि अच्छी तरह समझता है। ज्यादा कुछ न कहकर भी बहुत कुछ संप्रेषित हो जाता है।

''मेरे अलावा और कोई नहीं था वहाँ।'' अवनि ने सफाई देना जरूरी समझा।

''और यहाँ... ?''

अवनि के चेहरे पर झेंपभरी मुस्कान है। ऐसे मौकों पर उसका चेहरा ऐसा ही दिखलाई देता है— विवर्ण, विरूप और विवश...! वह जानता है कि कोई भी जवाब सुलझाने के बजाय बात को ज्यादा पेचीदा बना सकता है। उलझन की गाँठें तब आसानी से नहीं खुलतीं। ऐसे में खामोशी सबसे अच्छा विकल्प है। शायद शुभी भी उस चुप्पी का सम्मान करती है। दोनों के बीच आकर ठहरी दूरी जैसे थर्ड एम्पायर की तरह तनाव को तिरोहित करने की भूमिका में आ जाती है।

यही दूरी उन्हें राहत भी देती है।

वक्त के साथ परिस्थितियों की नकारात्मकता का लोप हो जाता है।

कभी घंटे, कभी पहर तो कभी एकाध दिन..., माहौल और उससे भी ज्यादा रिश्ता सामान्य हो ही जाता है।

●●

घर के शादी ब्याह और इन अवसरों पर वातावरण में घुला रोमांस...। चंचल, चपल किशोरावस्था, फुदकता अन्तरंग, भटकती आँखें, फड़कते होंठ... मानो हर किसी को एक साथी की तलाश...। द्वारचार से जयमाल व अन्य मांगलिक रस्मों से लेकर विदाई के कारुणिक दृश्य तक एक दूसरे से नजरें अटकी रहती हैं मानो कम्प्यूटर हैंग कर गया है— मॉनीटर पर थमा हुआ,.. जड़, निस्पन्द व गतिहीन...।

देखा देखी तो पहले भी दो अवसरों पर हो चुकी थी— गोदभराई और सगाई, पर कुछेक घंटों का साथ और फिर बड़ों की मौजूदगी जिसमें निजता का गुंजाइश कहाँ...। पर नजरें टकराई तो थी हीं। गेहुँआ चेहरे पर बड़ी-बड़ी सस्वर आँखें, रस चूने को आतुर भरे-भरे होंठ, आकर्षक सुगठित देहयष्टि और सुरीली आवाज जैसे कानों में मौसिकी की कोई तान छेड़ रही हो...।

पर मेल मुलाकात और संवाद कहाँ और कैसे मुमकिन था। सत्तर के दशक का वो दौर कितना अलग था। रूढ़िवादी, तमाम संकोच और वर्जनाएँ, न वो साहस, न मोबाइल, न सोशल मीडिया, न मेल या कुरियर...और दूसरे शहर और कॉमन फ्रेंड के अभाव में न खतों के आदान प्रदान का कोई जरिया...। मेल मुलाकात का वही पारम्परिक ढब, कालिज के बाहर या किसी निर्जन या कम भीड़भाड़ वाली जगह पर इन्तजार, कभी सिर्फ नजरों से संवाद तो कभी बातचीत की कोशिश। अलबत्ता अच्छा यह था कि दोनों शहर बमुश्किल तीस किलोमीटर की दूरी पर थे। एलएलबी, बीएड और परास्नातक के कई विषय, जो अपने शहर में उपलब्ध नहीं थे, पढ़ने के लिए काफी छात्र रोज वहाँ जाते थे। महत्त्वपूर्ण पुस्तकें भी वहीं से खरीदनी होती थीं। इन्हीं बहानों से उम्मीद थी उसे...। पर इन्तजार मन को खदबदाए हुए था, व्याकुल और अस्थिर, इसलिए....

''आप यहाँ... ?'' अवनि को कॉलेज के बाहर खड़ा देखकर शुभी चहक उठी।

''हाँ, किसी काम से आया था।'' झेंपते हुए कहा उसने।

''यहाँ, किस काम से... ?'' शुभी ने जैसे उसकी चोरी पकड़ ली हो। उसके चेहरे पर तंज की झीनी पर्त बिछ गई थी।

''कुछ बुक्स लेनी थीं।''

''यहाँ भी बुक्स की कोई दुकान है क्या... ? सब लोग तो सदर जाते हैं।'' शुभी उसकी खिंचाई करने के मूड में आ गई। इस बार वह धीरे से खिलखिला दी। अवनि की झुकी नजरें उसे पुलकित कर रही थीं। पर तुरन्त बात सम्हाली उसने—चलिए, घर चलिए।

''अरे नहीं...।'' जैसे किसी ने चिकोटी काट ली हो।

''क्यूँ... ?'' उसने बड़ी-बड़ी, नटखट आँखें फैलाकर कहा।

''कभी और..।''

''पर दीदी नाराज होंगी...।'' शुभी मोर्चे पर डटी थी।

''प्लीज उन्हें मत बताना।'' बॉय... कहकर अवनि तेज कदमों से चल दिया।

''क्यूँ...., अरे रुकिए तो...।'' शुभी ने हँसकर पुकारा।

''फिर कभी...''

अवनि को लगा कि वह इससे ज्यादा उसके व्यंग्य वाणों को नहीं झेल सकता। वह लौट तो जरूर आया पर कई दिन तक उसे इसका मलाल रहा। मन में कोफ़्त रही कि ऐसी जल्दबाजी की क्या जरूरत थी। क्या प्यार में इतने ताने सुनने का भी जज़्बा नहीं था उसमें ? शुभी ने तो अपने सब दोस्तों को छोड़ दिया था।

बहरहाल यह भी एक बड़ी उपलब्धि थी। कई दिनों तक वह मुख्तसर की मुलाकात और शुभी का मुस्कराता चेहरा उसके दिल दिमाग को उत्तेजित और तरंगित किए रहा। बार-बार उससे मिलने का मन करता। पर कहाँ और कैसे... ? कॉलेज के बाहर दोबारा इन्तजार...! शुभी के चेहरे पर वो तिरछी मुस्कान...! एक छोटे शहर की मध्यवर्गीय मानसिकता से कहाँ उबर पा रहा था वह।

गर्मियों की छुट्टियों में भइया का आना हुआ तो उनके साथ वह भी भाभी से मिलने गया था। पर वही बंदिशें, झिझक और बात न कर पाने की छटपटाहट...। अलबत्ता अब वो दो जोड़ी नजरें कुछ छिपा नहीं पा रही थीं। उन आँखों में एक दूसरे का अक्स मानो छप गया था। खामोश नजरें एक बेचारगी और बेचैनी का अहसास करा रही थीं।

कहा जाता है कि विवाह स्वर्ग में रचाए जाते हैं पर शायद सच्चे प्रेम की तामीर भी वहीं होती है वरना एकाएक पिताजी का एमए के बजाय एलएलबी में दाखिले के लिए कहना—

परिवार में अवनि के विवाह की चर्चा होने लगी थी हालाँकि वह इसके लिए कतई इच्छुक नहीं था। इसकी एक वजह शुभी भी थी। बार-बार शुभी उससे अपने और उसके घर वालों से बात करने का आग्रह करती थी। कभी रुआँसी हो जाती तो कभी कलपने लगती। पर एक तो अवनि अपनी शादी को लेकर संजीदा नहीं था और दूसरे उसके मन में कहीं यह कशमकश भी थी कि क्या वह वास्तव में शुभी से प्यार करता था या यह महज एक गहरी दोस्ती थी अथवा कुछ भावनात्मक जुड़ाव के साथ दैहिक सम्बन्ध था जिसका सुख उन्हें जोड़े हुआ था।

यानी शुभी का शहर, यानी शुभी का ही कॉलेज यानी रोज की मुलाकात...यानी....यानी....

बहरहाल जरिया बन गया। भाभी ने गोल गोल आँखें घुमाते हुए कहा था—''भइयाजी, आपको तो मन माँगी मुराद मिल गई।''

''क्यूँ... ?''

''अच्छा, इतने नादान मत बनो और न अपनी भाभी को इतना कमअक्ल समझो।''

●●

कुछ अहसास निजी अनुभव से ही आपके अन्दर अपनी अहमियत की अलख जलाते हैं।

बाबा बनने की अनुभूति ने उसके अन्तरंग को पूरी तरह आह्लादित और झंकृत किया है मानो कोई बड़ी उपलब्धि हासिल हुई हो। ज्यादातर परिवार अब एक या दो बच्चों तक सीमित रहते हैं, इसलिए यह अहसास बेहद अहम बन जाता है। पर इस सुख और उत्तेजना को वह साझा करे भी तो किससे। शुभी के अलावा उसकी ज़िन्दगी में और कौन इतना करीब है जिससे निजी भावनाएँ शेयर कर सके। और शुभी का नजरिया एकदम साफ और बेबाक था—विनीता और अंशु की बातें अपने तक रखा करो। मुझे मालूम है तुम्हारे लिए वे बहुत खास हैं, होना भी चाहिए। पर उनके बारे में न मैं कुछ सुनना चाहती हूँ और न कुछ कहना। कोई गलत बात मुँह से निकल जाएगी तो तुम्हें बुरा लगेगा।

बहू जब लेबर रूम में ले जाई गई तो अंशु के साथ उसकी धड़कनें भी तेज हो गई थीं। गर्भ की पीड़ा के साथ जब डॉक्टर ने लो बीपी और धीमी हृदयगति की जानकारी दी तो एक गहरी बेचैनी और घबराहट ने उसे जकड़ लिया था। माथे पर पसीना चुहचुहा आया। उसे हैरानी हुई कि अंशु के जन्म पर उसे ऐसी अनुभूति क्यों नहीं हुई थी। विनीता को अस्पताल में भर्ती कराने पर जब डॉक्टर ने एकाध दिन का वक्त और बताया तो वह शुभी से मिलने चला आया था। शाम को एकाएक विनीता को भीषण दर्द होने पर डॉक्टर ने सीजेरियन करने का फैसला कर लिया। सहमति के लिए अवनि की तलाश हुई पर वो तो गैरहाजिर था। उस मोबाइलविहीन युग में सम्पर्क का कोई जरिया भी नहीं था। विलम्ब होने पर वहाँ मौजूद अम्मा से दस्तखत करा लिए गए। नतीजतन जब उनका पहला और आखिरी बच्चा हुआ तो पति पत्नी साथ नहीं थे। जन्म के लगभग सात घंटे बाद अवनि ने अपने बेटे का चेहरा देखा। हमेशा के लिए अवनि और विनीता के रिश्ते को यह गाँठ सालती रही। न अवनि इस गिरह से अपने रिश्ते को मुक्त कर पाया और न विनीता ने इसके लिए उसे कभी क्षमा किया।

अवनि और शुभी एक दूसरे में पूरी तरह डूब चुके थे। दोनों परिवार की आपत्तियों के बावजूद उनके बीच बेपरवाह होने की हद तक नजदीकियाँ आ गई थीं। सबसे ज्यादा त्रस्त भाभी थीं। दोनों ओर से उन्हें ही आरोपित किया जाता। जब उन्हें इस रिश्ते की जानकारी थी तो अवनि के विवाह से पहले घरवालों को ये बात क्यूँ नहीं बतलाई।

न भइया ने मुझसे कभी कहा और न शुभी ने। मुझे लगता था कि यह सिर्फ दोस्ती है जैसी कॉलेज वगैरा में होती है।

पर हमें बतलाना तो था। अम्मा ने नाराजगी जाहिर की— हालाँकि पिताजी कभी इसके लिए राजी नहीं होते। एक घर में दो बहनों की शादी के ख़िलाफ़ हैं वह। पर रोज-रोज के क्लेश से तो छुटकारा मिलता। विनीता अलग रोती रहती है, उस पर बच्चा....।

परिवार में अवनि के विवाह की चर्चा होने लगी थी हालाँकि वह इसके लिए कतई इच्छुक नहीं था। इसकी एक वजह शुभी भी थी। बार-बार शुभी उससे अपने और उसके घर वालों से बात करने का आग्रह करती थी। कभी रुआँसी हो जाती तो कभी कलपने लगती। पर एक तो अवनि अपनी शादी को लेकर संजीदा नहीं था और दूसरे उसके मन में कहीं यह कशमकश भी थी कि क्या वह वास्तव में शुभी से प्यार करता था या यह महज एक गहरी दोस्ती थी अथवा कुछ भावनात्मक जुड़ाव के साथ दैहिक सम्बन्ध था जिसका सुख उन्हें जोड़े हुआ था।

अपने लिए लड़की की खोज उसके लिए एक मनोरंजन का जरिया था। रिश्ते और लड़कियों के फोटो देखकर उसे एक गुदगुदी का अहसास होता। कभी शुभी को भी बतलाता— यार, पाँच लाख का ऑफर है, बस लड़की थोड़ी मोटी है।...यार बड़ी सोणी कुड़ी है पर अम्मा को फैमिली पसन्द नहीं।

शुभी को यह सब सुनना कतई पसन्द नहीं था पर वह खामोश रहती। अचानक एक दिन अम्मा पिताजी ने विनीता को पसन्द कर लिया और उसकी शादी पक्की कर दी। शुभी को यह जानकारी अपने परिवार से मिली।

''अवनि, तुमने बतलाया नहीं कि तुम्हारा रिश्ता तय हो गया है।'' शुभी ने लरजते स्वर में पूछा।

''हाँ यार, क्या करूँ। मुझसे पूछकर थोड़े हुआ है। अम्मा पिताजी ने तय कर दिया। अब उनके सामने किसकी चलती है।''

''इतना लाइटली मत ला इसे, अवनि। ये हमारी ज़िन्दगी का सवाल है। कब से कह रही हूँ कि घर में बात कर लो, रेखा दीदी से कह दो।''

''भाभी को क्या नहीं पता।''

''पर वो अपने आप तो नहीं कहेंगी और वो भी अपनी बहन के बारे में। पहल तो तुम्हें ही करनी है।''

''शुभी, मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। बात पिताजी तक जाती और उन्हें फेस करना मेरे लिए नामुमकिन है।''

शुभी ने बड़ी बेचारगी भरी नजरों से उसे देखा। छलक आई आँखें झुक गईं। लगा किसी भी पल वे बहने लगेंगी। उसका चेहरा बेहद करुण और दयनीय हो चला। गले में जैसे काँटे उग आए थे जिसमें सारे शब्द फँस गए थे।

''शुभी, मेरी प्रॉब्लम समझो। हम लोगों के परिवार कितने कन्जरवेटिव हैं, तुम अच्छी तरह जानती हो।''

''फिर हमारा भविष्य क्या है? क्या सिर्फ मौज मस्ती के लिए हम साथ हैं और शादी के बाद अपनी अपनी राह....। क्या सिर्फ इसलिए मुझसे रिश्ता बनाया था जबकि वादे तो बहुत बड़े-बड़े किए थे। तुम ही मुझे यहाँ तक लाए हो। क्या क्या नहीं कहा तुमने जिनसे मुझे भरोसा हुआ और किसी की परवाह किए बिना तुम्हारे साथ चल दी। और अब...।'' शुभी का स्वर कर्कश और तिक्त था। डबडबाई आँखों से रोष और अपमान की चिंगारियाँ निकल रही थीं। वह सुबक रही थी।

अवनि नि:शब्द और निरुत्तर...।

पहली बार इस सम्बन्ध की जटिलता से वह रूबरू हुआ। वर्तमान में आकंठ डूबे इस रिश्ते के भविष्य के बारे में उसने कभी सोचा क्यों नहीं था। क्या किसी रिश्ते को हम अपना अधिकार मान लेते हैं, तब उसके भविष्य के बारे में सोचने की भला क्या जरूरत...?

उसके अन्दर एक बेचैनी घिर आई। ज़िन्दगी के इस कडुवे सच के साक्षात्कार ने उसने बड़ा कमजोर बना दिया था। शुभी के हाथों को थाम कर उसने पिघलती आवाज में कहा— ''शुभी, तुमसे प्यार करता हूँ और करता रहूँगा।''

''और शादी किसी और से...?'' शुभी के स्वर में अपरिचित कठोरता और अजनबियत थी।

''इस पर मेरा कोई बस नहीं है।'' अवनि की आवाज उतनी ही दयनीय, लचर और पस्त...

''क्या समझूँ मैं...?'' अपने क्रोध को रोक नहीं सकी वह।

''कुछ नहीं, तुम्हें मुझसे कोई शिकायत नहीं होगी।''

''पर चोरी छिपे ये रिश्ता कब तक चलेगा ?''

''जब तक तुम साथ दोगी।''

''अच्छा..., इसका मतलब इस रिश्ते को चलाने का सारा दारोमदार मेरे ऊपर है। तुम्हारी कोई भूमिका नहीं। मैं चाहूँ तो यह सम्बन्ध रहेगा वरना नहीं। हमारा समाज तो आदमी को ज्यादा सबल और सक्षम मानता है पर तुमने तो अपने हाथ पूरी तरह खींच लिए हैं। वाह अवनि...।'' वह कुछ पलों के लिए रुकी और धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में पूछा— ''और तुम्हारी ज़िन्दगी में मेरी क्या जगह होगी?''

अवनि अवाक्, निस्तब्ध....

''कल को मेरी भी शादी हो जाए तो...?''

अवनि को कोई जवाब नहीं सूझा। उसके चेहरे पर खीज और बेबसी की वैसी ही पर्त बिछ गई जैसी ऐसी स्थितियों में अक्सर उसके चेहरे पर छा जाती थी। शर्मिन्दगी, लाचारी, और अनिर्णय....!

''तुम्हें मेरी शादी से कोई एतराज या परेशानी नहीं है।''

अवनि निर्वाक और किंकर्तव्यविमूढ़....

''खामोशी तो स्वीकृति है न...।'' पहली बार मुझे छूने पर तुमने ही कहा था कि तुम्हारा जीवन अब मेरे नाम है। और उसी पल अपना सर्वस्व देने के साथ मैंने तुम्हें अपनी देह और दिमाग में उतार लिया था। तुमने पूछा था कि तुम राजी हो, खुश हो और मैं आँखें झुका कर धीरे-धीरे मुस्करा रही थी। तब तुमने ही कहा था शुभी, खामोशी स्वीकृति है न....।

शुभी की आँखों में लाल डोरे बुन गए थे। आक्रोश, अपमान, अवमानना और लहुलूहान अस्मिता की मद्धिम चिंगारियाँ उसमें प्रस्फुटित हो रही थीं। वह एक साथ उग्र और दयनीय नजर आ रही थी। कभी लगता कि वह बुक्का मार कर रो पड़ेगी, कभी एक अनजान विस्फोट की आशंका अवनि को उद्विग्न व त्रस्त कर जाती, कभी उसके हाथ पैर कँपकँपाते नजर आते और लगता कि किसी भी पल वह लड़खड़ाकर धराशायी हो जाएगी।

''शुभी...।'' अस्फुट से शब्द उसके होंठों से निकले और सीली माचिस की मानिन्द फुस्स हो गए। वह कुछ बोल ही नहीं पाया। अपने शिथिल और ठस्स हाथों से उसने शुभी की उंगलियों को छुआ— क्षीण, उत्तेजनाहीन तथा बेहद अजनबी....

...क्या यह वही स्पर्श था जो शुभी के आन्तरिक और बाह्य वजूद के रेशे-रेशे को उत्तेजना और उन्माद से सराबोर कर देता था, उन दोनों को उग्र बहाव में बहा ले जाता था।

''हाँ बोलो, चुप मत हो।'' शुभी ने सिसकियाँ थामकर काँपती आवाज में कहा—''यह हमारे रिश्ते और जीवन का निर्णायक मोड़ है। तुम्हारे बारे में नहीं जानती पर मेरे लिए तो है ही।''

एक बार फिर अवनि नि:शब्द, नि:सहाय और निर्णयहीन....

''अवनि, हो सकता है तुम्हारे लिए यह सम्भव हो

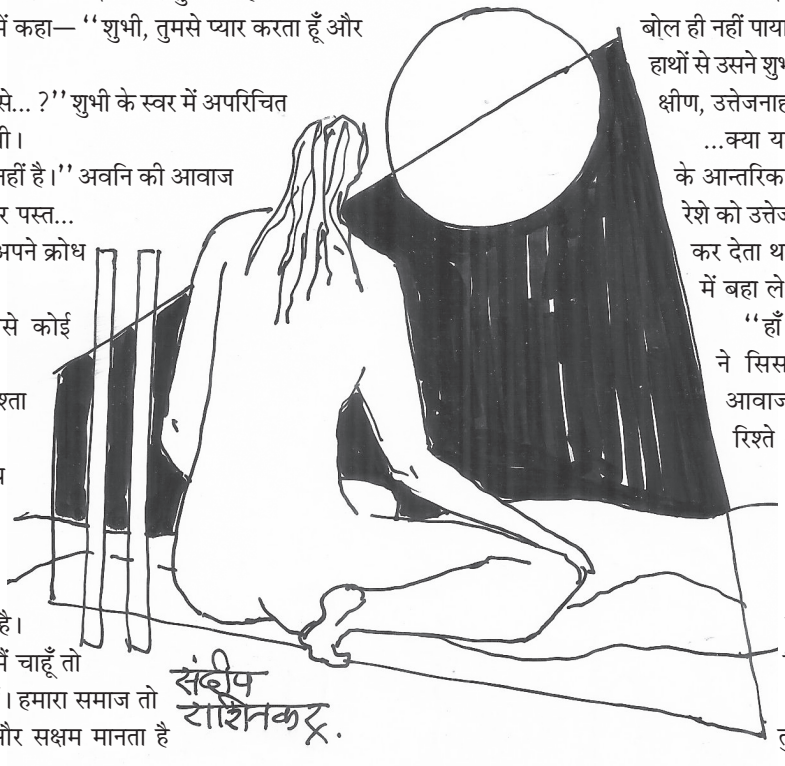

अलबत्ता आज वह इस अहसास से महरूम है। शुभी की आँखें छत पर जमी हैं। उसके चेहरे पर काठ जैसी जड़ता और ठस्सपन है, उंगलियाँ और हथेलियाँ निस्पन्द हैं। अवनि की किसी नापसन्द कारगुजारी पर अब वह यही मुद्रा अख्तियार लेती है या चाहे अनचाहे वह इस मोड में चली जाती है। और दूसरे मुद्दे तो उसे जल्द ही इस मन:स्थिति से अवमुक्त कर देते हैं पर विनीता, अंशु और अब अवनि के जीवन में आया एक नया प्राणी...।

कि पत्नी के होते दूसरी से भी प्यार कर सको। शायद पुरुषों में यह सामर्थ्य होता हो पर स्त्री में नहीं। और मुझमें तो कतई नहीं। तुम्हारे रहते मैंने जीवन में किसी दूसरे पुरुष की कल्पना ही नहीं की है और न कर सकती।''

उसकी आवाज फिर सिसकियों में बहने लगी। उसने अपना हाथ खींच लिया। ऐसा पहली बार हुआ था। अवनि से कुछ सुनने के लिए वह छटपटा रही थी।

और अवनि निर्लज्ज और निरुत्तर सा ठस्स खड़ा था— बेहद शिथिल और श्लथ...। ऐसी दुविधापूर्ण स्थितियों और प्रश्नों पर सिर्फ चुप्पी ही उसका साथ देती है। हालाँकि सपाट और संवेदनशून्य चेहरा उसके पसोपेश को बखूबी बयान करता है। शुभी के सामने उसने अपने आपको इतना कमजोर कभी महसूस नहीं किया था। शुभी के चेहरे पर नजरें टिकाने तक का साहस नहीं था उसमें।

''अवनि...'' शुभी ने जैसे उसे टोका।

''शुभी...'' अवनि ने अपनी पलकें ऐसे उठाईं जैसे उनमें मनों बोझ बँधा हो— ''शुभी, मैं तुमसे सच में बहुत प्यार करता हूँ। तुमसे दूर होने की कल्पना भी नहीं कर सकता।''

''पर शादी... ? एक सुरीली आवाज में इतनी तल्खी भी आ सकती है।

''शुभी, मुझे गलत मत समझो। क्या करूँ मैं.. ? पिताजी के बारे में तुम जानती हो। किसी की हिम्मत नहीं है कि उनके किसी फैसले को कोई चुनौती दे। मुझसे पूछकर कुछ हुआ है क्या ? बस उस लड़की को देखने की बात थी। अम्मा पिताजी ने कुछ बात की और अम्मा ने अपने गले की चेन उसे पहना दी, रिश्ता तय...। मेरी पसन्द, नापसन्दगी की बाबत किसी ने कुछ नहीं पूछा। क्या करता मैं ? कुछ कहकर कोई सीन क्रीऐट करता और अम्मा, पिताजी का अपमान...।''

अपनी कायरता पर अवनि क्षुब्ध दिखलाई दिया। एकाएक वह दया और सहानुभूति का पात्र बन गया।

''अवनि, अभी कोई रस्म नहीं हुई है। अभी भी वक्त है, तुम अम्मा और भाभी से बात कर लो। दीदी से मैं भी कह दूँगी।''

अवनि बेआवाज...।

''अम्मा ने चेन ही तो पहनाई है। इससे कुछ नहीं होता।''

एक बार फिर उसके होंठ सिले हुए थे।

''अवनि..., तुम्हारी इसी खामोशी ने आज यह स्थिति पैदा की है। चुप्पी तो स्थिति से पलायन है, कोई निदान या हल नहीं।'' शुभी सुबकने लगी।

अवनि ने उसे अपनी बाँहों में समेट लिया। उसकी आँखें भी तरल होकर चमकने लगी थीं। पहली बार उसे यह अहसास कुतरने लगा कि पिता और परिवार के सम्मान के नाम पर वह क्यूँ मेमने की मानिन्द जिबह होने को राजी हो गया। क्यूँ वह इतना कायर और कमजोर है कि अपने अरमानों के साथ उसके प्यार में आकंठ डूबी शुभी के जीवन से वह खिलवाड़ कर रहा है।

''अवनि, तुम्हारे बिना नहीं जी पाऊँगी। कुछ करो प्लीज...।'' वह बुरी तरह फूट पड़ी।

''शुभी प्लीज, सम्हालो अपने को। कोशिश करता हूँ...।'' आर्द्र स्वर में कहा उसने।

●●

अवनि ने करवट बदलकर शुभी की ओर मुँह मोड़ लिया और बड़ी नजाकत और नफासत से उसके हाथ पर अपना हाथ रखा है। वह जानता है कि लगभग तीस साल के सान्निध्य के बावजूद उसका स्पर्श वह सब संप्रेषित कर देता है जिसके लिए शब्द नाकाफी होते हैं या उसका साथ छोड़ देते हैं। और अक्सर यह एकतरफा संचार नहीं होता। स्पर्श के कुछ ही पलों के भीतर उसे अपनी पहल का सकारात्मक परिणाम भी मिल जाता है। उंगलियों में मूक व अदृश्य स्पन्दन, हथेली पर हल्की सी तरावट और कुछ ही लमहों में संचारित होती उत्तेजक सनसनी...।

अलबत्ता आज वह इस अहसास से महरूम है। शुभी की आँखें छत पर जमी हैं। उसके चेहरे पर काठ जैसी जड़ता और ठस्सपन है, उंगलियाँ और हथेलियाँ निस्पन्द हैं। अवनि की किसी नापसन्द कारगुजारी पर अब वह यही मुद्रा अख्तियार लेती है या चाहे अनचाहे वह इस मोड में चली जाती है। और दूसरे मुद्दे तो उसे जल्द ही इस मन:स्थिति से अवमुक्त कर देते हैं पर विनीता, अंशु और अब अवनि के जीवन में आया एक नया प्राणी...।

शुभी जानती है कि अपने पोते को लेकर अवनि कितना उत्साहित और आह्लादित है। जिस दिन अंशु ने उसके बाबा बनने जा रहे का सुखद समाचार दिया था, उसे अपूर्व उल्लास और उपलब्धि की थिरकती अनुभूति हुई थी। अन्तरंग की गुदगुदी उसे उत्तेजित किए जा रही थी। बिना बाँटे ऐसा सुख कहाँ परिपूर्ण होता है। पर इस खुशी को वह किससे शेयर करे। शुभी उसके हर सुख दुख में सहभागिता के लिए राजी थी पर विनीता, अंशु से सम्बन्धित कुछ भी जानना/सुनना उसे नामंजूर था। ऐसा कोई शख्स जिसके साथ अवनि को शेयर करने का कँटीला अहसास होता, उसे असह्य था। चाहकर भी वह अपनी कटुता छिपा नहीं पाती थी। वक्त के साथ इस कडुवाहट में इजाफा हुआ था जबकि अवनि को लगता था कि कुछेक सालों बाद शुभी जीवन के इस सच को स्वीकार कर लेगी।

वक्त साँप है। फन उठाता है पर रेंगता हुआ कैसे सर्र से निकल जाता है, पता ही नहीं चलता। आजकल में चिकनी और फिसलती हिम्मत को समेटने में कब रीति रिवाज का मुल्लमा चढ़ गया, पता ही

नहीं चला। सगाई, लगुन और शादी...। एक खिलखिलाती, अलहड़ और चुलबुली लड़की एकाएक परिपक्व, गम्भीर और गुमसुम लड़की में रूपान्तरित हो चली। सारे शब्द, अरमान, गिले शिकवे मानो अन्दर जम गए थे। प्यार और जज्बात की कोमल, स्निग्ध और मर्मस्पर्शी संवेदना एक बबंडर की मानिन्द उसके अन्तरंग को लहुलूहान करने लगी। जितना वह उससे पलायन करना चाहती, उतना ही भावनाओं का भँवर उसके वजूद को अस्थिर और असन्तुलित कर जाता।

अक्सर वह सोचती है कि किस आधार और परिस्थितियोंवश वह किस रिश्ते में बँधी रही। उम्मीद की वह कौन सी क्षीण आभा थी जिसने उसे अवनि से मुक्त नहीं किया। शुरुआत में उसने दूर जाने की भरसक कोशिश भी की पर सफल नहीं हुई। उसका अन्तरंग उसे अवनि की ओर खींचता हालाँकि चेतन रूप से वह उससे विलग रहने के लिए अपने से जूझती रहती। अवनि को जब इसका अहसास होता तो वह अपने भावनात्मक बन्धन को और कस लेता। वह यह मानने को तैयार नहीं थी कि उसने अवनि या अपने प्यार को समझने में कोई भूल की। वह तो पहली रात की भोर के उजास के साथ ही उससे मिलने चला आया था और उसे बाँहों में जकड़े देर तक सुबकता रहा था। शुभी हैरान थी और एक बार फिर उसकी भावनाओं को लेकर आश्वस्त हुई थी। अलबत्ता ज़िन्दगी का क्रूर यथार्थ बहते आँसुओं और अन्तर में फूटते गुब्बारों से इतर है और ज्यादा स्थाई भी है।

उधर शुभी पर भी विवाह का दबाव था। घरवालों से अब कुछ छिपा नहीं था और उसकी शादी ही उन्हें इसका हल नजर आता था। पर शुभी अपने को तैयार नहीं कर सकी। पूरी दृढ़ता के साथ उसने इनकार कर दिया। नतीजतन अपने और अवनि दोनों परिवारों की भर्त्सना और उपेक्षा की शिकार हुई।

सरकारी स्कूल में अध्यापक थी, इसलिए आत्म निर्भर थी। उसने अपना तबादला दूसरे शहर करा लिया और परिवार के विरोध के बावजूद वहाँ चली गई। उसने स्वतन्त्र जीवन बिताने का फैसला कर लिया था। हाँ, अब अवनि से मेल मुलाकात ज्यादा आसान और सुविधाजनक थी। बिन ब्याहे उस नए शहर में अपने साथियों और परिचितों के बीच वे पति पत्नी थे। उस दौर में लिव इन की धारणा से लोग अनजान थे, इसलिए रिश्ते को कोई नाम देना जरूरी था।

शुभी ने इसे अपनी नियति मान लिया था। अवनि के प्यार पर पूरा भरोसा था पर वह बँटा हुआ तो था ही। जाहिरा तौर पर वह विनीता से खुश नहीं था पर ज्यादातर वक्त तो उसके ही साथ गुजारता था। विनीता के गर्भ के बारे में उसने शुभी को कुछ नहीं बतलाया किन्तु अंशु के जन्म की खबर तो जाहिर होनी ही थी। बेटे के जन्म पर वह उत्साहित और प्रसन्न था। जैसे जैसे अंशु बड़ा हो रहा था, अवनि का उससे लगाव बढ़ता जा रहा था। उसकी वजह से कई बार वह शुभी के साथ उतना वक्त नहीं गुजार पाता जितना पहले बिताता था। कभी गैरहाजिर भी हो जाता और शुभी के पूछने पर तमाम बहाने बनाता...। कभी शुभी को लगता कि वह अपने को वहीं छोड़कर आता है। उसके दिल दिमाग और जीभ पर बेटे का नाम और उसकी तमाम बालसुलभ मुद्राएँ होतीं। शुभी हद दर्जे तक धैर्य बनाए रखती पर उसका संयम जवाब दे जाता। एक गहरी बेचैनी उसे अपनी गिरफ्त में जकड़ लेती। जब वह नाराज होती तो अवनि पूरी तरह समर्पण की मुद्रा में आकर उसका भावनात्मक शोषण करने लगता—शुभी, जिस दिन कहोगी, उन लोगों से पूरी तरह अलग हो जाऊँगा। उन्हें हमेशा के लिए छोड़ दूँगा।''

''मैं भला क्यूँ कहूँगी। तुम्हें खुद समझना है। मेरी ज़िन्दगी में तुम्हारे अलावा और कौन है। न माँ बाप, न बहन भाई और न दोस्त...। सबने मुझसे दूरी बना ली है। इस बड़ी दुनिया पर एक घर नहीं है जहाँ मैं जा सकूँ, एक शख्स नहीं है जिससे मैं मिल सकूँ। सबकी नजर में मैं चरित्रहीन और विनीता के जीवन का नाश करने वाली हूँ। और तो और तुम्हारे पुराने दोस्त तक न यहाँ आते हैं और न मुझे अपने घर आमन्त्रित करते हैं। अलबत्ता तुमसे उनका सम्पर्क बना हुआ है। तुम्हारे भाई बहन भी तुमसे रिश्ता बनाए हुए हैं। बहनें राखी भेजती हैं या तुम भी उनके पास आते जाते हो। परिवार के शादी ब्याह या और कार्यक्रमों में तुम शामिल होते हो। उस समय विनीता एक पत्नी की भूमिका बखूबी निभाती है और सब लोग उसे वह मान्यता भी देते हैं, भले ही तुम उसके बारे में कुछ भी सोचो या कहो। पर मैं जीवन में पूरी तरह असम्पृक्त हूँ। इस भीड़ भाड़ वाले शहर और समाज में नितान्त अकेली और उपेक्षित...।

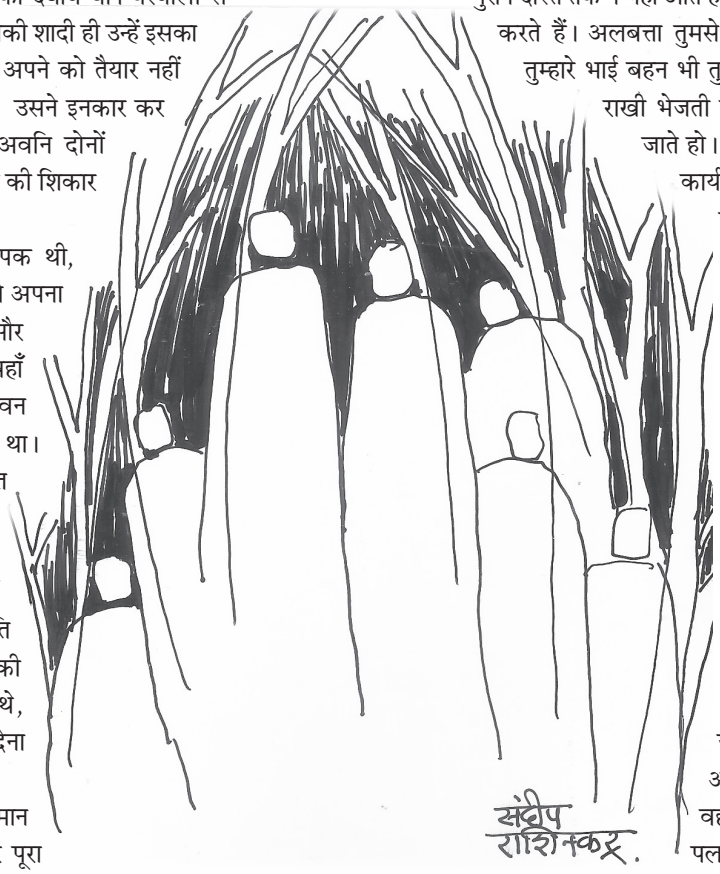

शुभी की आवाज भर्राने लगी, वह खामोश हो गई। आखिर किसी दूसरे के लिए अपने जीवन की खुशियों का होम एक सीमा तक ही किया जा सकता है। एक चुभते अहसास से रात दिन जूझती रहती वह। एक उद्विग्न ऊहापोह उसे हर पल डसता रहता। न अवनि को छोड़

पा रही थी और उसे पूरी तरह अपना बनाना तो लगभग असम्भव ही था। जब अवनि दूर होता तो कभी तड़पती रहती तो कभी विलग होने का सामर्थ्य बटोरती। और जब अवनि नजदीक आता तो भावनाओं का उद्दाम वेग उसे बहा ले जाता। उद्वेग और उत्तेजना से वह सराबोर हो जाती। अवनि को कसकर थामे रहती वह। उसे अपने में ज्यादा और ज्यादा समेटने की जद्दोजहद करती रहती, उग्र होने की सीमा तक...। और जब उत्तेजना और उग्रता क्षरित होती तो वह फूटफूट कर रोने लगती।

''तुमसे दूर नहीं रह सकती मैं। अकेलापन मुझे हर पल काटता है। लगता है कैंसर जैसी बीमारी मेरे वजूद को नष्ट कर रही है। मैं खत्म हो रही हूँ, दूर और कहीं बहूत दूर जा रही हूँ। अन्दर बाहर अँधेरा और अवसाद घिर आता है। ज़िन्दगी थम जाती है। एक गहरी बेचैनी मुझे जकड़ लेती है। लगता है मैं क्यूँ जिन्दा हूँ, किसके लिए जिन्दा हूँ— बेमकसद, अनचाही...। ये अहसास मुझे आत्मघात की ओर ढकेलता है पर यहाँ भी साहस की कमी आड़े आती है— वही कमी जिसने मुझे तुम्हें मुकम्मल रूप से पाने से रोक दिया। न तुमसे पूरी तरह जोर देकर कहा और न अपने और तुम्हारे घरवालों से। खुली आँखों और धीमी होती धड़कनों से तुम्हें किसी और का बन जाने दिया। और मैं ताउम्र अकेलेपन और पीड़ा के लिए अभिशप्त होकर रह गई।

शुभी रुक गई। लगा ही नहीं कि वह अवनि को सम्बोधित कर रही थी। यह आत्मालाप था।

''मैं क्यों जिन्दा हूँ, किसके लिए...। न कोई उम्मीद और न कोई ख्वाब....। नाउम्मीदी और शून्यता में कौन आदमी जिन्दा रह सकता है और आखिर क्यों....! तुम्हारे अलावा क्या है मेरे पास। तुम पति हो, पिता हो, बाबा हो, भाई भतीजा हो। सगे सम्बन्धियों, दोस्तों से भरी तुम्हारी पूरी दुनिया है, उसमें मैं अतिरिक्त हूँ, एक्स्ट्रा...। और मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं हर तरह से खाली और अकेली हूँ। अवनि, हम दोनों ने एक नाव में सफर शुरू किया था पर मैं छिटक गई, लहरों में पछाड़ें मारती रही, उन थपेड़ों का आघात सहते जिन्दा हूँ। और तुम...., हर तरह से मुकम्मल और मुतमईन...। मेरे प्यार ने तुमसे कुछ नहीं लिया पर तुम्हारे प्यार ने मुझसे सब कुछ छीन लिया। यह ज्यादती नहीं तो क्या है ? औरत होने और उससे भी ज्यादा प्यार करने की इतनी बड़ी सजा....।

●●

....शुभी खामोश है। गुमसुम और निश्चल...

''शुभी प्लीज, कुछ बोलो।'' अवनि उठकर बैठ गया है।

शुभी उसी मुद्रा में है, विरक्त और जड़...

''शुभी...!''

अजनबी नजर से उसने अवनि को देखा है।

''कुछ बोलने को बाकी है क्या ? पिछले तीस साल से चुप हूँ और मैं जानती हूँ कि मेरा खामोश रहना तुम्हें सूट करता है। अलबत्ता इसी चुप्पी की वजह से मैंने तुम्हें खोया है। इसके लिए कोई और नहीं मैं ही जिम्मेदार हूँ।''

''ये कैसी बातें कर रही हो। पिछले तीस साल से तुम्हारे साथ हूँ..., लगभग हर पल...''

''हाँ, पर आधे अधूरे...''

''आधे अधूरे क्यों ?'' अवनि की आवाज में तुर्शी है—''क्या कमी छोड़ी है मैंने ?''

शुभी के चेहरे पर एक विकृत मुस्कान फैल गई है।

''हाँ जानती हूँ कि तुम मेरे साथ रहते हो, मुझे प्यार भी करते हो। पर अवनि, विनीता और अंशु को लेकर तुम अक्सर सामाजिकता की बात करते हो। बताओ, उस पैमाने पर तुम्हारे जीवन में क्या स्थान है मेरा। न विवाह, न परिवार...। अब तो इस रिश्ते को लिव इन का नाम भी दे दिया गया है पर जब हमने साथ रहना शुरू किया था तब मैं समाज की नजर में महज एक रखैल थी। लोगों को सच्चाई का पता चल ही जाता है और उनके अन्दर छिपी हिकारत और अपमान उनकी नजरों से नहीं छिपता। आज भी मेरा तुम पर क्या हक है ? सब कुछ विनीता और अंशु का है। एक गुमनाम सा वजूद है मेरा। प्रेमिका तक तो फिर भी ठीक था पर तुम्हारी शादी के बाद...! पहले मुझे तुम्हारे बारे में बताने में कोई संकोच नहीं होता था पर अब... ? समाज में रिश्तों की परिभाषा के तहत यह सम्बन्ध अमान्य है। इसी वजह से न तुम मुझे कहीं ले जा सकते हो और न ही मैं इस रिश्ते को जाहिर कर सकती हूँ।''

शुभी की आँखें डबडबा उठी हैं। अपने गाउन की बाँह से उसने आँसू पोंछे हैं। अवनि ने उसे अपनी तरफ खींच लिया है। किसी प्रतिक्रिया के लिए वह शब्दों के अरण्य में भटक रहा है। अब कई बार उसे ऐसी स्थितियों का सामना करना पड़ता है। और हर बार वह निरुत्तर और बेबस हो जाता है।

''शुभी...।'' अस्फुट से शब्द उसके होंठों से निकले हैं।

''अवनि, मुझे तुमसे किसी उत्तर की दरकार नहीं है। यह हमारे जीवन की सच्चाई है और हमें इसे समझना ही है। शुरुआत में हम दोनों एक जैसी स्थिति में थे। आज स्थिति फर्क है। कोई मुझसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहता क्योंकि मैंने एक घिनौना जुर्म किया है, अक्षम्य पाप किया है— एक आदमी को उसके परिवार से दूर करने का, एक पत्नी को प्रताड़ित करने का, एक पुत्र को अपने पिता से अलग रखने का...। और तुम..., तुम निर्दोष हो क्योंकि तुम सब फर्ज निभा रहे हो। आज तुम्हारे पास सब कुछ है और मेरे पास...!''

शुभी फफकने लगी। अवनि ने उसे अपनी बाँहों में कसकर समेट लिया है। वह जानता है कि उसके पास कोई जवाब नहीं है।

''मेरी तमाम ज़िद के बाद तुम मन्दिर में शादी करने को राजी हुए हालाँकि मैं जानती थी कि ऐसा विवाह कानूनन मान्य नहीं है। तुमने कहा कोई बच्चा नहीं, माँ बनने की अपनी चाहत को दबाकर मैंने मान लिया। तुमने समझाया कि जो कुछ पिताजी से मिला है, उसे विनीता को लेने दो। इस पर किसी एतराज का सवाल ही नहीं था क्योंकि मुझे सिर्फ और सिर्फ तुम चाहिए थे। हाँ, अपने और तुम्हारे प्यार पर यकीन था मुझे। आज भी है पर अब मुझे ज़िन्दगी में अकेलेपन और खालीपन का दंश चुभता है। कुछ भी तो नहीं मिला मुझे। सम्पत्ति, धन दौलत की तो आस ही नहीं थी पर तुम भी तो नहीं मिले, कम से कम पूरे तो कतई नहीं। यह मेरे जीवन का कडुवा सच है और यही अधूरापन मेरी नियति...।

अब इस तरह!

प्रकाश कान्त

जन्म : 26 मई, 1948, सेन्धवा (पश्चिम निमाड़, म.प्र.)
शिक्षा : एम.ए. हिन्दी
प्रकाशन : चार उपन्यास , तीन कहानी संग्रह, संस्मरण, कार्ल मार्क्स पर एक पुस्तक, फ़िल्म पर एक पुस्तक एवं शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित।

मो.: 09407416269

यहाँ आए को दो दिन हुए थे। एवजी तौर पर आया था। मैनेजर के पन्द्रह दिन की छुट्टी पर जाने से। उसकी जगह! पन्द्रह दिन बाद लौटना था। ब्रांच ज़्यादा पुरानी नहीं थी। कुछ साल पहले ही खुली थी। मैनेजर समेत चार-पाँच लोगों का स्टॉफ था। हालाँकि, बिजनेस और कस्टमर के हिसाब से कम था। और इधर ज़्यादातर जगहों पर ऐसा ही था। ख़ुद मेरे ज़िम्मे हेड ऑफिस में दो-तीन काम थे। साथ ही ज़रूरत पड़ने पर कुछ-कुछ दिनों के लिए इस-उस की जगह एवजी तौर पर जाना-आना भी था। उसी सिलसिले अब यहाँ था। यहाँ आना अच्छा लगा था। दो वजहों से! बुआ और बरसों पहले बचपन में छूटा क़स्बा! उसके गली-मोहल्ले। अपनी गली। जहाँ बचपन के बाद के इन तमाम सालों में फिर कभी आना नहीं हो पाया। नौकरी के चलते काफी साल प्रदेश से लगभग बाहर जैसा ही रहना पड़ा। अब जाकर कहीं हेड ऑफ़िस आ पाया था।

बहरहाल, जैसे ही इधर आने का आदेश मिला, फौरन तैयार हो गया। सोच लिया था कि काम ठीक से सँभाल लेने के बाद पहली फुर्सत में किसी दिन आराम से शहर और अपना गली-मोहल्ला घूम आऊँगा। हालाँकि, नहीं जानता था कि इतने सालों में वहाँ अब कितनी जान-पहचानें बाक़ी रही होंगी! जहाँ तक बुआ की बात थी, उससे भी पिछले कई सालों से मिलना नहीं हो पाया था। ख़ासकर अपने रिटायरमेंट के बाद फूफा के इधर स्थाई रूप से रहने आ जाने के बाद से! ज़ाहिर है ऐसे में बुआ को जब फोन पर अपने आने के बारे में बताया था तो बेहद ख़ुश हुई थी। फोन पर ही ताकीद कर दी थी कि पूरे पन्द्रह दिन उसी के साथ रहूँ और उसी के यहाँ से जाना-आना करूँ! आधे-पौन घंटे का रास्ता और बसें भी दिन-भर! बहरहाल, सीधे बुआ के यहाँ ही पहुँचा था।

अगले दिन जब ड्यूटी के लिए निकला तब भीतर एक ख़ास तरह का रोमांच था। खुशी भी थी। वैसे, सुन रखा था कि क़स्बा अब बड़ा हो गया है और क़रीब-क़रीब एक छोटा-मोटा शहर बन गया है। काफ़ी तरक़्क़ी कर ली है। बस स्टैंड क़स्बे के बाहर आ गया है, यह आने पर ही पता लगा था। पहले अन्दर था। बीच शहर में! छोटा भी था। इसीलिए बाहर कर दिया गया था। ठीक-ठाक था। अच्छा यह था कि बैंक भी उसके पास ही था। उन दिनों तो वह बैंक खैर वहाँ था ही नहीं!

बुआ के यहाँ से आने-जाने के लिए सबेरे से रात तक आधे-आधे घंटे में बस थी। कल ज्वॉइन किया था। दिन-भर काम किया था। और काम ख़त्म होते ही लौट गया था। पहला दिन होने से आधा घंटा पहले आ गया था। आज वक्त पर आया था। लंच ब्रेक के बाद क़रीब आधे-पौन घंटे का काम ही हुआ था। मैं ताज़ा हिसाब-किताब देख रहा था। तभी एक ऊँची आवाज़ ने ध्यान खींचा था, 'कितना परेशान करोगे साहब, तीन-चार दिन हो गये चक्कर लगाते-लगाते!'

बैंक में उस वक़्त थोड़ी-सी भीड़ थी। सब काउंटर व्यस्त थे। शायद हाट का दिन होने से! या हो सकता है, अक्सर ही भीड़ रहती हो! कोने वाले काउंटर पर ज़्यादा भीड़ थी। वहाँ काम कर रहा एम्प्लाई शायद नया-सा था। नया होने या शायद किसी और वजह से काम धीरे कर पा रहा था। वहीं से आवाज़ आई थी। ऊँची आवाज़, 'काम नहीं करना हो तो साफ़-साफ़ कह दो, चले जाते हैं। मरने-गड़ने पर काग़ज़ की ज़रूरत पड़ी तो कह देंगे कि साहब लोगों ने नहीं बनाए, लाश चील-कौओं को फेंक दो!' आवाज़ थोड़ी और ऊँची हुई थी। उसमें तीखापन भी था। ग़ुस्से से पैदा होने वाला!

सबका ध्यान गया था। मेरा भी। चपरासी समझाने गया था। गेट पर खड़ा गार्ड भी वहाँ पहुँच गया था।

'अजीब तमाशा बना रखा है साहब! आदमी कम्बख़्त घर-बार, काम-धाम छोड़कर दिन-भर बैठा रहे और आख़िर में उसे कह दिया जाए कि कल आना!' कुछ थकी हुई-सी

काँपती आवाज़!

मैंने ध्यान से देखा। एक बूढ़ा शख्स! याद आया, कल भी देखा था। काफ़ी देर रहे थे। आज भी शायद बैंक खुलते ही आ गए थे। मैला-सा कमीज़-पाजामा। खिचड़ी दाढ़ी। मोटी फ्रेम का बेनाप-सा चश्मा। फ्रेम ढीली हो जाने से एक तरफ़ से थोड़ा-सा लटका हुआ!

'काम भले ही हाथों-हाथ मत करो! लेकिन, चकरी तो मत बनाओ!' चपरासी से हुज्जत जैसी हो रही थी। हालाँकि चपरासी समझा-भर रहा था। थोड़ा-सा हंगामा जैसा लग रहा था। काम कुछ धीमा पड़ गया था। मैं उठकर गया था।

'यहाँ बैठें आराम से और मुझे बतायें क्या दिक्कत है!' मैंने उनके कन्धे पर हाथ रख उन्हें भीड़ से अलग करते हुए कहा। बेंच पर ले जाकर बिठाया। वे ज़्यादा बूढ़े दिख रहे थे। दूर से देखने पर जितने लगे थे, उससे ज़्यादा! दूर से बुढ़ापे का सिर्फ एक ख़ाक़ा दिखा था। नजदीक से सम्पूर्ण बुढ़ापा दिखा। बेहद हारा-थका, टूटा, हताश बूढ़ा चेहरा। सामने के गिरे हुए दाँत। घिसी हुई चप्पलें! जिसमें से एक की एड़ी थोड़ी-सी कटी हुई। पसीने से गंधाती कमीज़! चेहरे पर पसीना। कन्धे पर पड़े अँगोछे से बार-बार पोंछा जाता हुआ।

'हाँ, मुझे अब इत्मीनान से बतायें क्या परेशानी है!' मैंने उनके हाथ से काग़ज़ लेते हुए कहा था।

'कुछ नहीं साहब, आधार कार्ड बनवाना है। लोन निकलवाने के लिए। हर जगह तो आधार नम्बर माँगते है आजकल। खरीदी-बिक्री, लेन-देन वग़ैरह सब में! मरने-गड़ने पर भी शायद आगे चलकर माँगा जाने लगे!! आधार कार्ड नहीं है तो मुर्दा बाहर ही पड़ा रहेगा। क़ब्रिस्तान में नहीं आने देंगे! अजीब तमाशा है। आदमी साला आदमी न रहकर सिर्फ एक कार्ड बना दिया गया है! एक नम्बर!!'

'आपका आधार कार्ड बनवाना है?' मैंने काग़ज़ उलटते-पुलटते हुए पूछा। इस बीच एक फोन आ गया। जल्दी से निपटाया। और बगल में बैठे बूढ़े चेहरे को फिर से देखा।

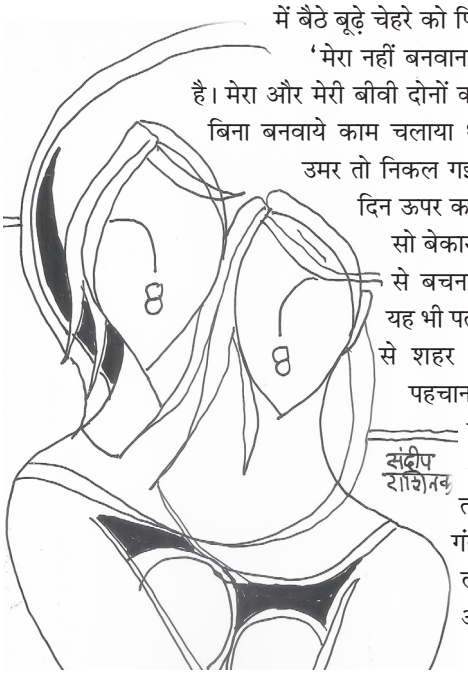

'मेरा नहीं बनवाना है साहब, मेरा तो है। मेरा और मेरी बीवी दोनों का है। कुछ दिन तो बिना बनवाये काम चलाया था। लगा कि अब उमर तो निकल गई। कौन जाने किस दिन ऊपर का बुलावा आ जाए! सो बेकार की झंझट में पड़ने से बचना चाहा! और फिर यह भी पता था कि इस छोटे-से शहर में कुछ लोग तो पहचानते ही हैं। वार्ड मेंबर से लेकर दगडू दर्जी और पाटीदार मास्टर तक! इन्दौर बस के गंगाप्रसाद कंडक्टर से लेकर सरकारी अस्पताल के मंडलोई कंपाउंड तक! थोड़ा-बहुत चौरसिया सेठ भी। उसी के यहाँ से सामान उठाता हूँ। छोटी-मोटी उधारी चलती है। इसके अलावा, दिलावर पानवाला, बगल का श्यामराव होटलवाला भी!' याद तो उन्हें नायब साहब की भी आई थी। जिनके यहाँ परदादा के जमाने की किसी ख़ास लोहे की पेटी के नखुचे ठीक करवाने उन्हें बुलवाया गया था। नायब साहब के दफ़्तर का चपरासी बुलाने आया था। यह जानकर अच्छा लगा था कि नायब साहब के दफ़्तर के लोग भी उन्हें जानते हैं। इतने लोगों की जान-पहचान काफ़ी लगती थी।

ज़िन्दगी में आदमी को आख़िर जान-पहचानें चाहिए भी कितनी होती हैं! थोड़ी-बहुत ही। काम चल जाता हैं। मेरा भी चल रहा था। लेकिन बाद में जब किसी ने बताया कि चचा हज पर जाने के काग़ज़ात में भी आधार नम्बर चाहिए होता है तब बनवाना पड़ा था। तब भी साहब बहुत भेगत हुई थी। आधार कार्ड वाले साहब बार-बार बोल रहे थे कि तुम्हारी उँगली के निशान नहीं आ रहे। अब दिन-रात अगर कोई लोहे-लंगड़ का ही काम करेगा तो भला कोई निशान कैसे बचेंगे! नहीं बचे। ना तो उँगलियों में निशान और ना हथेलियों में लकीरें! फिर भी जैसे-तैसे कार्ड बन गए। हालाँकि, हज पर जाना अभी बाक़ी है। जिस दिन उनकी मर्जी होगी, बुला लेंगे!' उन्होंने अपनी बात एक छोटी-सी हाँफनी में पूरी की थी।

'फिर आपको किसका कार्ड बनवाना है?' पूछते हुए मैंने काग़ज़ों पर सरसरी नज़र डाली।

नूरी रहमत खाँ/मेन रोड/पुराने बस स्टैंड के पास! मेरी नज़र आवेदक के नाम-पते पर पड़ी। रहमत खाँ! दिमाग में कुछ गूँजा! गणेश गंज गली का सड़क से लगा मुहाना! दाईं तरफ दो-तीन परचून की दुकानें। उससे लगा एक टिन शेड! शेड से जुड़ा कच्चा पक्का-सा मकान! जलती हुई भट्ठी! चलता हुआ पंखा। चौखाने वाली घुटने तक मुड़ी तहमत! पूरी आस्तीन की थोड़ी मैली-सी बनियान। छोटे-छोटे काले घने बाल। हल्की-सी दाढ़ी। बीच-बीच में पी जाने वाली बीड़ी! रहमत चाचा! भीतर एकदम से कुछ गूँजा। या चमका। मैंने एक बार काग़ज़ में नाम फिर से पढ़ा। रहमत खाँ पठान!

'आपके यहाँ लोहारी का काम होता है न?' मैंने बूढ़े चेहरे, ढीले फ्रेमवाले चश्मा चढ़ी आँखें देखते हुए पूछा।

'कभी होता था साहब! लेकिन, आप को कैसे मालूम! सुना है आप तो नये हैं। शायद एक-दो दिन पहले ही आए हैं!'

मैं मुस्कराया था। 'आइये मेरे साथ!' मैं उन्हें अपने साथ बैंक के बाहर लगे चाय के ठेले पर लाया। और चाय का कहा। वे शायद हैरान थे। समझ नहीं पा रहे होंगे कि मैं भला उन्हें चाय के ठेले पर क्यों ले आया हूँ! उनके चेहरे पर थोड़ी-सी हैरानी थी!

'आपके लोहारी के काम का क्या हुआ?'

'पहले होता था साहब! अब तो कब से बन्द हो गया। अब छुटपुट काम कर लेता हूँ। जो जैसा मिल जाए! बूढ़ा जिस्म अब ज़्यादा मेहनत-मशक़्क़त की इजाज़त भी नहीं देता।''

'आपका एक बेटा था न शायद शमीम या सलीम?' मुझे नाम याद करने में थोड़ी दिक़्क़त हुई थी।

'सलीम। लेकिन आप ?'

मेरी आँखों में एक दस-ग्यारह साल के लड़के की छवि उभरी थी। दुबला-सा! कज्जी आँखें। थोड़ी धीमी आवाज़। अक्सर भट्ठी का पंखा चलाते वही मिलता था। ख़ासकर उसकी अम्मी-आपा जब भीतर काम कर रही होतीं। उनमें से किसी के आते ही वही पंखे से उठ भागता।

'आप उसे भी जानते हैं!' मैंने देखा था कि उनकी आवाज़ में शायद थोड़ी भीग गई है। और वे किसी अँधेरे में उतर गए हैं।

' वह तो साहब, अल्लाह मियाँ को प्यारा हो गया। अब तो उसे गुजरे को ही बरसों-बरस हो गए। लेकिन उसकी अम्मी तो अब भी उसके लिए रोती हैं। कहता भी हूँ कि ऐसी ही रोती रहीं तो किसी दिन आँखें चली जायेंगी। लेकिन, वह बेचारी भी क्या करे! जवान बेटा देखते ही देखते आँख के सामने से चला जाए! अच्छी-भली जंगल महकमे में नौकरी लगी थी। बहुत खुश था। जिस दिन ड्यूटी पर पहुँचना था उसके दो दिन पहले रात में अपने किसी पहचान वाले से मिलकर लौटते वक्त अँधेरे में साँप पर पाँव रखा गया। साँप ने काटा। घर-अस्पताल तक लाते-जाते तक तो सब ख़त्म हो गया।'

उन्होंने चश्मा थोड़ा-सा ऊँचा कर आँखों की नमी पोंछी। मैंने अपना चाय का गिलास रख दिया। उनके कन्धे पर हाथ रखा। उनकी चाय ठंडी हो गई थी। मैं सलीम के साथ अपने बचपन में लौट गया था। शायद नौ-दस साल का रहा हूँगा। सलीम की उम्र के आसपास का। गिरधारी, कैलाश, बब्बन, मछिन्दर की तरह एकाध साल छोटा-बड़ा। पत्थरों वाली गली। संकरी और छोटी। लेकिन सीधी! तीस-चालीस घर वाली। हम लोग दुर्गा काकू के घर में रहते थे। नीम के पेड़ के पास! किराये से। नौकरी के सिलसिले में पिता जितने दिन वहाँ रहे, हम लोग उसी गली, उसी मकान में रहे। उनके तबादले के बाद ही घर,गली और वह कस्बा छूटा। शुरुआती पढ़ाई के दिन थे। स्कूल नाले-पार था। नज़दीक ही था। स्कूल के बाद पूरा दिन गली में खेलते रहते थे। कभी गली में। कभी सदानन्द नाना के ओटले पर। कभी राजाराम मामा की ओसारी में! स्कूल जाने के पहले और आने के बाद खेलना चलता रहता। कभी-कभी तो छुट्टी के बाद घर पहुँचने के पहले ही खेलने लग जाते। खासकर गली के बाहर सलीम के घर की बगल में। सलीम के घर की बगल में काफी ख़ाली जगह थी। भँवरी, अंटी वहीं खेलते। सलीम भी होता। तब नहीं होता जब उसके अब्बा भट्ठी पर काम कर रहे होते। भट्ठी में हवा देना होती। पंखा चलाना होता। ज़्यादातर यह काम सलीम करता। कभी-कभी उसकी आपा या अम्मी करतीं। वह खेलने आ जाता। लेकिन जब नहीं आता तब कई बार हम लोग टिन शेड वाली ओसारी में जा बैठते। और उसे पंखा चलाते, भट्ठी में लपट उठते, लोहे को लाल सुर्ख होते— घन से पीटे जाते देखते रहते। कभी-कभी सलीम भी घन चलाता। हालाँकि, घन छोटा होता। बड़े हथौड़े जैसा! पता नहीं सलीम कैसे उठाता! आग, लोहा और हथौड़ा! सलीम पसीना-पसीना हो जाता! बार-बार पसीना कमीज की बाँह से पोंछता रहता! बीच में सुस्ताने के लिए थोड़ा-सा रुक भी जाता! अब्बा भी पसीना पोंछते। बीड़ी के कुछेक कश लगाते! भट्ठी से राख बाहर निकालते। दूसरे कोयले डालते! इस बीच अम्मी या आपा चाय बना लातीं तो चाय पी लेते! इतनी देर में भट्ठी में डले नये कोयले आँच पकड़ लेते। दहकती हुई भट्ठी, तपता हुआ लाल सुर्ख लोहा, सलीम का चलता हुआ घन! वह सब देखकर देह में हल्की-सी झुरझुरी महसूस होती। उनके यहाँ लोहे का आम इस्तेमाल का छोटा-मोटा सामान बनता था। कभी-कभी बैलगाड़ी के पहियों पर पाट भी चढ़ाया जाता था। जिस दिन पाट चढ़ाया जाना होता उस दिन काम बढ़ जाता। पड़ोस के बाबू भाई को मदद के लिए बुला लिया जाता। बाबू भाई के यहाँ सुतारी का काम होता था। टेबल-कुर्सी, अलमारी के अलावा बैलगाड़ी के पहिये भी बनते थे। बल्कि, बैलगाड़ी का पूरा काम होता था। पहिये का काम ज़्यादा बड़ा और बारीक होता था। आरे बनाना। उन पर धारियाँ डालना। और सब निपटने के बाद पाटा चढ़ाना। पाटा रहमत चाचा के यहाँ चढ़ता। सलीम को पूरे वक़्त वहीं बने रहना होता।

'सलीम की एक बहन थी न!' मैंने पूछा था। याद आया जिन्हें हम सलीम की तरह 'आपा' ही बुलाते थे।

उन्होंने मेरी ओर देखा। 'नूरी! कहाँ जाएगी, हमारे ही पास है। बड़ी उम्मीद से शादी की थी। कुछ साल ससुराल रही। इस बीच उसका मियाँ दुबई चला गया। जब से गया तब से न तो पलटकर आया और ना खोज-ख़बर ही ली! नूरी के ससुराल वालों ने एक-दो साल तो उसे रखा फिर घर से निकाल दिया। तब से हमारे ही पास है। दो बच्चियाँ हैं। सिलाई करके घर चलाती है। नगर पालिका ने अतिक्रमण बताकर मकान का अगला हिस्सा गिरा दिया। भट्ठी उसी के साथ बन्द हो गई! पिछली दो कोठरियाँ हैं। उनमें रहती हैं हम पाँच जान! मुझसे तो इस उम्र में ज़्यादा कुछ होता नहीं। नूरी की अम्मी ज़रूर छोटा-मोटा कुछ करती है। नूरी को मदद हो जाती है! उसी का कार्ड बनवाने के लिए चक्कर लगा रहा हूँ। हमारा जो होना था, हो चुका! जो दो-चार दिन बचे हैं, वो भी कट जाएँगे! फ़िक्र उसी की है। वह बेचारी अपने दो बच्चों को लेकर कहाँ जाएगी! इधर हाल यह है कि दिल्ली से लेकर इस शहर के दयाल चौक तक आये दिन हम लोगों को पाकिस्तान भेज देने के फतवे सुनाई देते रहते हैं! आख़िर इंसान हैं। देख-सुन कर डर तो लगता है! हम बूढ़े मियाँ-बीवी का तो ठीक, जो होना हो सो हो! भले ही ताबूत में ज़िन्दा डाल पाकिस्तान भेज दें या समन्दर में डुबो दें; फ़िक्र उस बेचारी की है। उसका क्या होगा! आधार भी नहीं होगा तो जाने कहाँ धक्के खाती फिरेगी!'

उनकी आवाज़ भीग गई थी। मैंने फार्म समेत बाक़ी काग़ज़ उलटे-पलटे थे। जिनकी ज़रूरत थी, क़रीब-क़रीब वे सारे काग़ज़ थे। फार्म में एक-दो जगह मामूली कमियाँ थीं। हाथों-हाथ ठीक हो सकने वाली!

'आप घबराए नहीं, मैं करवाता हूँ। आप घर से आपा को ले आएँ!' मैंने कहा था। और उनके मना करने के बावजूद उनके लिए दूसरी चाय मँगवाई थी।

उन्होंने चाय पी। फिर अँगोछे से एक बार अपना चेहरा और होंठ पोंछे। खड़े होने के लिए मेरे कन्धे का हलका-सा सहारा लिया। और अपनी पूरी थकान को समेटकर खड़े हुए। कुछ पल खड़े रहे। एक बार मेरी ओर देखा। शायद मेरे बारे में सोच रहे हों!

' शुक्रिया बेटा! ' चलते वक़्त कहा। बहुत धीमी आवाज़ में! आवाज़ जिसमें राहत की हल्की-सी छुअन थी।

मैं उन्हें जाते हुए देख रहा था।

चुका नहीं हूँ मैं अभी

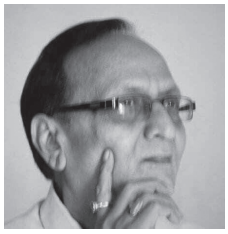

महावीर राजी

जन्म : 1952, दक्षिणेश्वर, कोलकाता
शिक्षा : एडवांस्ड एकाउंट्स में प्रथम श्रेणी ऑनर्स, एल.एल.बी.।
प्रकाशन : मुख्य धारा की सभी राष्ट्रीय पत्रिकाओं (हंस, कथादेश, वागर्थ, नया ज्ञानोदय आदि) में लगभग पचास कहानियां एवं लगभग पच्चीस लघुकथाएं प्रकाशित,
कृतियाँ : कथा संग्रह 'ऑपरेशन ब्लैकहोल' एवं 'बीज और अन्य कहानियाँ' प्रकाशित,
सम्मान : घासीराम अग्रवाल स्मृति साहित्य सम्मान आदि से सम्मानित-पुरस्कृत।

मो.: 09832194614

प्लेटफार्म पर यात्रियों की चहल पहल हल्की थी। सुबह दस बजे की ऑफिस आवर्स की आपाधापी वाली भीड़ के बाद ग्यारह बारह के आस पास प्राय: ऐसा ही होता है। मेंगनियों की तरह छितराये यात्री... जिनमें घरेलू कामकाजी महिला-पुरुष, स्कूल-कॉलेजों के बिन्दास नौनिहाल, मंडियों को जाते फुटकर व्यापारी व हॉकर्स तथा तफरीही मूड लिए फुरसतियों की संख्या ज्यादा...!

तीनकोड़ीदा प्लेटफॉर्म के किनारे तक आकर बाईं दिशा की ओर विहंगम दृष्टि से देखते हैं। कई जोड़ी पटरियाँ अजगर की तरह सरसराती दूर क्षितिज के सीने में धँसती चली गई थीं। वहाँ सीने के पास धूसर कुहासे का छोटा पर्वत बन गया था। कुछ ही देर में पर्वत को भेद कर इंजन बाहर निकलने लगता है, जैसे गर्भिणी की योनि से निकल रहा होता है नए जन्मते शिशु का मुंड! देखते देखते इंजन कई कई बोगियों वाली ट्रेन में तब्दील होता ताड़का की तरह धड़धड़ाता प्लेटफॉर्म से आ लगता है। यात्रियों में पहले चढ़ने और पहले उतरने की होड़ मच जाती है। तीनकोड़ीदा के पास सफेद पॉली चट के दो बड़े बोरे हैं जिनमें आलूचिप्स के पैकेट भरे हैं। बापी की सहायता से दोनों बोरे ट्रेन में चढ़ा लेते हैं। ट्रेन चल पड़ती है।

ट्रेन के चलते ही तीनकोड़ीदा और बापी बोरे से चिप्स के पैकेट निकालकर हवा में लहराते हुए पंचम सुर में हाँक लगाते हैं—'भाइयो और बहनो, तीनकोड़ी का पोटैटो चिप्स एसे गेछे (आ गया)।' आनन फानन पूरी बोगी में बात रसायन की तरह फैल जाती है और यात्रीगण तीनकोड़ीदा को अपनी अपनी ओर आने के लिए आवाज देने लगते हैं। तीनकोड़ीदा के होंठों पर सन्तुष्टि की मीठी मुस्कान गौरैया की तरह चीं चीं करती आ बैठती है। हाँ... आज टी.के. प्रोडक्ट का 'तीनकोड़ी के चरपरे आलू चिप्स' कोलकाता से लगे पाँच बड़े जिलों—हाबड़ा, उत्तर एवं दक्षिण चौबीस परगना, बर्दवान, हुगली में दूर दूर तक लोकप्रिय ब्रांड बन गया है और ख्यात कम्पनियों के बड़े ब्रांडों को कड़ी टक्कर दे रहा है।

'दादा, चार पैकेट इधर भी...' बाईं ओर से आवाज आती है तो तीनकोड़ीदा पैकेट उधर बढ़ा देते हैं। मन ही मन गेटअप और पैकेजिंग के स्तर पर अपने माल की तुलना बड़ी कम्पनियों के बहु प्रचारित ब्रांडों से करने लगते हैं। कहाँ उन कम्पनियों के सतरंगी चमकीले मशीन पैक्ड पाउच और कहाँ साधारण से पारदर्शी पॉलीपैक वाले हाथ से सील किये उनके चिप्स! दोनों पैकेट आसपास रखे जाएँ तो लगेगा जैसे ऑस्ट्रेलियाई रिकी पोंटिंग के सामने वेस्टइंडीज का क्रिस गेल खड़ा हो। उनकी हँसी छूट जाती है।

'आपका चिप्स बड़ा टेस्टी है दादा...' पैकेट थामते हुए एक ग्राहक टिप्पणी जड़ता है तो दूसरा भी कदमताल मिलाते हुए खिलखिला पड़ता है—'बिल्कुल...! माल भी बड़े ब्रांडों की तुलना में डबल!'

दूसरी बोगियों में भी ऐसा ही स्वागत! दो घंटे की यात्रा तय करके नैहाटी पहुँचते पहुँचते एक बोरा माल खत्म हो जाता है। यहाँ उतरकर डानकुनी लाइन की गाड़ी पकड़नी है। ट्रेन से उतरते समय घुटनों पर ओस्टियो का नाग फुफकारता है तो कदम लड़खड़ा जाते हैं।

'खूब दर्द हो रहा है न काकू...?' बापी झट से सहारा देते हुए कहता है—'ट्रेन की यायावरी बन्द क्यों नहीं कर देते? अब तो अपना उद्योग खासा जम गया है। व्यापारी लोग माल के लिए स्वयं हमारे दरवाजे तक दौड़े आ रहे हैं।'

'ट्रेन की यायावरी ही तो हमारे उद्योग की जड़ है रे! इसी में नाल रुपी है हमारी। जड़ से कैसे कट जाऊँ?' दाँत पर दाँत भींच कर दर्द को जज्ब करते मुस्करा देते हैं तीनकोड़ीदा। पैंसठ के फेटे में चल रहे हैं। उम्र का असर तो होना ही है। पर पिछले दिनों बेटे के हाथों छल-कपट, अपमान-तिरस्कार और उपेक्षा के जैसे दंश झेलने पड़े, उसकी तुलना में यह दर्द कुछ भी नहीं। शान्तनु के स्वभाव में ऐसा 'क्रान्तिकारी' बदलाव! ओह, कितना भयावह अनुभव था सारा कुछ!

डानकुनी लाइन को कवर करके घर लौटते हुए शाम

के चार बजे जाते हैं। मेन रोड से दूर आमबागान की अन्दरूनी बस्ती! मिष्टी इन्तजार में दरवाजे पर खड़ी है। देखकर मुस्कराती है— 'बहुत थक गए न?' तीनकोड़ीदा गहरी नजरों से मिष्टी की आँखों में झाँकते हैं। पच्चीस साल पहले वाली आत्मविश्वास से ओतप्रोत वैसी ही खिलंदड़ी मुस्कान आज भी आँखों के कोटरों में कुलाँचें भर रही है। सिर्फ चेहरे की गोरी स्लेट पर उम्र के नाखूनों ने नई इबारतें लिख डाली हैं। माँग तथा कनपटियों के पास रुपहले तार 'पीपिंग टॉम' (चोरी छुपे लोगों की यौन मुद्राओं को देखकर आनंद लेने की विकृति) से झाँकने लगे हैं। बेटे के विरुद्ध अघोषित धर्मयुद्ध के कठिन समय में यही मुस्कान उनका संबल है! संबल भी और ऊर्जा का उत्प्रेरक स्रोत भी! तीनकोड़ीदा जमीन पर ही पालथी मारकर बैठ जाते हैं। मिष्टी माछ-भात परोसी थाली सामने रख देती है। नजरें कछुए की तरह हाथ-पाँव समेटे थाली पर स्थिर हैं। अचानक...आँखों के आगे झपाका होता है। थाली से माछ-भात अदृश्य हो जाते हैं और वहाँ मेंढक की तरह फुदकने लगते हैं अतीत के कुछ बेतरतीब कोलाज...

दक्षिणेश्वर : बैक टु पैविलियन...

पहले पाड़ा (मोहल्ले) के स्कूल और फिर कोलकाता के कॉलेजों की लगातार अष्टावक्री परिक्रमा के बाद आखिर शान्तनु एमबीए की डिग्री हासिल करने में कामयाब हो गया। अन्तिम सेमेस्टर के पहले ही हैदराबाद की एक बड़ी कम्पनी में सेल्स मैनेजर के मयूर सिंहासन पर प्लेसमेंट! सूचना मिलते ही तीनकोड़ीदा मिष्टी को गोद में उठाकर नाच पड़े।

'आज हम बहुत खुश हैं... आज सारा दिन तुम्हें तुम्हारे मूल नाम शर्मिष्ठा से पुकारेंगे। महारानी शर्मिष्ठा...!' तीनकोड़ीदा ने मिष्टी की कमर में गुदगुदी की।

'रहने दो गो (रहने दो जी)... हम मिष्टी ही भले हैं। वर्षों की तपस्या आज पूरी हुई।' दोनों खिलखिलाए तो कोठरी रातरानी की महक से भर गयी।

'सच मिष्टी, कैसा दुर्भाग्य मिला कि अकेलापन शुरुआत से पगलाए कुत्ते की तरह पीछे पड़ा रहा। बचपन में माँ गुजर गई, तब अकेला हुआ। फिर तुम आईं तो बाबा (पिता) चले गए। उसके बाद शान्तनु हमारे बीच आया, लेकिन उसे होस्टल भेजकर फिर अकेला हो गया। अब और नहीं! एक युग के बाद एक साथ रहने की हमारी 'साध' पूरी होगी।'

'बेटे के साथ साथ बहू का भी खूब लाड़ करने को ललक रहा है मन।'

वहाँ सब कुछ व्यवस्थित होते ही बुला लेने का आश्वासन देकर शान्तनु हैदराबाद लौट गया। देखते देखते गर्मी बीती, फिर सावन-भादों भी गरज-बरस कर चले गए। दुर्गा और काली माँ भी क्रम से एक दूसरे के पीछे अवतरित हुईं और पूरे प्रदेश को ढाक (एक वाद्य), घड़ियाल और शंख के सात्विक नाद से निनादित कर विदा हो गईं।

अचानक हैदराबाद से एक दिन शादी की अप्रत्याशित सूचना मिली तो दोनों स्तब्ध रह गए। स्टेनो पद पर कार्यरत जसप्रीत चावला से शान्तनु का टाँका भिड़ गया था। जसप्रीत तीखे नैन नक्श की चालाक और महत्वाकांक्षी युवती थी। शान्तनु उसकी कंचनी देह और मादक अदा पर बुरी तरह फिदा था। इश्क के बुखार ने एक दिन सोडा वाटर की तरह इस कदर उफान मारा कि जसप्रीत 'वर्किंग वीमेंस होस्टल' की गँधाती कोठरी को अलविदा कहती शान्तनु के फ्लैट में आ धमकी। शान्तनु उसे बाँहों में भरकर हिनहिनाया—'जसप्रीत कैसा तो ओल्ड फैशन नाम है यार! इसके 'जस' को जस का तस रख कर 'प्रीत' की जगह 'मिन' कर दें तो...? जसमिन! खुशबूदार नाम!' दूसरे महीने दोनों ने शादी का निर्णय ले लिया।

न कोई सलाह, न ही संकेत! सीधे ब्याह की सूचना! वह भी विजातीय! तीनकोड़ीदा थोड़ी देर के लिए स्तब्ध रह गए, फिर मन को समझा लिया। बेटे की खुशी में ही उनकी खुशी है। दुकान बन्द की और हैदराबाद के लिए रवाना हो गए।

शादी...! शादी के बाद 'बहूभात' (रिसेप्शन)! देखते देखते पाँच दिन निकल गए। इन दोनों के अलावा सारे मेहमान चले गए थे। एक रात तीनकोड़ीदा सोने की तैयारी कर रहे थे कि शान्तनु रूम में आया— 'बाबा, अब आपको दक्षिणेश्वर लौट जाना चाहिए। एक हफ्ते से आपका बिज़नेस बन्द है। सोचिए कितना नुकसान हो रहा होगा!'

तिनकोड़ीदा चकित रह गए। चकित मिष्टी भी हुई। जॉब मिलते ही एक साथ रहने की बात खुद शान्तनु ने की थी। लम्बे प्रवास का मन बनाकर आए थे वे। और बिज़नेस! 'तेले-भाजा' (आलू, प्याज, बैंगन आदि की पकौड़ियाँ) की छोटी सी मजबूरी वाली गुमटी को बिज़नेस कह रहा है!

'हम तो तेरे साथ रहने का मन बनाकर आए हैं रे। आमदेर चिरोकालेर स्वप्न एटा (हमारा चिरांकांक्षित सपना)!'

'हाँ बेटे, तेरे बाबा पच्चीस साल तक खून पसीने की आहुति देते रहे भट्ठी की आँच में। अब उन्हें आराम की जरूरत है। हम तेरे और बौ-माँ (बहू) के साथ रहना चाहते हैं।' मिष्टी ने हकलाते हुए बात पूरी कर दी।

'आज के बदलते समय में भावुक होने से काम नहीं चलेगा माँ। एक चलते हुए बिज़नेस को बन्द कर देना कहाँ की बुद्धिमानी है? दो पैसे की आमदनी हो रही हो तो क्यों ठुकराना भला? रही एक साथ रहने की बात! अभी यह सम्भव नहीं। यहाँ जगह कम है। थोड़ा बड़ा फ्लैट मिल जाय, फिर सोचा जाएगा।' शान्तनु का लहजा सपाट था।

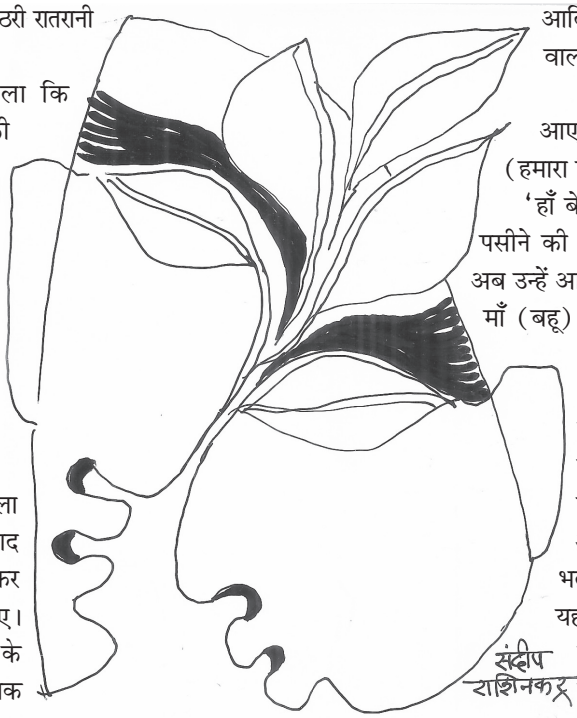

यह पिछली सदी के अन्तिम दशक का उत्तरार्द्ध था। वैश्वीकरण का आगाज हो चुका था। आवारा वित्तीय पूँजियाँ बाजारवादी शक्तियों के बल पर विचार और सम्वेदना को तहस नहस करने में लग चुकी थीं। वैश्विकरणी 'विकास' के छिटपुट छींटों से यह कस्बा भी अछूता नहीं रहा। कोलतार की चमकदार सड़क! लैम्प पोस्टों की ऊँची फुनगियों पर दूधिया ट्यूब्स! पुरानी बाड़ियों की जगह आधुनिक फ्लैट्स! हर नुक्कड़ पर चाऊमीन, बर्गर, मोमो और डोसा-इडली के ठेले!

'हमें जगह ही कितनी चाहिए...एक कोने में रह लेंगे। वहाँ हमारा मन नहीं लगेगा रे।' तीनकोड़ीदा की आवाज गले से किंकियाती हुई सी निकली थी।

'मुश्किल है बाबा। हमें भी प्राइवेसी चाहिए। वैसे भी अभी आपका स्वास्थ्य ठीक है। चालू बिज़नेस को बन्द कर देना ठीक नहीं। जब तक चले, चलाने में क्या हर्ज है। उसके बाद तो मैं हूँ ही।'

तीनकोड़ीदा को सब कुछ अद्भुत लग रहा था। यहाँ से चले जाने के लिए 'बिज़नेस' की दुहाई की बात भी और भंगिमा भी! मिष्टी कुछ कहना चाहती थी पर उसे संकेत से मना कर दिया। बेटे की भावहीन उदासीनता के सामने कुछ भी कहना बेकार था। दूसरे दिन दोनों दक्षिणेश्वर लौट आए।

कोलकाता से करीब पचास-साठ किलोमीटर उत्तर में गंगा के किनारे—दक्षिणेश्वर! महाकाल और महाकाली के एक ही प्रांगण में भव्य मन्दिर! नामचीन चटकलों और कल कारखानों की लक्ष्मण रेखा के भीतर कुकुरमुत्तों सी उग आई लिलिपुटी बस्तियाँ! मेन रोड के दोनों ओर फैला मुख्य बाजार! बाजार के इकलौते सिनेमा हॉल के पास थी पुश्तैनी बाड़ी (घर)! तीन कोठरियाँ... ऊपर बँगला-टाली की छत... पीछे खुला दालान...! तीन कट्ठे में फैली। सामने वाली कोठरी में 'तेलेभाजा' का 'बिज़नेस'! बेशक बाड़ी पुरानी थी पर मेन बाजार की इसकी लोकेशन लाजबाव थी।

यह पिछली सदी के अन्तिम दशक का उत्तरार्द्ध था। वैश्वीकरण का आगाज हो चुका था। आवारा वित्तीय पूँजियाँ बाजारवादी शक्तियों के बल पर विचार और सम्वेदना को तहस नहस करने में लग चुकी थीं। वैश्विकरणी 'विकास' के छिटपुट छींटों से यह कस्बा भी अछूता नहीं रहा। कोलतार की चमकदार सड़क! लैम्प पोस्टों की ऊँची फुनगियों पर दूधिया ट्यूब्स! पुरानी बाड़ियों की जगह आधुनिक फ्लैट्स! हर नुक्कड़ पर चाऊमीन, बर्गर, मोमो और डोसा-इडली के ठेले!

लौटकर आने के बाद कुछ दिनों तक जेहन में धुँआती बेचैनी चील की तरह फड़फड़ाती रही। फिर पहले की तरह भट्ठी सुलग गई और उसकी छाती पर सवार कढ़ाही में तेले-भाजा छनने लगे। अलबत्ता अब ग्राहक कम हो गए थे। आधुनिक फ़ास्ट फूडों के सामने इन गँवई तेले-भाजा की क्या बिसात!

हैदराबाद : टूटना 'चिरोकालेर स्वप्न' का...

थाली अब झील में तब्दील हो गई है और अतीत के कोलाज मेंढकों की छोटी फुदकन को धता बताकर डॉल्फिनों की मानिन्द लम्बी उछालें भर रहे हैं...

तकरीबन आठ माह का संवादहीनता का लम्बा अन्तराल! एक दिन शान्तनु का फोन आया—'बाबा, मुझे पच्चीस लाख रुपयों की सख्त जरूरत है। परसों आ रहा हूँ वहाँ।'

उन्हीं दिनों चीफ मार्केटिंग एग्जीक्यूटिव के पद पर सन्दीप भाटिया की बहाली हुई थी। पहले दिन जैसे ही जसमिन सन्दीप के केबिन में घुसी, दोनों एक दूसरे को देखकर 'कब के बिछुड़े हुए हम आज कहाँ आकर मिले...' की तर्ज पर धक से रह गए। बारह साल पहले दोनों स्नातकीय कोर्स के लिए लुधियाना के कॉलेज में साथ थे। जसमिन सुन्दर तो थी ही, चंचल और बिन्दास भी थी। पहले पार्क के निर्जन कोने में, फिर सिनेमा हॉल के स्याह एकान्त में और अन्त में होटल के बन्द रूम में दोनों करीब से क़रीबतर आते गए। दुर्योग यह हुआ कि जसमिन फाइनल में अटक गई और सन्दीप आगे की पढ़ाई के लिए पूना कूच कर गया। नजरें मिलीं तो कॉलेज के दिनों की मादक स्मृतियाँ फीनिक्स की तरह सर उठा कर गरबा करने लगीं।

कम्पनी का 'लिटिल बॉस' पोटैटो चिप्स खूब तेजी से बाजार में सुरसा की तरह पैठ जमा रहा था। अन्य ब्रांडों की तुलना में उपभोक्ताओं के बीच इसकी लोकप्रियता का ग्राफ शिखर पर था। एक दिन सन्दीप ने जसमिन से कहा—'स्टेनो की इस टुच्ची सी नौकरी में क्या पड़ा है यार? यदि पच्चीस लाख जुटा सको तो 'लिटिल बॉस' की हैदराबाद रीजन की एजेंसी तुम्हें दिला सकता हूँ। महीने में पचास लाख का टर्नओवर तय है। पाँच परसेंट कमीशन! कितने हुए बताओ तो...?' सन्दीप आँख दबाता शरारत से मुस्कराया तो जसमिन के दिल में एक अजीब सी मिठास सरसरा गई। रात को उसने शान्तनु से इस प्रस्ताव की चर्चा की तो वह सनाका ही खा गया। ढाई लाख महीने की आय!

'पर पच्चीस लाख...! इतने पैसे कहाँ से आएँगे जस?'

'अरे वहाँ तुम लोगों का मकान, आई मीन बाड़ी है न?'

'हाँ है तो पर माँ बाबा बड़े इमोशनल हैं। बेचने को तैयार नही होंगे।' शान्तनु मिमियाया।

'इमोशनल हैं तो उन्हें इमोशनली हैंडल करने की तिकड़म बैठाओ न! पैसे जुटाने ही होंगे। ऐसा मौका हम हरगिज नहीं गँवा सकते।'

फिर एक योजना तैयार हुई और दो दिनों बाद शान्तनु दक्षिणेश्वर आया। बेटे को सामने देखकर दोनों पति-पत्नी बौरा ही गए। चेहरे पर अफसरी रुआब पुता हुआ था। बदन कुछ भर गया था। एक कसक जरूर फुफकारी कि बाप बेटे के अत्यन्त सम्वेदनशील रिश्ते के बीच भी बाजारवाद रेंग गया था! इतने दिनों बाद बेटा आया भी तो पैसे के बहाने!

'हमें 'लिटिल बॉस' चिप्स की एजेंसी मिल रही है बाबा। दो ढाई लाख की शानदार आय! पच्चीस लाख रुपये चाहिए मुझे।'

' पच्चीस लाख...!' सुनकर तीनकोड़ीदा के होंठों पर सूखी हँसी तिर आई—'पच्चीस लाख तो क्या, हमारे पास पच्चीस हजार भी नहीं हैं। दुकान भी ठप पड़ी है।'

'इस बाड़ी को क्यों भूल रहे हैं! आज की मार्किट वैल्यू क्या है इसकी

पता भी है? तीस लाख...! एक बड़े प्रॉपर्टी डीलर से बात हो गई है।' शान्तनु का चेहरा गर्व से दिपदिपा रहा था। एक क्षण को मौन छाया रहा कोठरी में!

'पर बेटे, पुश्तैनी सम्पत्ति को इस तरह झट से नहीं बेचते। यहाँ हमारी नाल रूपी है। पुरखों की स्मृतियाँ भी...' तीनकोड़ीदा के गले से फँसी फँसी आवाज निकली।

'नाल...! स्मृतियाँ...! भावुकता वाली ये थ्योरियाँ कब की पुरानी हो चुकीं बाबा। जरूरत पड़ने पर सम्पत्ति बेचने में क्या हर्ज है?'

'बैंक से लोन भी तो ले सकता है रे।'

'बैंक लोन में ढेर सारे पेंच होते हैं बाबा। समय भी लगता है। जब हमारे पास जुगाड़ है तो लोन क्यों लें?' शान्तनु की आवाज में किंचित तल्खी घुल गई। कुछ देर फिर मौन!

'मेरा मन नहीं मान रहा शान्तनु...' मिष्टी चाय बनाने के लिए बरामदे की ओर बढ़ गई—'इतना बड़ा कदम यूँ झट से नहीं उठा सकते। हमें सोचने के लिए वक्त चाहिए बेटे!'

'एक बार अपनी जड़ से कट कर विस्थापित हो चुके हैं हम...' तीनकोड़ीदा की आवाज गहरे कुएँ से निकलती लग रही थी—'हमारे पूर्वज चटगाँव (बांग्लादेश) में रहा करते थे। वहाँ स्थितियाँ बिगड़ने लगीं तो बंगाल चले आए। विस्थापन का दर्द अभी तक नहीं भूला है। दुबारा फिर जड़ से उखड़ना आत्मघाती न हो जाय...।'

शान्तनु के जेहन में जसमिन का 'इमोशनली हैंडल' करने वाला टोटका घुमेरे घाल रहा था... ब्रह्मास्त्र! होंठों पर रहस्य भरी मुस्कान लाते हुए बोला—' सबसे बड़ी बात...एजेंसी की देखभाल आप को ही न करनी है बाबा। बड़ा फ्लैट ले लिया है मैंने। अब हम साथ रहेंगे।'

'सच बेटे...?' चाय उबल रही थी, पर उसे छोड़ कर मिष्टी लपक कर करीब आ गयी। शान्तनु के हाँ में सिर हिलाते ही पति की ओर मुँह करके हुलस पड़ी—'आर भाबबार की आछे गो (अब सोचने को क्या है जी)? सुना...? हम बेटे बौ-माँ के साथ रहेंगे।'

साथ रहने की बात पर तीनकोड़ीदा भी रोमांचक सिहरन से भर गए। ओह... इस स्वप्न को हासिल करने के लिए तो बाड़ी क्या, कुछ भी न्यौछावर कर सकते हैं। जड़, पुरखे, विस्थापन...सारी बातें पलक झपकते फना हो गईं।

'मेन रोड से दूर भीतरी बस्ती के आमबागान में सपन माझी की दो कोठारी वाली बाड़ी खरीद ली है। बाड़ी छोटी है पर आप दोनों के लिए पर्याप्त है। रजिस्ट्री तुम्हारे नाम से होगी माँ।' फिर बाबा की ओर मुखातिब हुआ—'एजेंसी की कानूनी औपचारिकताएँ पूरी होने में दो तीन माह लग जाएँगे। तब तक यह बाड़ी आपका अस्थायी निवास होगी। जैसे ही सब कुछ व्यवस्थित हुआ, आप लोगों को बुला लूँगा, ठीक?'

एक सप्ताह के अन्दर दोनों बाड़ियों की खरीद व बिक्री की सारी औपचारिकताएँ पूरी हो गईं। इस तरह मेन रोड की पुश्तैनी बाड़ी और बाड़ी के कंगारू-गोद में दुबका तेले-भाजा का 'ऐतिहासिक' बिज़नेस हमेशा के लिए हाथ से निकल गया। एक और विस्थापन! बार बार जड़ों से उखड़कर रिफ्यूजी की तरह एक जगह से दूसरी जगह बसना कितना पीड़ादायक होता है! आमबागान में आकर मन कई दिनों तक विचलित

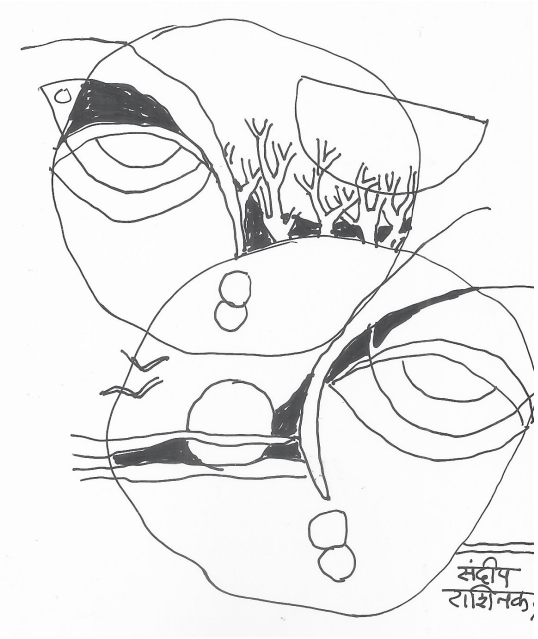

रहा। विचलन के इन्हीं विरल क्षणों में अचानक रवींद्र ठाकुर की कभी की पढ़ी पंक्तियाँ जेहन में कौंध गईं—*'तुमी केमोन कोरे जे गान कोरो हे गुनी, आमी अवाक होए शुनी, केवोल शुनी...(हे प्रभु, तुम किस तरह से संगीत छेड़ते हो कि मैं अवाक होकर तन्मयता से सुनता हुआ उसमें खो जाता हूँ)!'* दोनों की आँखें छलक आईं।

'अच्छा जी, नयी फर्म का नाम क्या रखोगे?' माहौल की गम्भीरता को परिहास के छींटों से तिरोहित करती मिष्टी इठलाई—'इसका नाम होगा 'शान्तनु एजेंसी' और इसके सीईओ होंगे श्रीमान तीनकोड़ी मंडल! नहीं नहीं...मि. टी.के. मंडल!'

समय अपनी गति से बीत रहा था। पहला माह! फिर दूसरा! फिर तीसरा! आतुर जिज्ञासा पर हर बार धैर्य रखने की नसीहत! बड़ी कम्पनी की बड़ी बातें! ढेर सारी कानूनी प्रक्रियाएँ! समय तो लगेगा ही। पर जब चौथा माह भी बीत चला तो चिन्ता से भरकर तीनकोड़ीदा ने फोन मिलाया—'कोई समस्या तो नहीं आ रही बेटे?' फोन का स्पीकर ऑन था। दूसरी ओर कुछ क्षणों का मौन छाया रहा। फिर शान्तनु की आवाज गूँजी—'मैं फोन करने ही वाला था बाबा। काम शुरू हो चुका है और देखभाल के लिए हमने जसमिन के पापा और भाई को बुला लिया है।'

'क्या...?' रबर की तरह लम्बा खिंच गया 'क्या'।

'हमने खूब सोचा। एजेंसी का काम बड़ा पेचीदा होता है। खूब भाग दौड़ होगी। सारे बिल, वाउचर, पत्राचार आदि इंग्लिश में होंगे। आप से नहीं हो सकेगा ये सब।'

दोनों के कलेजे धक से रह गए। मिष्टी हुंकारी— 'क्या कह रहा है तू? बाबा की काबिलियत और व्यावसायिक सूझ बूझ पर शक कर रहा? तेरे लालन पालन और शिक्षा दीक्षा का पहाड़ सा खर्चा तेले-भाजा की मामूली सी गुमटी से यूहीं निकल गया? तुझे खूब पता है कि गणित और अँग्रेजी में लैटर मार्क्स मिले थे इन्हें।'

'ओह माँ, अँग्रेजी जानना समझना ही पर्याप्त नहीं है। इस काम के लिए यंग, स्मार्ट और कोट-पैंट वाले व्यक्ति ज्यादा मुफीद रहते हैं। डीलरों और अफसरों पर अच्छा इम्प्रेशन पड़ता है। बाबा की ओल्ड एज...! कुर्ता-पायजामा...!

कुछ तो अभावों की मजबूरी और कुछ सरल स्वभाव...! स्कूल के समय से कुर्ता-पायजामा का साधारण परिधान जो सवार हुआ बेताल की तरह बदन पर, तो काल की चाल में हो रहे निरन्तर बदलावों के बाबजूद जीवनशैली के स्थायी भाव सा आज भी जस का तस बरकरार है।

'सब थोथे तर्क हैं रे। थोथा मेनिया भी!' तीनकोड़ीदा तिलमिला ही तो उठे—'तुमने एजेंसी का जिम्मा मुझे देने की बात की थी कि नहीं? इसी शर्त पर बाड़ी बेचने को तैयार हुए थे हम।'

'बाड़ी तो वैसे भी मुझे ही मिलनी थी बाबा...' शान्तनु ऊँचे स्वर में खिलखिला पड़ा—'जो चीज बाद में मिलनी ही थी, वह अभी ले ली तो क्या गुनाह किया? पैसे की फिर जरूरत हुई तो...तो इस बाड़ी को भी बेचेंगे।'

'फिर हम कहाँ रहेंगे? जहन्नुम में?' मिष्टी चीख पड़ी।

'ऐसा क्यों कह रही हो माँ? किसी भी बढ़िया से ओल्ड एज होम में व्यवस्था कर दूँगा न।' शान्तनु का लहजा तल्ख तो हो ही रहा था, उसमें ऊब का भाव भी संश्लिष्ट हो गया—'आप लोग भी न! साधारण सी बात को भावुकता की रौ में लम्बा खींचे जा रहे हैं।'

'ये बात साधारण सी लग रही है तुझे...?' मिष्टी आवेश में चीख पड़ी 'पत्नी मोह में बाबा के पहनावे और व्यावसायिक तजुर्बे का अपमान करते लज्जा नहीं आ रही?'

दोनों स्तब्ध थे। बेटे की भावहीन कठोर प्रतिक्रियाएँ कलेजे को छलनी कर रही थीं। थोड़ी देर तक सन्नाटे का प्रेत नाचता रहा दोनों ओर ...मानो शब्द चुक गए हों। फिर शान्तनु की निर्णायक आवाज उभरी—'बाबा, परिस्थिति को देखकर निर्णय बदलना पड़ा। अब एजेंसी की फिक्र छोड़ दें। वहाँ रहने में कोई परेशानी नहीं होगी आप लोगों को। घनी बस्ती है। चाहें तो तेले-भाजा फिर से शुरू कर लें। दो पैसे की आय हो तो क्या खराब है। अन्यथा पैसे भेजता रहूँगा।'

लाइन कट गई। सम्भव है काट दी गई हो। दोनों को लगा, सिर्फ फोन की लाइन नहीं, बेटे के साथ की सारी संवेदनात्मक सूत्रों की लाइनें भी कट गई हैं। पिन चुभे गुब्बारे की तरह सारे सपने फुस्स हो गए। अधिक से अधिक पैसे कमाने की बाजारवादी लिप्सा को एक साथ रहने की वात्सल्य की तड़प मामूली भावुकता लग रही थी! उस रात खाना नहीं खाया गया। बिस्तर पर लेटी दो जोड़ी सूनी आँखें एक दूसरे के चेहरे की दरारों में न जाने क्या ढूँढ़ती रहीं। जेहन के बीहड़ में जैसे कोई घायल चील पंख फड़फड़ा रही थी। स्वप्न और जाग का मिलाजुला घेल! घेल में बिजली से कौंधते रहे कुछ कोलाज...शादी के बाद सालों तक गर्भ का बंजरपन! कालीघाट और तारापीठ की चौखटों पर व्रत-मनौतियों की अष्टावक्री परिक्रमा! गर्भ की स्याह कन्दरा में नौ माह तक भ्रूण की पीड़ादायक कलाबाजियाँ! बाल सुलभ शरारतें! हैसियत से बाहर जाकर माँगों को पूरा करने का धृतराष्ट्र-मोह!

तो क्या अब शेष ज़िन्दगी बेटे के दिए टुकड़ों पर गुजारनी पड़ेगी? बेशक पैसा ज़िन्दगी में बहुत माने रखता है। क्या रिश्तों की तरलता और संवेदना का यहाँ कोई रोल नहीं? 'तेले-भाजा' जैसे मजदूरी वाले पिद्दी से काम को 'बिज़नेस' कह फिर से शुरू करने के दुराग्रह के पीछे क्या मंशा है उसकी? बार बार पैसे भेजने की बात कर रहा। उसका पैसे भेजना दान होगा, अनुदान होगा या भीख! इस भेजने के पीछे किसी सम्मान की तासीर या भावुक दायित्व का एहसास होगा क्या? थोड़ी सी सम्पत्ति के लिए छल करने का साहस कैसे हुआ उसका? क्यों हमारे वात्सल्य और 'चिरोकालेर स्वप्न' का इस तरह भद्दा मजाक बना डाला उसने?

ओल्ड एज होम! बाप-बेटे के बीच के बेहद नाजुक रिश्ते को बाजारवाद के दबाब में तार तार करती पाश्चात्य अवधारणा! कोई भी अन्य विकल्प न बचा हो तो स्क्रैप की तरह बुजुर्गों को वहाँ डाल देने की विवशता और बात है। पर थोड़े से स्वार्थ और मस्ती के मोह में उन्हें जड़ों से काट कर कालापानी की सजा क्यों? अरे...इस उम्र में हमें भौतिक सुख की बजाय तुम्हारा सान्निध्य और प्यार चाहिए। नहीं रख सकते अपने पास तो कम से कम अपनी जड़ों के संसर्ग में तो पड़े रहने दो। पास पड़ोस में खून के रिश्तों से भी ज्यादा 'अपने' हैं न ख्याल रखने के लिए!

क्या वे वाकई हार गए हैं? क्या जमीर और आत्मसम्मान को बेटे के कदमों तले न्यौछावर कर देना ही शेष बचा है?

उनके भीतर नगाड़े की तरह ढम ढम बजती रही ये पंक्तियाँ....!

दक्षिणेश्वर : हारा नही हूँ अभी....

तीनकोड़ीदा की थरथराती नजरें अभी भी डॉल्फिनों पर टिकी हैं। विचलित कर देने वाली रोमांचक उछालें! जादुई सम्मोहन में लगता है जैसे 'अमेजन' की गुलाबी डॉल्फिनें ही झूमती चली आ रही हों झील में! नदीदे बच्चे से खोए रहते हैं उनकी कलाबाजियों में...

सुबह उठे तो नींद से बोझिल आँखें भट्ठी सी लाल थीं। मिष्टी उठ चुकी थी और आले में रखी माँ काली की तस्वीर को धूप दिखा रही थी— *'तुमी केमोन कोरे जे गान कोरो है गुनी...।'* थोड़ी देर में नाश्ता ले आई— मूढ़ी, लोंका (हरी मिर्च) और चाय!

'ऐ, आज मेन रोड घूमने का मन कर रहा। चलो न...अपनी बाड़ी के दर्शन भी कर लेंगे।'

'अपनी बाड़ी?' मिष्टी हँसी— 'अब वह अपनी कहाँ रही गो(जी)!'

पुराने कस्बाई चेहरे का तेजी से शहरी मेकओवर हो रहा था। आधुनिक शोरूम! भव्य फ्लैट्स! बाइकों और कारों की रेलपेल! प्रबन्धन और यूनियन की खींचतान की वजह से जूट मिल में कई दिनों से तालाबन्दी चल रही थी। चार हजार लोगों का रोजगार खतरे में पड़ गया था। सिनेमा हॉल के कर्मचारी भी लाल झंडा लिए धरना पर बैठे थे। कुछ आगे जहाँ रामपुकार, मुस्तफा और सरदार निहाल सिंह की गुमटियाँ थीं, उस जगह को एक सेठ ने खरीद लिया था और अब वहाँ सेठानी की स्मृति में एक शानदार मन्दिर बनने जा रहा था। उनकी बाड़ी भी चार तल्ले वाले बड़ा मॉल बनने की प्रक्रिया में थी। नीचे के हिस्से में 'फ़ूड बाजार' खुल गया था। राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय ब्रांडों के किराना और खाद्य सामान! एक काउंटर पर 'लिटिल बॉस' के पैकेट पड़े थे। तीनकोड़ीदा ने आगे बढ़ कर एक पैकेट खरीद लिया।

घर लौटे तो चिप्स के पैकेट को हाथ में लेकर देर तक घूरते रहे। एक टक! साँसें तेज हो गईं। नथुने फूलने पिचकने लगे। झटके से उठे,

दालान में आकर पैकेट जमीन पर रखा और लौढ़ी से पागलों की तरह प्रहार करने लगे। कपाल क्रिया! मिष्टी दरवाजे पर खड़ी सजल नेत्रों से देखती रही।

'मिष्टी रे, मैं अभी हारा नही हूँ।' फिर चौकी पर लौट आए। मिष्टी भी पास आकर बैठ गई—'न तन से, न ही मन से। इस तरह बेटे के रहम पर जीना मंजूर नहीं है।' मिष्टी के भीतर भी एक सिगड़ी सुलग रही थी। धीरे से हाथ कन्धे पर रख दिए।

'बेटे ने मेरी क्षमता को चुनौती दी है। कुर्ता-पजामा के बहाने हमारी भावनाओं का मजाक उड़ाया। मैं कुछ बड़ा करना चाहता हूँ... ऐसा कुछ कि खुद को व्यापक स्तर पर प्रमाणित कर सकूँ। एक जोखिम भरा प्रयोग! पर किये बिना चैन नहीं मिलेगा रे!'

'तो करो ना गो। आमी जे तोमार सोंगे आछी (मैं जो तुम्हारे साथ हूँ)।' मिष्टी उन्हें बाँहों में भरती फुसफुसाई।

फिर चिन्तन का दौर चला। जेहन में हुँआ हुँआ करते अन्धकार में किसी अजूबे स्फुलिंग की बेचैन तलाश! कछुए की तरह स्वयं में सिमट से गए तीनकोड़ीदा। दिन एक एक कर के बीतते रहे। सातवें दिन अन्ततः एक योजना की मुकम्मल रूपरेखा ने आकार ले ही लिया।

'आज की हमारी हालत कॉर्पोरेट कल्चर की मुनाफावादी प्रवृत्ति की देन है। हर तरह की तरल संवेदना को कुंद करके पैसे की हवस जगाने वाली प्रवृत्ति! लिटिल बॉस ने ऐसा ही सुनहरा जाल फेंका है शान्तनु पर।' एक क्षण का पॉज, फिर गम्भीर घोषणा—' मैंने पोटैटो चिप्स के बिज़नेस में ही प्रयोग करने का मन बना लिया है।'

'बड़े ब्रांडों के सामने हमारा चिप्स टिक भी सकेगा?' मिष्टी की आवाज सहमी हुई थी।

'यही तो मेरे प्रयोग और क्षमता की, मेरे कुर्ता-पजामा और अँग्रेजी कम जानने की, मेरे व्यवसायिक अनुभव की अग्नि परीक्षा होगी रे...' तीनकोड़ीदा बेबाक ठहाका लगा बैठे— 'हमारा चिप्स तेलेभाजा का ही विस्तार होगा।' आत्मविश्वास की अनोखी चमक भरी हुई थी लहजे में। मिष्टी मुग्ध दृष्टि से पति को निहार रही थी।

'इसे पागलपन समझो या सनक, ठान लिया है तो यह प्रयोग करके ही रहूँगा, चाहे आत्मघाती ही क्यों न हो जाए।'

उसके बाद शुरू हुआ योजना पर सुचिन्तित तरीके से अमल का सिलसिला। सप्ताह भर के चिन्तन के दौरान तीनकोड़ीदा ने मन ही मन इसकी रूपरेखा तैयार कर ली थी। पूँजी, श्रम और तकनीकी ज्ञान! तीन चीजें सबसे पहले। बैंक में थोड़े पैसे पड़े थे। मिष्टी की सोने की चूड़ी और चेन बेच दी गई। फिर भी दो लाख कम पड़ गए। संयोग से इस बाड़ी की रजिस्ट्री शान्तनु ने दया करके मिष्टी के नाम से करवा दी थी। थोड़ी हिचक हुई, फिर बाड़ी के कागजात लेकर तीनकोड़ीदा यूको बैंक जा पहुँचे और लोन की अर्जी दाखिल कर दी। लोन आसानी से मिलता क्या? पूरे एक महीने चक्कर काटने पड़े बैंक के। जेठ की लू ने चपेटे में ले लिया। हफ्ते भर तबियत खराब रही। बिस्तर से उठ न सके। पर आखिर लोन पास हो ही गया। पूँजी की समस्या हल होते ही आश्वस्ति की एक नन्हीं किरण आँखों में खिल गई।

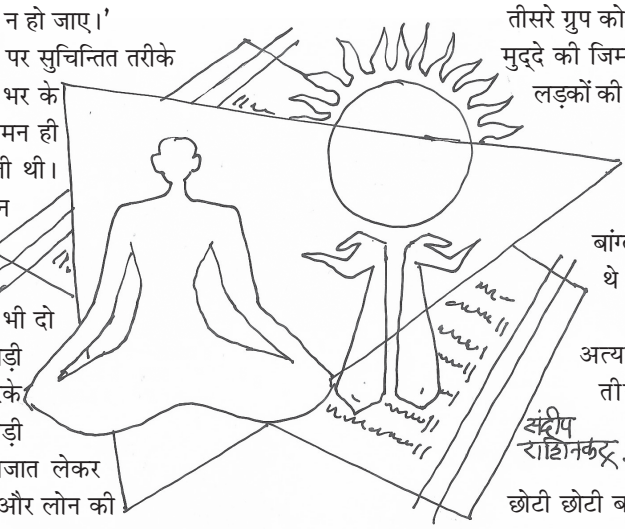

पाड़ा के हर घर में एक दो लड़के निश्चित ही बेकार बैठे थे। उनमें से मेहनती और तेज तर्रार युवकों की सूची बनी। सुब्रतो, अर्जुन, सलीम, बापी, चंदन, संजय आदि आदि। सुब्रतो बी टेक करके काफी दिनों से नौकरी की तलाश में भटक रहा था। चंदन एम.ए. पास, पर बेरोजगार! कुछ लड़के मैट्रिक में फेल होकर आवारागर्दी करते फिर रहे थे। इन सभी के पिता साधारण चटकल मजदूर या फुटकर श्रमिक थे। चुनिन्दा युवकों को एक शाम घर पर बुलाया और अपनी योजना के बारे में विस्तृत जानकारी दी—'सारी जोखिम मेरी। तुम लोगों को सिर्फ जुनून भरी मेहनत का योगदान करना है।' सभी चमत्कृत रह गए। बेकार ठाले बैठों को रोजगार का इससे अच्छा मौका कहाँ मिलता।

आम बागान के बगल में माझी पाड़ा था। संयोग से असरफ मियां की खाली बाड़ी किराए पर मिल गई। तीन कोठरियाँ, पीछे बड़ा सा दालान! दालान को टिन की छत से ढँक दिया गया । इस तरह पर्याप्त जगह निकल आई। दूसरे दिन लड़कों ने बाड़ी के गेट पर साइन बोर्ड टाँग दिया—'टी के प्रोडक्ट, दक्षिणेश्वर!'

सब कुछ कदम दर कदम आगे बढ़ रहा था। पूँजी और जगह की व्यवस्था हो जाने से दिल तसल्ली से भर गया। अब आगे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काम थे— निर्माण और मार्केटिंग! इसकी भी मुकम्मल योजना उन्होंने पहले ही तैयार कर ली थी। चार चार लड़कों के ग्रुप बने। एक ग्रुप को साथ लेकर कोलकाता की थोक मंडियों से परिचित कराया गया जहाँ से उन्हें सभी तरह के कच्चा माल जैसे आलू के सूखे चिप्स, तेल, मसाले, पॉली पाउच आदि लाने थे। एक हफ्ते की ट्रेनिंग के बाद लड़के इस काम मे पारंगत हो गए। दूसरे ग्रुप को कारखाने के भीतर की व्यवस्था सँभालनी थी। इसके अन्तर्गत ईंधन, बर्तन भाँडे, तैयार माल की पैकिंग आदि की व्यवस्था, निगरानी और उसके हिसाब किताब के कार्य आते थे।

तीसरे ग्रुप को विक्रय और वितरण जैसे सबसे अहम मुद्दे की जिम्मेदारी लेनी थी। इस ग्रुप में पाँच पाँच लड़कों की कई टीमें बनाई गईं। टीमों को दो विभागों में बाँटा गया। ट्रेन विभाग एवं बाजार विभाग! इन के लिए तीनकोड़ीदा ने ऐसे लड़कों को चिन्हित किया जो हिन्दी और बांग्ला धारा प्रवाह बोलने की कला में माहिर थे।

बेशक तेले-भाजा का व्यवसाय अत्यन्त मामूली किस्म का था, इससे तीनकोड़ीदा को उपभोक्ताओं की मानसिकता को भाँपने की कला आ गई। वे जानते थे कि मेंगनियों सी बिखरी छोटी छोटी बस्तियों के चारों ओर लक्ष्मण रेखा सी

घूमती लोकल ट्रेनें उनके उद्योग के लिए महत्त्वपूर्ण चलित बाजार साबित होंगी। ये चलित बाजार माल भी खरीदेगा, माल का खूब विज्ञापन भी करेगा! कोलकाता के इर्द गिर्द के बर्दवान, उत्तर व दक्षिण चौबीस परगना, हाबड़ा, बीरभूम आदि जिलों के बृहद उपभोक्ता वर्ग को इनके माध्यम से साधना है। चिप्स की खासियतों को रेखांकित करते पर्चे व हैंडबिल छपाये गए। कुछ उत्साही युवकों ने चुटीले 'छड़ा' (व्यंग्य क्षणिकाएँ) तैयार कर लिए। योजना के अनुसार 'छड़ा' को लय में गाते हुए यात्रियों के बीच चिप्स नमूने के तौर पर मुफ्त बाँटे जो थे। बाजार विभाग की टीम के लिए भी रणनीति तैयार थी। इस टीम को मेन मार्किट के ख्यात थोक व्यापारियों से सम्पर्क करने का जिम्मा दिया गया। थोक व्यापारियों के पास रिटेलरों की लम्बी श्रृंखला हुआ करती है।

माझी पाड़ा से सटा उत्तर में एक बड़ा पुकुर (तालाब) था। पुकुर का जल नहाने धोने के काम तो आता ही, जरूरत पड़ने पर वहाँ के निरीह लोग पीने के लिए भी व्यवहार कर लेते। पुकुर के सहारे सहारे निम्न वर्ग के मजदूरों के परिवार बसे हुए थे। बढ़ई, राजमिस्त्री, रिक्शा चालक, ठेले वाले और मुटिया मजूरों के परिवार! परिवारों के मर्द सुबह सुबह काम पर चले जाते। पीछे से घर की औरतें व सयानी होती लड़कियाँ निठल्ली बैठी रहतीं। तीनकोड़ीदा ने इन मजदूर औरतों को तैयार माल की पैकिंग के काम से जोड़ा। अतिरिक्त आय की उम्मीद से सभी के चेहरे खिल गए।

लगभग सारी प्रारम्भिक औपचारिकताएँ पूरी हो गईं। अभी तक कोई बड़ी अड़चन नहीं आई थी। अब 'उत्पादन' ...! आत्मविश्वास और आशंकाएँ एक दूसरे को अतिक्रमित करती दिल की धड़कनों को बढ़ा रही थीं। एक दिन शुभ मुहूर्त में माँ काली का नाम लेकर दो भट्ठियाँ सुलग गईं। कढ़ाहियों में तेल डाला गया और तेल में कच्चे चिप्स! तीनकोड़ीदा के चेहरे पर भरपूर इत्मीनान खिला हुआ था—'बचपन में माँ गुजर गई। खाना मैं ही बनाता। तेल, मसाले, आग और पानी के साथ खेलते हुए इन्हें खूब साध लिया है रे मिष्टी। देखना, क्या खूब करारे बनते हैं हमारे चिप्स!' टिक टिक...टिक टिक...! सभी साँस रोके मनोयोग से देख रहे थे। अन्ततः तैयार चिप्स की पहली खेप छन कर बाहर आई। ताम्बई वर्क में लिपटी फाँकें! उन पर मसाला छिड़कने के काम में उन्होंने सारा अनुभव उड़ेल दिया। पोदीना-पिपरमिंट के साथ चीनी और करी पत्ता के नए प्रयोग! सब कुछ इस तरह कि स्वाद चिप्स के पोर पोर में रच जाय और बाहर कुछ भी दृश्य न हो।

चार चिप्स माँ काली को समर्पित करके तीनकोड़ीदा ने मिष्टी से कहा—'अब चख कर बताओ कि हमारी इस पूरी कवायद का भविष्य क्या है?' मिष्टी ने दो फाँकें मुँह में डालीं। चुभलाते हुए आँखें मुँद गईं। दो मिनट की बेचैन प्रतीक्षा! फिर मिष्टी खुशी से उछल ही तो पड़ी—'उड़ी बाबा... मौजूदा ब्रांडों से हटकर एकदम लाजबाब स्वाद!' तीनकोड़ीदा के संग सभी लोगों ने चखा। सन्तुष्टि की पुखराजी आभा चेहरे पर छा गई। साधारण पॉली पाउच! माल अन्यों की तुलना में दुगुना! भीतर एक ओर मुद्रित पर्चा—'तीनकोड़ी का आलू चिप्स, टी के प्रोडक्ट, दक्षिणेश्वर'।

प्रोडक्शन शुरू होते ही तय रूपरेखा के अनुसार सभी लोग पूरी निष्ठा के संग अपने काम से लग गए। जुनून और चुनौती का मिश्रित सम्मोहन तारी था लड़कों पर। ट्रेन विभाग की टीम की अगुवाई स्वयं तीनकोड़ीदा ने सँभाली। चार टीमों को चार विभिन्न रूटों में लगाया गया। खुद नैहाटी और डानकुनी की ट्रेनों को साधने लगे। छड़ा गाते, लिफलेट बाँटते हुए लड़कों की पसीने से नम देह की धज देखते ही बनती थी। मुफ्त बाँटी जा रही चिप्स को यात्रीगण हिचकिचाते हुए अनमने से ग्रहण करते, पर मुँह में डालते ही खुशी से उछल पड़ते। बाजार विभाग की टीमें भी ख्यात थोक व्यापारियों से सम्पर्क गढ़ने में जुट गईं। 'न बिकने पर वापस' की शर्त पर माल उनके यहाँ रखा गया। न बिकने का सवाल ही नहीं था। फुटकर दुकानों को ग्राहक मिलने लगे तो थोक व्यापारियों में आश्वस्ति भरती चली गई। अभियान शुरू होने के चौथे दिन ही तीनकोड़ीदा बीमार पड़ गए। अत्यधिक परिश्रम से तेज ज्वर और थकान! ज्वर की हालत में भी जब वे ट्रेन की ड्यूटी पर निकलने को तैयार हुए तो लड़कों ने मनुहार करके रोक दिया—'न न काकू, आप आराम करें। सारा काम हिदायत के अनुसार चालू रहेगा। कोई गफलत नहीं होगी।' सुब्रतो ने दवा, फल और डाभ आदि लेकर कुछ साथियों को उनकी देखभाल के लिए घर पर छोड़ दिया। लड़कों का स्नेह देखकर दोनों पति पत्नी के नयन छलक आए।

धुआँधार मेहनत, निष्ठा और लगन रंग दिखाने लगी और धीरे धीरे टी. के. ब्रांड उपभोक्ताओं के बीच पाँव जमाने लगा। पहले माह सवा लाख का टर्नओवर मिला, जो दूसरे माह ही उछाल भरते हुए दस लाख के आँकड़े को छू गया। कोलकाता के हिंटरलैंड कहे जाने वाले पाँच बड़े जिलों के विस्तृत बाजार में यह ब्रांड बेहद लोकप्रिय हो गया और 'लिटिल बॉस' सहित अन्य ब्रांड हाशिये पर खिसक गए। टी.के. का विलक्षण स्वाद और पैकेट में माल के दुगने परिमाण का जादू जनता के सर पर चढ़कर नाचने लगा। छः माह बीतते न बीतते टी.के. प्रोडक्ट एक नामी औद्योगिक प्रतिष्ठान के रूप में मशहूर हो गया। एक रात मिष्टी को बाँहों में भरते हुए तीनकोड़ीदा खुशी के अतिरेक में फफक पड़े—'मिष्टी रे...आखिर मैंने खुद को साबित कर ही दिया न। देख लो, कुर्ता-पायजामा धारण करने वाले और अँग्रेजी कम जानने वाले इस मानुष ने अपना उद्योग तो खड़ा किया ही, पचासों अन्य लोगों को रोजगार भी दे रहा...।' मिष्टी की आँखें भी भर आईं। होंठ भावावेश में गुनगुना उठे—*'तुमी केमोन कोरे जे गान कोरे है गुनी...आमी अवाक होए केवोल सुनी आर सुनी...।'*

'अब कल बैंक का बकाया चुका कर बाड़ी के कागजात ले आना होगा। पता नहीं कब शान्तनु का फोन आ जाय कि बाड़ी बेचनी है।'

सप्ताह भर बाद ही सचमुच शान्तनु का फोन आ गया। समय न मिल पाने का विरहा गाने के बाद अटकते अटकते मिमियाया—'बाबा, पैसों की दरकार है। इस बाड़ी को भी बेचना है। आप लोगों के लिए मैंने बढ़िया ओल्ड एज होम में इन्तजाम कर दिया है...।'

'हाहाहा...' तीनकोड़ीदा जोरों से अट्टहास करते खिलखिलाए—'बाड़ी खाली है बेटे। जब चाहो चाभी और कागजात ले लो। तेरी सूचना के लिए बता दूँ कि हमने भी यहाँ एक 'होम' खोल लिया है रे जिसमें युवा-अधेड़ मिलाकर लगभग पचास जन आराम से गुजर बसर कर रहे हैं।'

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

तुम्हें कुत्तों का भौंकना भी सुनाई नहीं देता ?

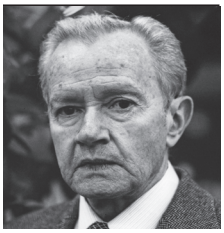

जुआन रुल्फो

लैटिन अमेरिका के प्रतिष्ठित और सर्वमान्य लेखकों में शुमार किये जाने वाले जुआन रुल्फो 1917 में मेक्सिको में एक जमींदार परिवार में जन्मे पर उनके माँ पिता बचपन में ही गुजर गए। दादा दादी ने उनकी परवरिश की। अनाथालय और चर्च के खैराती स्कूल में पढ़े, कभी सेना में भरती हुए तो कभी वकालत में दाखिला लिया।

रुल्फो की सिर्फ दो किताबें प्रकाशित हैं—एक उपन्यास और दूसरा एक कहानी संकलन। अंग्रेजी में उनका कहानी संकलन 'द बर्निंग प्लेन एंड अदर स्टोरीज' शीर्षक से प्रकाशित। मेक्सिको और स्पेन की सरकारों ने उन्हें साहित्य के सर्वोच्च सम्मान प्रदान किये।

"अरे इग्नेसियो, तुम जगे हुए हो न? बताओ क्या तुम्हें कहीं से कोई आवाज़ सुनाई दे रही है?...या कोई रोशनी दिखाई दे रही है?''

''नहीं, कहीं कुछ नहीं दिखाई दे रहा।''

''पर लगता है जैसे हम शहर के कहीं आस पास ही हैं।''

''लग तो मुझे भी ऐसा ही रहा है... पर सुनाई तो कुछ नहीं दे रहा।''

''अपने आस पास ढंग से आँखें खोलकर देखो।''

''मुझे कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है।''

बेचारा इग्नेसियो।

इंसानों की लम्बी काली परछाईं ऊपर नीचे हरकत करती हुई दिखाई दे रही थी... नदी के किनारे चट्टानों पर फिसलती हुई—कभी विशाल आकार धारण कर लेती तो कभी सिमट जाती।

यह अकेली परछाईं थी— हवा में लहराती हुई।

चन्द्रमा धरती के सिर के ऊपर मचलता हुआ प्रकट हुआ और रोशनी का छिड़काव करने लगा।

''हमें जल्द से जल्द उस शहर तक पहुँचना है इग्नेसियो। तुम्हारे कान खुले हुए हैं न?... आस पास निगाह दौड़ाओ और सुनो कि कुत्तों का भौंकना सुनाई पड़ रहा है? उसी से हमें पता चलेगा कि तोनाया शहर पास आ गया है। हमें अपने गाँव से चले हुए तो कई घंटे हो चुके हैं।''

''आपकी बात दुरुस्त है... पर मुझे तो कहीं कुछ दिखाई नहीं दे रहा।''

''मैं तो अब बुरी तरह थक चुका हूँ।''

''आप ऐसा करो...मुझे सिर से नीचे उतार दो।''

बूढ़ा आदमी पीछे चलते हुए एक दीवार तक पहुँचा और उससे टिककर सिर की टोकरी को ऊपर ऊपर ही इस ढंग से सन्तुलित करने लगा जिससे उसको धरती पर नीचे न उतारना पड़े। उसकी टाँगें थकान से काँप रही थीं पर नीचे बैठने का उसका कोई इरादा नहीं था क्योंकि एक बार बैठ जाने पर बेटे का उतना बोझ लेकर दुबारा उठा पाना उसके अकेले के बस का नहीं था। घंटों पहले जब वह बेटे को गाँव से लेकर चला था तब भी कई लोगों ने बेटे को टोकरी में लादकर उसके सिर तक उठाने में मदद की थी। इतनी देर से वह उसको अपने सिर पर लादे वैसे ही चलता आ रहा है।

''अब तुम्हारी तबीयत कैसी लग रही है बेटे ?''

''बहुत खराब।''

वे आपस में बहुत कम बातचीत कर रहे थे... बोलते भी तो एक दो शब्द— चलते हुए ज्यादातर समय वह सोता ही रहा—बीच बीच में उसका बदन बिल्कुल बरफ जैसा ठंडा पड़ जाता— तब वह बुरी तरह काँपने लगता। इस तरह की कँपकँपी को वह तुरत भाँप जाता क्योंकि उसके सिर पर लदा हुआ टोकरा हिलने डगमगाने लगता— उसको गिरने से बचाने के लिए बूढ़े को अपने पंजे धरती पर गहराई से अन्दर घुसाने पड़ते। दौरा पड़ते ही उसका बेटा अपनी बाँहें उसकी गर्दन के चारों ओर कसकर लपेट लेता— कई बार तो वह झटके के कारण गिरते गिरते बचा।

उसने अपने दाँत किटकिटाये पर इस हिफाजत के साथ कि जीभ कटने से बची रहे...

बेटे से उसने पूछा :

''क्या तकलीफ बहुत हो रही है?''

''हो तो रही है'' ...बेटे ने संक्षिप्त सा जवाब दिया।

पहले उसने कहा था कि ''मुझे आप सिर से नीचे उतार दीजिये...आप पैदल शहर की ओर बढ़िये, मैं धीरे धीरे आपके पीछे पीछे चलकर कल तक अपने आप आपके पास पहुँच जाऊँगा...हो सकता है और ज्यादा समय लगे, पर आ ही जाऊँगा धीरे धीरे'' ...उसने यह बात रास्ते में

आकाश बिल्कुल साफ़ था और चन्द्रमा पूरे निखार पर था ...उसका रंग धीरे धीरे नीला पड़ता जा रहा था। बूढ़े का चेहरा पसीने से लथपथ हो चुका था और चाँदनी उस गीलेपन पर जैसे चिपक सी गई हो। सिर पर बोझ होने और बेटे की बाँहें गर्दन से लिपटी होने की वजह से वह सिर्फ नाक की सीध में सामने देख सकता था सो सिर के ऊपर दमक रहा चन्द्रमा उसकी निगाहों से बाहर था।

कम से कम पचास बार दुहराई होगी...पर अब उसकी हिम्मत टूट रही थी।

सिर के ऊपर चाँद चमक रहा था...और इस अँधेरे समय में वो चाँद उनकी आँखें ज्यादा आलोकित कर रहा था... उनकी लम्बी होती जाती छाया धरती पर पड़ती और उसकी रोशनी को बीच बीच से खंडित कर रही थी।

''मुझे पता नहीं चल रहा है हम जा कहाँ रहे हैं'' ... उसने कहा।

इसके बाद चुप्पी छाई रही, बूढ़े ने कोई जवाब नहीं दिया।

वह चाँदनी में नहाया हुआ उकड़ूँ होकर बैठा था पर चेहरा रक्तविहीन और हल्दी जैसा पीला

—उसके शरीर से प्रतिबिम्बित होकर आ रहा प्रकाश भी मरियल।

''मैंने जो बोला तुमने सुना इग्नेसियो ? मुझे लग रहा है कि तुम्हारी तबियत ज्यादा ही ख़राब है''...

दूसरी तरफ से कोई आवाज नहीं आई।

बूढ़ा जैसे तैसे भी हिम्मत बाँधे आगे बढ़ता रहा... उसने कन्धों को थोड़ा झुकाने और फिर शरीर को सीधा करने का यत्न किया।

''यहाँ तो कोई सड़क भी नहीं दिखाई दे रही है...लोगों ने कहा था कि इस पहाड़ी को पार करते ही तोनाया शहर आ जाएगा...हमने पहाड़ी पार कर ली पर दूर दूर तक शहर का कहीं कोई नामोनिशान नहीं ...कहीं से कोई शोर शराबा भी नहीं उठ रहा जिससे पता लगे कि हम आबादी के आस पास हैं...तुम्हें तो ऊपर से सब दिखाई दे रहा होगा...बताओ कहीं कुछ हलचल दिखाई दे रही है ?''

''मुझे सिर से नीचे उतार दो...पापा।''

''तुम्हारी तबियत ज्यादा ख़राब लग रही है ?''

''हाँ सो तो है'' ....

''देखो, चाहे जो हो जाए मैं तुम्हें तोनाया पहुँचाकर ही दम लूँगा ...वहाँ तुम्हारी देखभाल करने वाला कोई तो मिलेगा...लोगों ने बताया था कि डॉक्टर है वहाँ, उसके पास तुम्हें दिखाने ले चलूँगा...जब इतनी दूर से तुम्हें अपने सिर पर ढोकर लाया हूँ तो यहाँ ऐसे खुले आसमान के नीचे छोड़कर चला कैसे जाऊँ...मैं तुम्हें मरने कैसे दे सकता हूँ ?''

बूढ़े की लड़खड़ाहट बढ़ गई थी...उसके कदम डगमगाए पर जल्दी ही वह सँभल गया।

''मैं जब तक तुम्हें तोनाया पहुँचा नहीं देता दम नहीं लूँगा।''

''मुझे नीचे उतार दो''....

बेटे की आवाज़ मुलायम होती गई, लगा जैसे फुसफुसा रहा हो ....

''मुझे थोड़ा आराम करने दो पापा '' ....

''वहीं बैठे बैठे सो जाओ बेटे ...मैंने तुम्हें कसके पकड़ा हुआ है।''

आकाश बिल्कुल साफ़ था और चन्द्रमा पूरे निखार पर था ...उसका रंग धीरे धीरे नीला पड़ता जा रहा था। बूढ़े का चेहरा पसीने से लथपथ हो चुका था और चाँदनी उस गीलेपन पर जैसे चिपक सी गई हो। सिर पर बोझ होने और बेटे की बाँहें गर्दन से लिपटी होने की वजह से वह सिर्फ नाक की सीध में सामने देख सकता था सो सिर के ऊपर दमक रहा चन्द्रमा उसकी निगाहों से बाहर था।

''मैं तुम्हारे लिए जो कुछ भी कर रहा हूँ तुम्हारे वास्ते नहीं कर रहा हूँ ...तुम्हारी गुज़र चुकी माँ की खातिर कर रहा हूँ...तुम आखिर उसी के बेटे हो...यदि मैंने तुम्हें ऐसे ही छोड़ दिया तो वह मुझे कभी माफ़ नहीं करेगी...उसकी ख़ुशी के लिए मुझे ये सब कुछ करना है...जब मैंने उस बुरी और दयनीय हालत में बीच सड़क पर तुम्हें पड़े हुए देखा तो मुझे एकदम से एहसास हुआ कि तुम्हारा इलाज करवाकर चंगा कर देना मेरा दायित्व बनता है...इतनी दूर से तुम्हारा वजन उठाकर मैं ले आया इसके लिए शक्ति भी उसी ने मुझे दी, तुमने नहीं ...वजह सीधी सी है कि जीवन भर तुमने मुझे कष्ट और जलालत के सिवा क्या दिया...भरपूर सन्ताप...और जितना हो सकता था उतना अपमान...'' इतना बोलते बोलते वह पसीने से तरबतर हो गया पर धीरे धीरे बहती हुई हवा ने पसीना सुखा दिया... पर हवा के मद्धम पड़ते ही पसीना फिर से आने लगा।

''मेरी कमर चाहे टूट जाए पर मैं तुम्हें तोनाया तक पहुँचाकर ही दम लूँगा— तुम्हारे बदन पर जो जख्म हैं उनको ठीक कराकर ही मुझे चैन मिलेगा... हालाँकि मुझे पक्के तौर पर मालूम है कि ठीक होते ही तुम अपनी पुरानी शैतानी राह पर लौट जाओगे...पर मेरे लिए तुम्हारे इस बर्ताव के ज्यादा मायने नहीं क्योंकि तुम मेरी निगाहों से दूर रहोगे, बस मुझे तुम्हारी खुराफातों और कारस्तानियों का पता न चले... ईश्वर करे ऐसा ही हो...मैं मानता हूँ कि तुम्हारा मेरा बाप बेटे का कोई रिश्ता है ही नहीं...मुझे अपने लहू के उस कतरे पर शर्म आती है जो तुम्हारे बदन की बनावट में शामिल है... यदि मेरा वश चले तो मैं तुम्हारे गुर्दे के अन्दर बह रहे अपने लहू को शाप दे दूँ कि उसमें कीड़े पड़ जाएँ। जिस दिन मुझे पता चला कि तुम राह चलते लोगों को लूटते हो, डाका डालते हो और क़त्ल करते हो...वो भी निर्दोष राहगीरों का क़त्ल...उस दिन से मेरे मन में तुम्हारे लिए ऐसी नफ़रत पैदा हो गई...मेरी बात पर यकीन न आ रहा हो तो मेरे दोस्त ट्रैन्किलिनो से दरियाफ़्त कर सकते हो...उसी ने तुम्हारा बप्तिस्मा किया था...तुम्हारा नाम भी उसी का रखा हुआ है...अफ़सोस की बात कि तुम्हारे ही कारण उसको बहुत सारी जलालत भी भुगतनी पड़ी। जब तुम्हारी कारस्तानियों के बारे में यह सब मुझे पता चला तो मैंने फ़ौरन निश्चय किया कि अब से तुम्हें मैं अपना बेटा नहीं मानूँगा...अब देखो, कहीं कुछ दिखाई पड़ रहा है ? ...या फिर कोई आवाज सुनाई पड़ रही है ?...जो भी देख सुन पाओगे तुम्हीं कर पाओगे, मैं तो ऐसे ही बहरा बना हुआ मानुष हूँ।''

''मुझे कहीं कुछ नहीं दिखाई दे रहा है।''

''तुम्हारी किस्मत ही फूटी हुई है ...मैं क्या कर सकता हूँ।''

''मुझे बहुत तेज प्यास लगी है।''

''जरा ठहरो...लगता है हम शहर के करीब तक पहुँच गए हैं...हमारी बदकिस्मती है कि हमें यहाँ तक आते आते रात हो गई...लोगों ने अपने अपने घरों की रोशनी बुझा दी है...पर रोशनी न भी दिखाई दे तो कुत्तों का भौंकना तो सुनाई पड़ ही जाएगा...कान लगाकर सुनो, कहीं से कुछ आहट आ रही है?''

''प्यास से मैं मरा जा रहा हूँ...कहीं से भी मुझे पानी लाकर दो।''

''मेरे पास पानी है कहाँ...आसपास दिखाई भी नहीं पड़ रहा है...चारों और पत्थर ही पत्थर...पर एक बात कान खोलकर सुन लो...यदि मुझे पानी दिखाई दे भी जाता है तो मैं पानी पीने के लिए तुम्हें नीचे उतारने वाला नहीं...दूर दूर तक जहाँ कोई परिन्दा न दिखाई दे वहाँ तुम्हें दुबारा मेरे सिर के ऊपर चढ़ाने में कौन मदद करने आएगा भला...मेरे बस का अकेले तुम्हें जमीन से उठाकर सिर पर रख लेना नहीं है।''

''लगता है तुरन्त पानी नहीं मिला तो मेरी जान ही निकल जाएगी...चलते चलते मैं थक भी बहुत गया हूँ।''

''तुम्हारी बातें सुन के मुझे तुम्हारे जन्म का समय याद आ रहा है ...जन्म लेते ही तुम्हें जोर की प्यास लगी थी और भूख भी...खा-पीकर तुम गहरी नींद सो गए थे...तुम्हारी माँ की छाती में जितना दूध था तुम इसकी एक एक बूँद चूस गए फिर भी तुम्हारी राक्षसी भूख प्यास ख़त्म नहीं हुई...फिर माँ ने तुम्हें पानी पिलाया पर तुम इससे भी सन्तुष्ट नहीं हुए... बचपन में तुम बेहद शरारती और उद्दंड थे, पर बचपन की शरारत देख के मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि बाद में तुम्हारे कारण हमें ऐसे दुर्दिन देखने पड़ेंगे...मैंने जो सोचा भी नहीं था आखिर हुआ वही। तुम्हारी माँ हमेशा यही दुआ करती रही कि तुम खूब बलवान हट्टे कट्टे बाँके जवान बनो...जीवन भर उसकी यही आस लगी रही कि बड़े होकर तुम उसकी परवरिश करोगे...दरअसल तुम्हारे सिवा उसके पास और था भी कौन? दूसरा बेटा तो सिर्फ उसकी जान लेने आया था—इधर उसने जन्म लिया उधर तुम्हारी माँ चल बसी...धरती पर पाँव रखते ही उसने माँ की जान ले ली...गनीमत है तुम्हारी यह दुर्गति देखने को वो जीवित नहीं रही वरना उसको तो दुबारा शर्म से मरना पड़ता...बेचारी दुखियारी।''

अचानक बूढ़े को एहसास हुआ कि उसके सिर के ऊपर रखी टोकरी में बैठा हुआ इंसान हिल-डुल नहीं रहा है, अपने गठरी जैसे शरीर को कभी इधर तो कभी उधर खिसकाकर सन्तुलन बनाने की कोशिश भी नहीं कर रहा है...और उसके सिर से पसीना ऐसे चू रहा है जैसे कातर रुलाई से मोटे मोटे आँसू गिर रहे हों।

''इग्नेसियो...इग्नेसियो...तुम रो रहे हो?...माँ की इतनी याद आ रही है?...पर अपने दिल पर हाथ रख के पूछो तुमने अपनी पूरी ज़िन्दगी में कभी उसके लिए कुछ किया?...हमें तो तुमने सिर्फ दु:ख, शर्म और अपमान ही दिए... अब देखो जिनके साथ मिलकर तुमने यह सब किया उन्होंने बदले में तुम्हें क्या दिया...सिर्फ घाव न? दिन रात तुम्हारे लिए कसमें खाने वाले दोस्तों का भी क्या हश्र हुआ...वे सब के सब भी आपसी लड़ाई झगड़ों में मारे गए...पर उनके लिए रोने वाला कोई नहीं था...वे कहा भी करते थे कि हमारे पीछे स्यापा करने वाला कोई नहीं है ...पर तुम्हारे अपने लोग तो थे इग्नेसियो—तुमने अपने लोगों को अपने कुकर्मों से सन्ताप के सिवा क्या दिया?''

शहर आ गया था...घरों की छत पर चाँदनी बिखरी हुई थी...पर जब आखिरी बार उसने अपनी कमर सीधी करने की कोशिश की तो बूढ़े को ऐसा लगा कि वो अपने बेटे के बोझ तले दबकर वहीं मर जाएगा। शहर में घुसते ही जो पहला मकान मिला बूढ़ा उसके पास थोड़ा ठहरकर सुस्ताने को हुआ...उसने सिर की टोकरी नीचे उतारने की कोशिश की तो उसको एकदम से महसूस हुआ जैसे शरीर का कोई अंग अचानक कटकर दूर जा गिरा हो।

शहर आ गया था...घरों की छत पर चाँदनी बिखरी हुई थी...पर जब आखिरी बार उसने अपनी कमर सीधी करने की कोशिश की तो बूढ़े को ऐसा लगा कि वो अपने बेटे के बोझ तले दबकर वहीं मर जाएगा। शहर में घुसते ही जो पहला मकान मिला बूढ़ा उसके पास थोड़ा ठहरकर सुस्ताने को हुआ...उसने सिर की टोकरी नीचे उतारने की कोशिश की तो उसको एकदम से महसूस हुआ जैसे शरीर का कोई अंग अचानक कटकर दूर जा गिरा हो।

अपनी गर्दन पर कसकर लिपटी हुई हथेलियाँ उसने बड़ी मुश्किल से ढीली कीं...कान के ऊपर से बेटे की हथेली हटते ही उसको अपने चारों और कुत्तों का भौंकना सुनाई पड़ना शुरू हो गया।

''ताज्जुब है, इतने सारे कुत्ते चारों ओर भौंक रहे हैं पर तुम्हें इनका भौंकना सुनाई नहीं पड़ा इग्नेसियो...समय रहते शहर तक पहुँच जाने और डॉक्टर को दिखा देने के भरोसे को जिन्दा रखने में भी तुमने मेरी मदद नहीं की...मरते हुए भी तुम अपनी हरकतों से बाज नहीं ही आए...जीते जी तो तुमने मेरे साथ दगा किया ही, मरते हुए भी मुझे नहीं बख्शा...

अनु.: यादवेन्द्र,
मो.: 09411100294

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

ट्रैमोंटाना

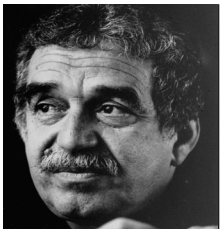

गैब्रिएल गार्सिया मार्खेज़

नोबेल पुरस्कृत विश्वविख्यात साहित्यकार। 1950 में रोम और पेरिस में स्पेक्टेटर के संवाददाता रहे। 1959 से 1961 तक क्यूबा की संवाद एजेंसी के लिए हवाना और न्यूयार्क में काम किया। उनका प्रथम कहानी-संग्रह 'लीफ स्टार्म एंड अदर स्टोरीज' 1955 में प्रकाशित। नो वन नाइट, टु द कर्नल एंड अदर स्टोरीज और आइज़ ऑफ ए डॉग श्रेष्ठ कहानी संग्रह हैं। उपन्यास 'वन हंड्रेड इयर्स ऑफ सॉलीच्यूड' को 1982 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

उसकी दुखद मृत्यु से पहले मैंने उसे केवल एक बार बोकैसियो में देखा। वह बार्सीलोना का मशहूर क्लब था। सुबह के दो बज रहे थे और युवा स्वीडनवासियों का एक दल उसके पीछे पड़ा था। वे उसे कैडेक्वेस में हो रही पार्टी को समाप्त करने के लिए अपने साथ ले जाना चाहते थे। वे कुल ग्यारह स्वीडनवासी थे और उन्हें अलग-अलग पहचानना मुश्किल था क्योंकि वे सभी औरतें और मर्द एक जैसे दिखते थे। वे सभी ख़ूबसूरत थे, उनकी कमर पतली थी और बाल सुनहले और लम्बे थे। उसकी उम्र बीस वर्ष से अधिक नहीं होगी। उसके सिर पर नीले-काले घुँघराले बाल थे, और उसकी त्वचा उन कैरेबियाई लोगों की तरह चिकनी और पीली थी जिनकी माँ ने उन्हें पेड़ों की छाया तले चलना सिखाया था। उसकी आँखें अरब लोगों जैसी थीं और यह बात स्वीडन की लड़कियों और कुछ लड़कों को भी उसका दीवाना बना देने के लिए पर्याप्त थी। उन्होंने उसे शराबख़ाने की मेज़ पर बैठा रखा था, जैसे वह तरह-तरह की आवाज़ें निकाल सकने वाले किसी पेटबोले की कठपुतली हो। वे उसे तालियाँ बजा-बजाकर प्रेम-गीत सुना रहे थे और साथ ही उसे अपने साथ चलने के लिए मना रहे थे। भयभीत होकर वह उन्हें साथ नहीं चल सकने की अपनी वजहें बताने का प्रयास कर रहा था। किसी ने हस्तक्षेप किया और चिल्लाया कि उन्हें उसे अकेला छोड़ देना चाहिए। इस पर हँसते रहने से कमजोर पड़ गए एक स्वीडनवासी ने उसका सामना किया।

''वह हमारा है।'' स्वीडनवासी चिल्लाया, ''वह हमें कचरे के डब्बे में मिला था!''

मैं पलाऊ दे ला म्यूज़िका के संगीत समारोह में डेविड ओएस्त्रैख़ की अन्तिम संगीत-रचना को सुनने के बाद, कुछ ही समय पहले वहाँ पहुँचा था। मेरे साथ मित्रों की एक टोली भी थी। मुझे स्वीडनवासियों का अविश्वास बेहद अरुचिकर लगा। ऐसा इसलिए था क्योंकि उनके साथ न जाने की लड़के की वजहें बेहद पावन थीं। वह कैडेक्वेस में रहता था जहाँ वह एक फैशनप्रिय शराबख़ाने में ऐंटिलियाई गीत गाने का काम करता था। पिछली गर्मियों तक सब कुछ सही रहा, लेकिन उसके बाद वह ट्रैमोंटाना का शिकार बन गया। दूसरे दिन वह किसी तरह बचकर भाग सका और उसने क़सम खायी कि चाहे वहाँ ट्रैमोंटाना हो या न हो, वह वहाँ फिर कभी नहीं लौटेगा। उसे यह तय लगा कि यदि वह वहाँ वापस गया तो मृत्यु वहाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। यह एक कैरेबियाई निश्चितता थी। गर्मी से पीड़ित तथा उस समय की कैटालोनियाई शराब के नशे में धुत्त उन तर्कणावादी स्कैंडेनेवियाई लोगों का वह समूह इसे नहीं समझ सकता था क्योंकि वह शराब उन सब के दिलों में जंगली इरादों के बीज बो रही थी।

मैं उसे बाक़ी लोगों से बेहतर जानता था। कैडेक्वेस कोस्टा ब्रेवा इलाक़े का सबसे ख़ूबसूरत और सबसे अधिक संरक्षित शहर था। आंशिक रूप से यह इस तथ्य की वजह से था कि वहाँ आने वाला सँकरा राजमार्ग एक अगाध गर्त के किनारे बल खाता हुआ मुड़ता था और वहाँ पचास किलोमीटर प्रति घंटा से अधिक की गति से गाड़ी चलाने के लिए चालक को बेहद सुस्थिर होने की जरूरत थी। पुराने मकान ऊँचे नहीं थे और भूमध्यसागर के मछुआरों के गाँवों की पारम्परिक शैली में सफ़ेद रंग में रँगे हुए थे। नए मकानों को प्रसिद्ध वास्तुकारों ने बनाया था जो मूल सामंजस्य का सम्मान करते थे।

ग्रीष्म ऋतु में, जब गर्मी सड़क के उस पार स्थित अफ्रीका के रेगिस्तानों की ओर से आती हुई प्रतीत होती थी, कैडेक्वेस एक नारकीय कोलाहल में परिवर्तित हो जाता था। ऐसा इसलिए होता था क्योंकि तीन महीनों तक यूरोप के सभी कोनों से आने वाले पर्यटक स्थानीय लोगों के साथ धक्कम-पेल करते हुए नज़र आते थे। और तो और, उस जन्नत के नियन्त्रण के लिए कई क़िस्मत वाले विदेशी वहाँ कम क़ीमत पर बढ़िया मकान ख़रीदने में सफल हो जाते थे। लेकिन वसन्त और पतझड़ के दौरान, जब कैडेक्वेस सर्वाधिक आकर्षक नज़र आता था, कोई भी ट्रैमोंटाना की

डरावनी सोच से बचकर नहीं भाग सकता था। ट्रैमोंटाना उन दिनों ज़मीन पर बहने वाली एक रूखी और तीक्ष्ण हवा थी जो अपने साथ पागलपन के बीज लिए चलती थी। इसका शिकार हुए स्थानीय लोगों और इससे सबक़ सीख चुके कुछ लेखकों का तो यही मानना था।

जब पन्द्रह वर्ष पहले ट्रैमोंटाना से हमारा सामना हुआ, उससे पहले तक मैं उस शहर का सबसे निष्ठावान पर्यटक था। एक रविवार दोपहर के भोजन के बाद आराम करने के समय मुझे उस हवा के आने का पूर्वाभास हो गया। यानी क्या होने वाला था, मुझे इसका पूर्वबोध हो गया था, किन्तु इसे समझाया नहीं जा सकता था। मेरी हिम्मत जवाब दे गई। मैं अकारण ही उदास महसूस करने लगा, और मुझे ऐसा लगा जैसे दस वर्ष से कम आयु के मेरे दोनों बच्चे पूरे मकान में मेरे पीछे-पीछे चलते हुए विद्वेषी निगाहों से मुझे घूर रहे हों। कुछ ही देर बाद दरबान औज़ारों के बक्से और तार के साथ वहाँ आया ताकि वह खिड़कियों और दरवाज़ों की सुरक्षा सुनिश्चित कर सके। वह मुझे खिन्न देखकर हैरान नहीं हुआ।

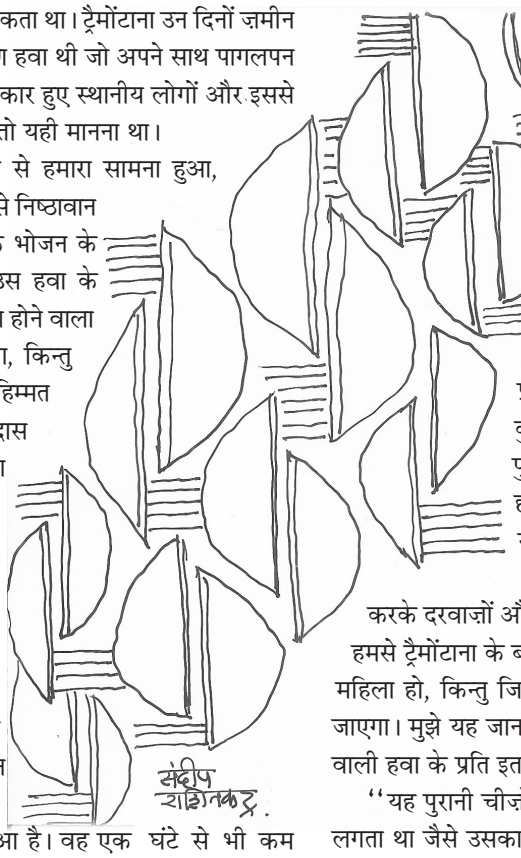

''यह ट्रैमोंटाना की वजह से हुआ है। वह एक घंटे से भी कम समय में यहाँ पहुँच जाएगी।'' उसने कहा।

वह एक बहुत ही बूढ़ा आदमी था, एक भूतपूर्व नाविक जिसके पास समुद्री यात्राओं के समय की बरसाती, टोपी और चिलम मौजूद थी। पूरे विश्व में समुद्री यात्राओं के दौरान लगातार खारे पानी के सम्पर्क में आने की वजह से उसकी त्वचा झुलस गई थी। अपने ख़ाली समय में वह कई युद्धों में हार का सामना करने वाले अनुभवी पूर्व-सैनिकों के साथ चौराहे पर गेंद से बोतलों को गिराने का खेल खेलता था। वह समुद्र-तट के पास मौजूद शराबखानों में पर्यटकों के साथ शराब भी पिया करता था। कैटालोनिया के तोपख़ाने में काम करने के अपने अनुभव की बदौलत वह विदेशी पर्यटकों से अनजान भाषा की बाधा के बिना बातचीत कर लेता था। उसे पूरी धरती के सभी बन्दरगाहों को जानने की अपनी क्षमता पर गर्व था किन्तु वह किसी भी अन्दरूनी शहर को नहीं जानता था। ''फ्रांस में स्थित पेरिस को भी मैं नहीं जानता हूँ, हालाँकि वह एक बेहद प्रसिद्ध शहर है।'' वह कहा करता। जो वाहन पानी में नहीं तैरते थे, उन पर उसे बिल्कुल भरोसा नहीं था।

पिछले कुछ वर्षों में उसकी उम्र बहुत तेज़ी से ढली थी, और वह दोबारा सड़क पर नहीं गया था। वह अपना अधिकांश समय दरबान के लिए नियत कमरे में बिताता था। उसकी मनोवृत्ति में एकाकीपन था और उसने अपना पूरा जीवन इसी तरह बिताया था। वह चूल्हे पर एक कड़ाही में अपना खाना स्वयं बनाता था, लेकिन हमें अपने सुविख्यात लज़ीज़ भोजन से प्रसन्न कर देने के लिए उसे बस यही चाहिए था। सुबह तड़के ही वह हर मंज़िल पर मौजूद किरायेदारों की देखभाल करने के लिए निकल पड़ता और वह मेल-मिलाप कराने और सहायता करने वाले उन सबसे बढ़िया लोगों में से एक था जिनसे मैं आज तक मिला था। उसके व्यक्तित्व में कैटालोनियाई लोगों की तरह अनजाने में की गई उदारता और रूखी कोमलता का बढ़िया समावेश था। वह बहुत कम बोलता था, लेकिन उसकी शैली स्पष्ट और प्रासंगिक थी। जब उसके पास करने के लिए और कुछ नहीं होता तो वह घंटों वे प्रपत्र भरता रहता जो फुटबॉल के खेल के नतीजों की भविष्यवाणी करते, हालाँकि वह उन प्रपत्रों को कभी-कभार ही डाक से कहीं भेजता।

उस दिन जब वह विपत्तियों का पूर्वानुमान करके दरवाज़ों और खिड़कियों को सुरक्षित बना रहा था, तब उसने हमसे ट्रैमोंटाना के बारे में इस तरह से बात की गोया वह कोई घृणित महिला हो, किन्तु जिसके बिना उसका अपना जीवन भी निरर्थक हो जाएगा। मुझे यह जानकर हैरानी हुई कि एक नाविक ज़मीन पर बहने वाली हवा के प्रति इतना सम्मान रखता है।

''यह पुरानी चीज़ों में से एक है।'' उसने कहा। उसे देखकर ऐसा लगता था जैसे उसका वर्ष दिनों और महीनों के बीतने पर निर्भर नहीं करता था बल्कि ट्रैमोंटाना कितनी बार बहती थी, इस बात पर निर्भर करता था। ''पिछले साल, दूसरे ट्रैमोंटाना के बहने के तीन दिन बाद मैं आन्त्र-शोथ की वजह से बीमार पड़ गया।'' उसने एक बार मुझे बताया था। शायद इस बात से उसके इस यक़ीन का पता चलता था कि हर ट्रैमोंटाना के बहने के बाद आप की उम्र कई वर्ष ढल जाती थी। ट्रैमोंटाना के बारे में उसकी सनक इतनी ज़्यादा थी कि वह हममें भी ऐसी चाहत भर देता कि हम भी ट्रैमोंटाना को जानें, गोया वह कोई विनाशक और सम्मोहक आगन्तुक हो।

हमें ज़्यादा देर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दरबान के जाते ही हमें सीटी के बजने की आवाज़ सुनाई दी जो हर पल तीव्र और प्रचंड होती चली गई, और अन्त में किसी भूकम्प की गड़गड़ाहट में घुल-मिल गई। फिर उस हवा का बहना शुरू हुआ। हवा के सबसे पहले झोंके थोड़े-थोड़े अन्तराल के बाद आए। फिर वे निरन्तर आने लगे और अन्त में वह प्रचंड हवा जैसे स्थायी हो गई। वह अचल हवा बिना रुके और बिना किसी राहत के उस वेग और क्रूरता से बहती रही जो अलौकिक लग रही थी। कैरेबियाई प्रथा के विपरीत हमारे मकान का प्रवेश-द्वार पहाड़ों की तरफ़ था। शायद ऐसा पुराने फैशन के उन कैटालोनियाई लोगों की अभिरुचि की वजह से था जो समुद्र से प्रेम तो करते हैं पर समुद्र को देखने की परवाह नहीं करते। और इसलिए वह प्रचंड हवा हमारे मकान से सीधी टकराई और हमें डराने लगी कि वह खिड़कियों को कस कर बाँधने वाली रस्सियों को उखाड़ फेंकेगी।

जिस बात ने मुझमें सबसे अधिक जिज्ञासा उत्पन्न की वह यह थी कि सुनहले सूर्य और निर्भीक आकाश वाला मौसम अब भी खूबसूरत बना हुआ था। मौसम के सौन्दर्य का यह आलम था कि मैंने बच्चों को बाहर सड़क पर ले जाने का फैसला किया ताकि वे समुद्र का नजारा देख सकें। आख़िर वे बच्चे मेक्सिको के भूकम्पों और कैरेबिया के समुद्री तूफ़ानों के अनुभव के बीच बड़े हो रहे थे। इसलिए एक और प्रचंड हवा से ज़्यादा चिन्तित होने की जरूरत नहीं थी। हम पंजों के बल चलते हुए दरबान के कमरे के सामने से गुज़रे। हमने उसे खिड़की के बाहर चल रही तीव्र हवा को महसूस करते हुए, खाने की प्लेट के सम्मुख स्तम्भित देखा। वह हमें बाहर जाते हुए नहीं देख पाया।

जब तक हम मकान के पिछली ओर रहे, हम आराम से चलते रहे, लेकिन जैसे ही हम मकान के सामने की ओर के खुले कोने की तरफ़ पहुँचे, हमें बिजली के एक खम्भे को कसकर पकड़ना पड़ा ताकि हम उस प्रचंड हवा के वेग से उड़ न जाएँ। हम उस खम्भे को पकड़कर वहीं खड़े रहे। हैरानी की बात यह थी कि उस महाप्रलय के बीच समुद्र साफ़ और अचल बना रहा। हम कुछ देर तक वहीं फँसे रहे। तब जाकर दरबान कुछ पड़ोसियों के साथ वहाँ आया और वे हमें उस प्रचंड हवा से बचाकर मकान के भीतर ले आए। और तब अन्त में हमने यह मान लिया कि ऐसी विकट परिस्थिति में एकमात्र विवेकपूर्ण विकल्प यही था कि हम तब तक घर के भीतर ही रहें, जब तक ईश्वर कुछ और न चाहे। और किसी को यह ज़रा भी अनुमान नहीं था कि वैसा कब होगा।

दो दिनों के अन्त में हमें ऐसा लगने लगा जैसे वह डरावनी हवा कोई प्राकृतिक घटना नहीं थी बल्कि कोई व्यक्तिगत अपमान था, जिसका निशाना किसी ने जानबूझकर केवल हमें ही बनाया था। हमारी मानसिक दशा से चिन्तित दरबान कई बार हमसे मिलने आया, और हर बार वह हमारे लिए उस मौसम में मिलने वाले फल और बच्चों के लिए टॉफ़ियाँ लेकर आया। मंगलवार के दिन दोपहर के भोजन में उसने हमें रसोई की कड़ाही में बनाए गए लज़ीज़ कैटालोनियाई व्यंजनों की दावत दी, जहाँ ख़रगोश और घोंघों का मांस उपलब्ध था। यह संत्रास के माहौल में दी गई दावत थी।

बुधवार के दिन उस प्रचंड हवा के वेग के साथ बहते रहने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हुआ। वह मेरे जीवन का सबसे लम्बा दिन था। किन्तु वह ज़रूर सुबह के उजाले से पहले का अँधेरा रहा होगा। अर्द्ध-रात्रि के बाद हम सभी लगभग एक ही समय में जग गए क्योंकि हम सब एक ऐसी परम नीरवता से अभिभूत हो गए थे जिसे केवल मृत्यु का सन्नाटा कहा जा सकता था। पहाड़ों की ओर मौजूद पेड़ों पर एक भी पत्ता नहीं हिल रहा था। और इसलिए दरबान के कमरे की बत्ती जलने से पहले ही हम सब बाहर सड़क पर निकल आए। हमने सुबह का उजाला होने से पहले के सितारों भरे आकाश और स्फुर-दीप्त समुद्र को देखने का भरपूर आनन्द लिया। हालाँकि अभी सुबह के पाँच भी नहीं बजे थे, पर कई पर्यटक उस पथरीले समुद्र-तट पर राहत और छुटकारे की भावना से जश्न मना रहे थे। तीन दिनों की तपस्या के बाद पाल वाली नावों की फिर से सजावट की जा रही थी।

जब हम बाहर गए तो हमने इस तथ्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया कि दरबान के कमरे में अँधेरा था। लेकिन जब हम वापस मकान पर लौटे तो हवा भी समुद्र की तरह स्फुर-दीप्त लग रही थी और दरबान के कमरे में अब भी अँधेरा था। मुझे यह अजीब लगा और मैंने उसके दरवाज़े पर दो बार दस्तक दी, और क्योंकि कोई उत्तर नहीं आया, इसलिए मैंने धक्का देकर दरवाज़े को खोला। मेरा ख़्याल है कि बच्चों ने उसे मुझसे पहले देखा और वे डर के मारे चीख़ पड़े। बूढ़ा दरबान कमरे के बीच में छत की शहतीर से लटककर जैसे ट्रैमोंटाना के अन्तिम झोंके से झूल रहा था। विख्यात नाविक का उसका प्रतीक-चिह्न उसके समुद्री-यात्रा वाले जैकेट की मुड़ी पर लगा हुआ था।

अपनी छुट्टियों के बीच में ही पूर्वाभासी गृह-विरह से ग्रसित हम लोगों ने वहाँ फिर कभी नहीं लौटने का अटल संकल्प लिया, और हमने वह गाँव नियत समय से पहले ही छोड़ दिया। पर्यटक सड़क पर लौट आए थे और चौक पर संगीत का कार्यक्रम शुरू हो गया था, हालाँकि अनुभवी पूर्व-सैनिक अब भी एक-दूसरे के विरुद्ध गेंद से बोतलों को गिराने का खेल खेलने से क़तरा रहे थे। तटवर्ती शराबख़ाने की धूल भरी खिड़कियों में से हमें अपने कुछ उन मित्रों की झलक दिखी जो उस प्रचंड हवा के प्रहार से बच गए थे और ट्रैमोंटाना के बाद की चमकीली बहार में अपना जीवन फिर से शुरू कर रहे थे। लेकिन अब वह सब कुछ अतीत का हिस्सा था।

इसलिए भोर से पहले के उन उदास घंटों में जब वह लड़का कैडेक्वेस लौटने से इनकार कर रहा था क्योंकि उसे यकीन था कि वहाँ उसकी मृत्यु हो जाएगी, तो उसके इस भय को मुझसे बेहतर और कोई नहीं समझ सकता था। लेकिन उन स्वीडनवासियों को रोकने का कोई तरीक़ा नहीं था। वे उस लड़के को घसीटते हुए अपने साथ ले गए। उनका यूरोपीय इरादा ज़बर्दस्ती उसके अफ्रीकी अन्धविश्वासों का इलाज करने का था। समर्थकों और विरोधियों के दो धड़ों में बँटे दर्शकों की तालियों और 'छी-छी' के बीच वे उसे धक्के देते रहे और ठोकरें मारते रहे। वे उसे शराबियों से भरी एक गाड़ी में डालकर उस देर रात में कैडेक्वेस की लम्बी यात्रा पर निकल पड़े।

अगली सुबह मैं फ़ोन की बजती घंटी सुन कर अर्द्ध-निद्रावस्था में उठा। कल रात जब मैं पार्टी के बाद घर आया तो मैं कमरे के पर्दे खींच कर बन्द करना भूल गया था। इसलिए मुझे समय का अन्दाज़ा नहीं था, लेकिन शयन-कक्ष गर्मियों की चमकीली धूप से भरा हुआ था। शुरू में मैं फ़ोन पर आ रही चिन्तातुर आवाज़ को नहीं पहचान पाया, लेकिन सन्देश ने मुझे झकझोर कर नींद से पूरी तरह जगा दिया।

''क्या तुम्हें वह लड़का याद है जिसे वे सब कल रात पकड़कर कैडेक्वेस ले गए थे?''

मुझे इसके आगे एक भी शब्द और सुनने की इच्छा नहीं हुई। किन्तु जो बताया गया, वह मेरी कल्पना से भी कहीं अधिक नाटकीय था। लड़का इस बात से बेहद भयभीत था कि उसका कैडेक्वेस लौटना अब पूरी तरह तय था। उन पागल स्वीडनवासियों की एक पल की लापरवाही का फ़ायदा उठाते हुए, तथा अपनी अनिवार्य मृत्यु से बचने के प्रयास में लड़का चलती गाड़ी से रास्ते में पड़ने वाले अगाध गर्त में कूद गया।

अनु.: सुशांत सुप्रिय, मो.: 8512070086

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

आधी रात में उम्म कुल्थुम

नथाली हैंडेल

नथाली हैंडेल एक फ्रांसीसी-अमेरिकी कवि और लेखिका हैं, जो हैती में बेथलेहम के एक फिलिस्तीनी परिवार में पैदा हुई हैं। वह फ्रांस, संयुक्त राज्य अमेरिका, लैटिन अमेरिका, कैरेबियन, एशिया और अरब दुनिया में रह चुकी हैं। बेनिंगटन कॉलेज, वरमोंट से क्रिएटिव राइटिंग में एमएफए की उपाधि अर्जित करने के बाद लंदन विश्वविद्यालय से अंग्रेजी व ड्रामा में एम.फिल. की उपाधि प्राप्त की। हैंडेल ने 1990 के दशक में वैश्विक साहित्य लिखना और अनुवाद करना शुरू किया। वह वर्तमान में न्यूयॉर्क शहर और पेरिस में रहती है और कोलंबिया विश्वविद्यालय में पढ़ाती हैं।

वह हमेशा सप्ताहान्त पर मेरे चचेरे भाइयों के साथ फुटबॉल खेलने आता। वह ऊँचे कद का, छरहरा, मृदुभाषी था; उसका नाम सेबेस्टियन था। मैं उससे सीधी नजरें नहीं मिला पाती, लेकिन जब वह दूसरी तरफ देखता, मैं जो देख पाती, वे थीं उसकी गहरी नीली आँखें। मेरा चचेरा भाई जमील जान गया था कि मैं उसे पसन्द करती थी। लेकिन एक 'अच्छी अरब लड़की' के दिल में एक गैर-अरब के लिए इस तरह की भावनाएँ नहीं होनी चाहिए, और मुझे वहाँ जाने की जरूरत ही क्या थी, जब मुझे उससे शादी नहीं करनी थी? यह हमारी तहज़ीब का हिस्सा था। हमारे परिवार ने हमें सब कुछ दिया था, इसलिए रीति-रिवाजों का पालन कर हमें हमारा फर्ज़ अदा करना था।

शनिवार की एक दोपहर को, जब लड़के खेल रहे थे, जमील के पिता ने उसे बुलाया। मैंने देखा जमील नहीं जाना चाहता था, लेकिन वह खेल छोड़कर गया। हमें हमारे बुजुर्गों की भावनाओं का आदर करना सिखाया गया था; इसलिए जमील तुरन्त कार लेकर उनके किसी काम के लिए निकल पड़ा। हमने एक दूसरे को देखा और उसकी एकटक नजर ने मुझे पथरा दिया। जमील मेरे बारे में क्या सोचता था? मैं अपने बारे में क्या सोचती थी? क्या मैं बुरी लड़की थी? अगर ऐसा था तो मुझे अपने गुनहगार होने का अहसास क्यों नहीं था?

लड़के आधे घंटे तक और खेलते रहे और मैं मैदान में सेबेस्टियन को बहुत चुस्ती से इधर-उधर भागते हुए देखती रही। यह पहली बार था कि मैंने उसके सीने का आकार देखा। उसकी मांसपेशियाँ उसकी तंग सफ़ेद कमीज़ से साफ़ दिखाई दे रही थीं, उसकी टाँगें दूसरे लड़कों से थोड़ी कम रोयेंदार, थोड़ी कम मांसल थीं। खेल समाप्त हुआ और मेरी दादी माँ ने मुझे उनके लिए पानी ले जाने के लिए बुलाया। मैंने उन सभी दस लड़कों को गिलास थमाए। सेबेस्टियन ने मुझे शुक्रिया कहा। मैं मुस्कराई। उसने आँख मारी। मैंने अपने अन्दर एक अजीब-सी सिहरन महसूस की, और यह भी महसूस किया कि जमील मेरे पीछे खड़ा था। मैंने उसकी साँस को पहचान लिया : जब वह परेशान अथवा उत्तेजित होता, वह भारी हो जाती थी। जमील बुद्धिमान था और उसका यह कठोर रूप कई लड़कियाँ पसन्द करती थीं, लेकिन वह कभी किसी के बारे में कुछ नहीं कहता। सच यह है, वह थोड़ा सख्त मिजाज़ था। क्यों वह सेबेस्टियन की तरह तनावमुक्त नहीं रह सकता था? मैं चाहती थी कि उसे कोई प्रेमिका मिल जाए ताकि उसका मुझ पर नजर रखना छूट जाए।

उस शाम, मेरी चाची सामिया ने सबको शीश बराक (लेबनान का एक व्यंजन) खाने की दावत दी। मेरे चाचा-चाची शुक्रवार की रात, इस तरह की पार्टियाँ देने के शौक़ीन थे।

''वह क्या होता है?'' सेबेस्टियन ने मुझसे पूछा।

''तुम आज रात देखोगे।'' अवसर का लाभ उठाते हुए मैंने कहा। मैं खुश हुई, वह आ रहा था।

जमील ने सेबेस्टियन को अपनी बहिन अन्न को भी साथ लाने के लिए कहा। अन्न मेरी दोस्त थी। लेकिन इस तरह दोस्तों का आना बिल्कुल नया था। वास्तव में हम हमारे पारिवारिक जमावड़े में विदेशियों को दावत पर नहीं बुलाते थे, क्योंकि शायद हम अपनों तक ही सीमित रहना चाहते थे या वे हमसे दूर रहना चाहते थे। हमारे परिवार में विशेष रूप से गैर-अरब युवाओं को पार्टियों में नहीं बुलाया जाता था क्योंकि हमारे परिवार में बहुत-सी लड़कियाँ शादी की उम्र की थीं। यह कुछ ऐसा था जिसके बारे में सेबेस्टियन कुछ नहीं जानता था।

उस रात मैंने मेरी बाईस साल की चचेरी बहिन सोराया को मुझे तैयार करने में मदद के लिए कहा। वह बहुत लम्बी थी, आँखें काली और कन्धों के नीचे तक आते काले रेशमी बाल।

''तो तुम किसके लिए तैयार हो रही हो? रोउला का बेटा...रमज़ी?''

''आपको उसका विचार कैसे आया?''

''या हबीबी, वह हॉट है।''

''मुझे लगता है...लेकिन छोड़ो, उसके साथ मैं अपने 'सेल्फ' में नहीं रह सकती।''

''इसका क्या मतलब है?''

''वह अरबी लड़का है।''

''सुनो, क्या कोई अपने वास्तविक 'सेल्फ' के बारे किसी को बता सकता है?''

''मैं बता सकती हूँ।''

''सचमुच! तो मुझे बताओ कि तुम इस समय क्या सोच रही हो?''

उसने मुझे हैरान कर दिया। मैं जवाब नहीं दे पाई क्योंकि मैं सोच रही थी कि उसके अतीत के कारण, वह मुझे सलाह देने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं थी।

''सुनो, हर कोई मुझे बुरा-भला कहता है, कहता है कि मैं 'उपयोग की गयी वस्तु' हूँ क्यों? क्योंकि मैं ब्रैड एंडरसन को प्यार करती थी जब मैं सोलह साल की थी और उसके साथ हमबिस्तर हुई थी, यह उस मूर्ख वालिद ने सबको बताया।''

''मैंने सोचा...''

''मान लो मैं शहर की आधी आबादी के साथ सोई, कौन परवाह करता है...लेकिन मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। बात यह है कि लोग हमेशा बोलेंगे और वे हमेशा वही कहेंगे जो वे कहना चाहते हैं। सत्य और वास्तविकता अक्सर दूर के पड़ोसी होते हैं।''

उस क्षण तक कोई दूसरी औरत मुझसे इतनी ईमानदारी से पेश नहीं आई थी। मुझे वह अच्छी लगी, केवल इसलिए नहीं कि वह हमारे परिवार में से थी, इसलिए भी कि जो वह थी— मैंने उसके बारे में उस दृष्टि से कभी नहीं सोचा था। उसी समय मेरी चाची अन्दर आईं और हमें उनकी मदद करने के लिए कहा गया। सोराया और मैंने एक दूसरे को देखा, मानो हम अलग नहीं होना चाहती थीं। हम दोनों सिर झुकाए दरवाज़े की तरफ चल दीं। सोराया ने अचानक मुझसे रुकने को कहा; अपने कमरे में गई और जब बाहर आई तो उसके हाथ में कोई चीज़ थी।

उसने मुझे बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के फ़िलिस्तीनी सिक्कों से बना एक ब्रेसलेट दिया। मैं भाव-विभोर हो गई।

''इसे पहन ले, यह भाग्यशाली है।''

''यह बहुत सुन्दर है। क्या आपको पूरा यकीन है यह मेरे लिए भाग्यशाली साबित होगा?''

वह मुस्कराई। उस क्षण मुझे लगा जो साहस मैंने उसमें देखा, वह मुझे मेरे अगले मुकाम तक पहुँचने में मेरी मदद करने वाला है।

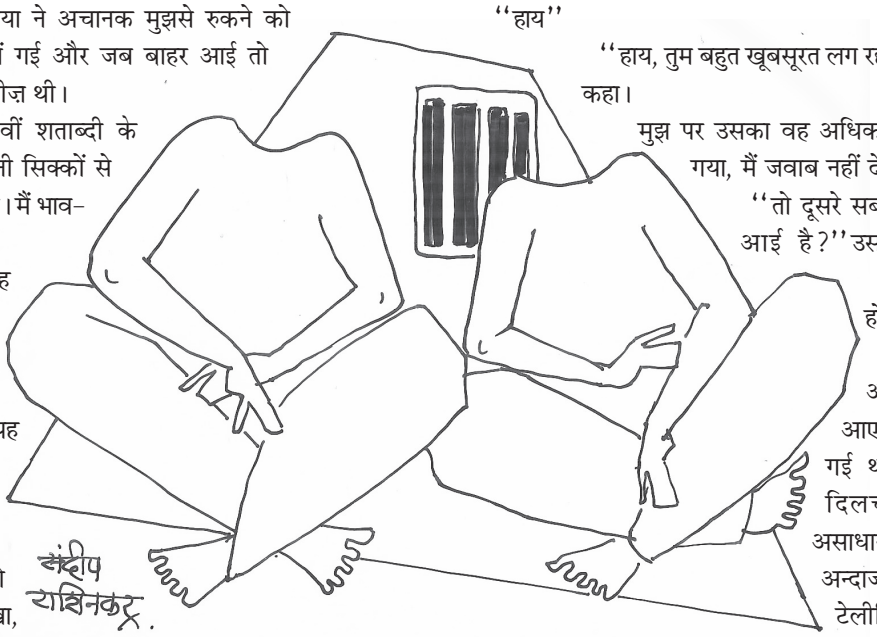

जब हम नीचे आए, उम्म कुल्थुम के गाने बज रहे थे। स्टीरियो, टेलीविज़न। वह हर जगह थी। उसकी आवाज हम सबके दिल में उतरने का रास्ता जानती थी। सोराया और मैं किचन में थीं। मेरी चाची और दूसरी स्त्रियाँ गुनगुना रही थीं, गा रही थीं। उन्होंने हमें डाइनिंग-मेज पर रखने के लिए प्लेटें पकड़ाईं। बाहर चौक में और बगीचे में मेरे चाचा लोग और चचेरे भाई या तो ताश खेल रहे थे, हुक्के के कश खींच रहे थे, राजनीति की या किसी दिन फिलिस्तीन लौटने के सपनों की बातें कर रहे थे या हमें अपने बचपन की वही घिसीपिटी कहानियाँ सुना रहे थे— उन लड़कियों की जो उन्हें पसन्द थीं, उन दिनों की जब वे खेतों में दौड़ लगाते थे और जैतून की फसल का इन्तज़ार करते रहते थे। खाना खाने के बाद अक्सर वे एक जगह इकट्ठे होते और बस उम्म कुल्थुम के गाने गाते। उनके लिए यह एक तरह का ध्यान था, चिन्तन था। एक प्रार्थना थी। एक घर वापसी थी।

मेरी चाची सामिया ने मुझसे कहा कि काली ड्रेस मुझ पर खूब फ़ब रही थी। उसमें मैं एक खूबसूरत नवयुवती लग रही थी। ''तुम अपने बाल खुले क्यों नहीं रखती?'' मैंने जवाब नहीं दिया। इसे मैंने कई बार सुना था। मेरे बाल घुँघराले हैं और वे चाहते थे मैं उन्हें खुला रखूँ, लेकिन तब जब मैं पहले ब्लोअर से सुखाकर उन्हें सीधा कर लूँ। वे नहीं चाहते थे कि कोई मुझे जंगली घुँघराले बालों में देखे। और मेरी दिक्कत यह थी कि मैं हर तीसरे दिन हेयर-ड्रेसर के पास नहीं जा सकती थी, इसलिए मैं बालों को बाँध कर रखती थी।

जब मैंने आखिरी डिश तब्बौलेह (एक अरबी शाकाहारी व्यंजन) मेज पर रखी, मेरी आँखें सेबेस्टियन की आँखों से उलझ गईं। सोराया टोकते हुए मेरे कान में फुसफुसाई, ''वह यहाँ क्या कर रहा है?''

मैंने हैरत से उसकी तरफ देखा, जब तक मैं कुछ कहती, मेरी चाची ने उसे किचन में बुला लिया। मैं सेबेस्टियन के पास गई।

''हाय''

''हाय, तुम बहुत खूबसूरत लग रही हो।'' उसने बेधड़क कहा।

मुझ पर उसका वह अधिकार मुझे अभिभूत कर गया, मैं जवाब नहीं दे पाई।

''तो दूसरे सब कहाँ हैं? क्या अन्न आई है?'' उसने पूछा।

''हाँ, यहीं कहीं होगी।''

उसी समय अन्न और जमील हमारी ओर आए। मेरी प्रार्थनाएँ सुन ली गई थीं। जमील अन्न में दिलचस्पी ले रहा था। असाधारण रूप से तनाव रहित अन्दाज में उसने हमें ऊपर टेलीविज़न-रूम में सबके

साथ शामिल होने के लिए कहा।

जब हम ऊपर आए, सेबेस्टियन ने पूछा, ''यहाँ मकान के हर टेलीविज़न-सेट पर यह काले चश्मे वाली औरत कौन है?''

''वह उम्म कुल्थुम है, अरब की बहुत ही जानी-मानी गायिका।'' मैंने गर्व से कहा।

''ओह, उसका नाम कुछ अटपटा-सा है।''

''सभी हँस पड़े, लेकिन मुझे उसमें कुछ भी अजीब नहीं लगा। तभी मैंने सुना कोई मेरा नाम पुकार रहा था। वह सोराया थी, मुझे उसके पिता के बेडरूम की मेज से उनका सिगरेट का पैकेट लाने के लिए कह रही थी, जो पहली दराज़ में रखा हुआ था। ''इंता ओमरी'' (उम्म कुल्थुम का लोकप्रिय गाना) सुनते हुए, जो मेरे कानों का अब तक पीछा कर रहा था, मैंने लम्बा सफ़ेद गलियारा पार किया और नीचे आ गई। एक गाना जो आपको अपने प्रेमी के पास ले जाता है। मेरा प्रेमी कौन था? मैं बेडरूम के पास पहुँची, लकड़ी के भारी दरवाज़े को खोला और छोटी मेज की ओर गई, पहली दराज में सिगरेट नहीं थीं, मैंने नीचे की दराज खोली। सिगरेट का पैकेट वहाँ केफफ़ियेह (पारम्परिक अरबी साफा) के ऊपर रखा हुआ था। उसके नीचे रखी किताबों और पत्रिकाओं पर मेरी नजर पड़ी, चूँकि मुझे पढ़ना अच्छा लगता था, मैंने केफफ़ियेह को ऊपर उठाया। जो मैंने वहाँ देखा, मैं दंग रह गई। मैं वहाँ फर्श पर शायद काफी देर तक बैठी रही। जमील अन्दर आया और मेरे पास बैठ गया।

''क्या बात है?''

''कुछ नहीं।''

उसने खुली हुई दराज़ की ओर देखा और फिर मेरी ओर।

''यह सिर्फ सॉफ्ट पोर्न है।''

मुझे नहीं पता, उस वक्त मुझे कैसा महसूस हुआ, भयभीत, हैरान-हताश। लेकिन हाँ, मुझे यह अवश्य महसूस हुआ कि जैसे मैं कम, बहुत कम जानती थी...

''यह सब कितना पाखंड है, हमें पवित्र रहने के लिए, वर्जिन बने रहने के लिए कहा जाता है— और ये पोर्न देख रहे हैं।''

''नहीं, ऐसा नहीं है...''

''बस रहने दो, हम पश्चिम की आलोचना करते हैं लेकिन हम बेहतर नहीं हैं।''

''हमारा परिवार है।''

''उनका भी है।''

''हमारी तरह नहीं।''

मैंने उत्तर नहीं दिया। तब उसने कहा, ''मुझे लगता है हम सभी इतना ही कर सकते हैं कि हम स्वयं से पूछें हमारे लिए क्या ठीक है।''

हमने नीचे से आती आवाज़ सुनी और जल्दी से केफफ़ियेह वापस रखकर दराज़ बन्द कर दी और खड़े हो गए।

''सिगरेट का क्या हुआ?'' सोराया ने मुझे देखते हुए पूछा।

''यहाँ वे मेरे पास है।'' मैंने उसे पैकेट दिखाया। जमील चला गया और मैं उसके साथ ठहर गई।

''इससे पहले कि हम नीचे जाएँ, क्या मैं आपसे कुछ पूछ सकती हूँ?'' उसने हाँ में अपना सिर हिलाया।

''ब्रैड का परिवार कैसा था?''

''तुम क्यों पूछ रही हो?''

''ऐसे ही बस मैं जानना चाहती हूँ।''

''वे बहुत अच्छे लोग थे, पर ब्रैड एक घटिया इंसान था।''

''लेकिन, आप उसे प्यार करती थीं।''

''हाँ, करती थी। लेकिन वह सिर्फ मेरे साथ सोना चाहता था, और उसने वालिद को कहा हम एक साथ थे। लड़के सभी कौमों में एक-से होते हैं।''

मैं समझ नहीं पायी कि मैं क्या कहूँ, पर मुझे लगा मुझे कुछ कहना चाहिए, ''लेकिन हमारे यहाँ परिवार है, आदर-भाव है। सेबेस्टियन के माता-पिता को देखो, वे तलाकशुदा हैं।''

वे मेरे पास आईं, मेरे हाथों से सिगरेट का पैकेट लिया और कहा, ''यहाँ भी सब कुछ ठीक नहीं है।'' और चली गईं। मैं समझ गई।

मैं टेलीविज़न-रूम में आई और सेबेस्टियन के बगल में बैठ गई, बिना किसी भय के। बिल्कुल चुलबुले अन्दाज में। मुझे ख़याल आया कि मैं वास्तव में नहीं जानती थी सेबेस्टियन कौन था, लेकिन मुझे परवाह नहीं थी। मैंने खुद को अन्दर से मज़बूत पाया। डिनर के बाद जब सब इधर-उधर हो गए, मैंने सेबेस्टियन को अपने साथ आने के लिए कहा। मुझे पता था वहाँ से निकल जाने का वह सही समय था। उम्म कुल्थुम की आवाज़ और तेज़ होगी और हर कोई उसमें खोया जाएगा।

सेबेस्टियन मेरे पीछे आया। उसमें साहस था, जिसे मैं पसन्द करती थी। उस रात, मैंने जाना कि मर्द औरतों की ओर आकर्षित होते हैं और कि औरतें उन्हें बहला-फुसला सकती हैं। मैं अपने काबू में थी। बरामदा एल-आकार का था और सोरया का कमरा हॉल के आखिरी छोर पर था। जब हम वहाँ पहुँचे, मैंने उसे बाहर रुकने के लिए कहा और दरवाज़ा आधा खुला छोड़ दिया। मैंने मेज़ की बत्ती जला दी, उसकी तरफ पीठ कर ली और कपड़े उतारने लगी। अब पूरा मकान गूँज रहा था, संगीत बहुत ही लाउड था, लेकिन मैं बस एक आवाज़ को ही सुन पा रही थी।

मेरे काली कुर्ती पर ऊपर से नीचे तक बटन थे, जिन्हें मैंने धीरे-धीरे खोला। मैंने कुर्ती को फर्श पर गिरने दिया। फिर मैंने कुछ ऐसा किया जिसे करने का मैं सोच भी नहीं सकती थी, खासकर किसी मर्द के सामने, मैंने अपने बाल खोल दिए। मेरे लम्बे कुंडल मेरी पीठ पर लुढ़क गए, बिल्कुल मेरी कमर के नीचे तक। मैंने मेरी जाँघों के बीच आग को महसूस किया, एक सिहरन को। मैं चुपचाप खड़ी थी। यह अनुभूति अनजानी थी, यह मुझे ख़ुशी दे रही थी। क्या मुझे इस तरह महसूस करने की इजाजत थी? मैंने तमाम सवालों को अपने ज़ेहन से निकाल दिया, उसकी आँखों को मुझे बेध लेने दिया।

मैं उसे दरवाज़े की चौखट के करीब आते महसूस कर पा रही थी, मेरे बुलाने की प्रतीक्षा में। मैंने अपना सिर पीछे की ओर झुका लिया और उसकी साँस को सुना। मुझे और चाहिए था। मुझे मालूम था उसे और चाहिए था। वह आधी रात थी। मैं घूमी, उसकी ओर देखा और कहा, ''जमील, मैं हमेशा तुम्हारी आवाज़ से प्रेम करती थी।''

अनु.: बी.एम.नंदवाना, मो. 9983224383

कुलदीप कुमार

सारंगीवाला जोगी

कहाँ से आता
कहाँ जाता
किसी को नहीं मालूम था
न कभी मालूम करने की
ज़रूरत महसूस हुई

कभी महीने में दो-तीन बार टपक जाता
तो कभी साल में एक बार भी दर्शन नहीं होते
पर
जब कभी आता
हम सब बच्चे ख़ुशी से फुदक उठते

तहमद के से कपड़े का धारियों वाला साफ़ा
वह कुछ अजब अदा से बाँधे रहता
खिचड़ी दाढ़ी थी लम्बी-सी
धूप और अनुभवों के ताप से
उसका रंग ताँबे जैसा
एकदम पक्का

कोई नहीं जानता था उसका नाम
लेकिन उसे आँगन तक आने की छूट थी
सभी के घरों में
उसके हाथ में एक सारंगी होती
और होंठों पर एक नारा—
'भाग मछंदर गोरख आया'
जिसे वह अक्सर अपनी ही धुन में मस्त
मौक़े-बेमौक़े लगाता रहता

तब हमारे लिए
उसकी सारंगी ही संसार की एकमात्र सारंगी थी
किसी जादूगर के हैट-सी
जिसमें से अद्‌भुत धुनें निकालकर
अपनी खुरदुरी-सी अक्खड़ आवाज़ में
वह हमें कहानियाँ सुनाता

गोपीचन्द और भरथरी जैसे राजाओं के
जोगी बनने की
गुरु मछंदरनाथ के भोगी बनने की
और
चेले गोरखनाथ के अपने गुरु का पीछा करके
उन्हें जोग की राह पर वापस लाने की

हम बच्चे ये किस्से सुनते-सुनते
किसी और ही दुनिया में पहुँच जाते
देखते कि
महल के द्वार पर भीख का कटोरा लिए खड़े हैं
गोपीचन्द
उनकी माँ और पत्नी भीख देने आते हैं
और उन्हें खड़ा देखकर बिलख पड़ते हैं

कथा के इस मोड़ पर आकर हमेशा
सारंगीवाले जोगी की आँखों से
मोटे-मोटे आँसू टपकने लगते
वह सुबकता नहीं था
बस बिना रुके बजाता रहता था
और कुछ देर बाद गाना शुरू कर देता था
हम सोचते
कहीं यही तो गोपीचन्द नहीं है?

ये उन राजाओं के किस्से थे
जिन्होंने राजपाट छोड़कर
संन्यास लिया
ग़रीब-गुरबों से भीख लेकर
गुज़ारा किया
और लोगों के दिलों में बस गए

सोचता हूँ
क्या कभी हमारे समय के
कनफटे गोपीचन्द और बैरागी भरथरी पर
आँसू टपकाने भी कोई
सारंगीवाला आएगा
और
मठ छोड़कर राजपाट भोगने की
उनकी कहानियाँ सुनाएगा
क्या आज भी बच्चे इन क़िस्सों पर
वैसे ही मुग्ध होंगे
जैसे हम हुआ करते थे

क्या अब सारंगीवाला जोगी
मछंदर और गोरख की कथा को
बदलकर गाएगा
क्या उसमें मछंदर के सिंहासन के पास
गोरख की मसनद भी होगी ?

स्पर्श

कभी-भी
टकरा सकते हैं
स्पर्श
छूटे हुए भूले हुए सोए हुए
किसी चौकन्नी ख़ामोशी के सताए हुए
अकेलेपन से सकपकाए हुए

जाते हुए व्यक्ति की
छाया तक हमें नहीं छूती
उसके जाने के बाद ही वह आती है और
हमें अपने आग़ोश में ले लेती है
स्पर्श करती है हमारे रोम-रोम को
और सुना डालती है वे सभी गीत
वे सभी राग
जो केवल एक देह दूसरी देह को
सुना सकती है

स्पर्श की भी देह होती है
उसके भी सुख-दु:ख होते हैं
उसे भी आती है
कभी-कभी रुलाई
वनस्पतियों और फूलों ने
कई बार यह बताया है

लेकिन स्मृति हमें कभी नहीं छूती
कोई स्पर्श छोड़कर नहीं जाती

हाँ
यह बात ज़रूर है कि
स्मृति भी
कभी-न-कभी टकरा जाती है

भले ही वह
कोई स्पर्श न छोड़े।

मो.: 9810032608

उमा शंकर चौधरी

हत्या शृंखला

1.
तमाम प्रत्यक्ष सबूतों के बाद भी
अगर उसने ऐन मौके पर नहीं पहचाना है
अपने पिता के हत्यारे को
तो यह जान लो कि उसने जान लिया है
असली हत्यारे को
क्योंकि अब हत्या अचानक घटी कोई घटना तो है नहीं
कि उसके घटते वक्त
सहमकर आँखें बन्द हो जाएँ
और हर बार हत्यारा पहचाना ही ना जाए

2.
इस देश में अब हत्या
कोई इतना संगीन जुर्म भी नहीं
कि हर बार ठहरकर विचार किया ही जाए
और हत्या हुई है तो हर बार
यह जरूरी भी नहीं कि
हर हत्या का कोई-न-कोई हत्यारा भी हो

3.
यहाँ जितनी हत्या है
उससे ज्यादा हत्या का जश्न है
जिसमें शामिल हम सब हैं
लेकिन हत्यारा कोई नहीं है

यहाँ की मिट्टी भुरभुरी हो चुकी है
उगना के हाथ की सारी लकीरें मिट चुकी हैं
आसमान की तरफ ताकती चिड़िया की आँखों में
टप से गिरी है पानी की एक बूँद

4.
जो हत्या करता है, वह कौन है
किसी को पता नहीं

जो हत्या करवाता है, वह कौन है
वह भी किसी को नहीं पता
बस हत्याएँ हो रही हैं
हम अपने मोबाइल में देख रहे हैं
हत्या की लाइव वीडियो
और अपनी बारी का कर रहे हैं इन्तजार

5.
वह आता है और हत्या की खबर सुनाता है
वह भी आता है हत्या की खबर सुनाता है
वह तीसरा आया और उसने भी
मेरी खैर खबर से पहले
हत्या की ही खबर सुनाई

पहले तो हत्या शब्द सुनकर
हाथ में लिया हुआ कौर भी रुक जाता था
मुँह तक जाकर
अब तो हत्या की खबर के साथ
लेता हूँ चाय की चुस्की

इस तरह हत्या के आदी होते चले गए हैं हम

6.
उसकी चाकू से गोदकर हुई हत्या
उसकी पसलियों को तोड़कर
उसकी हत्या से ठीक पहले ही रुक गई हृदय गति
उसकी तो इतने लोगों के हाथों हुई हत्या कि
ठीक-ठीक यह पता ही नहीं लगा कि
किसके हाथों हुई उसकी हत्या

हत्या अब दुख मनाने से ज्यादा
बन गया है विषय बहस का
हम एक हत्या पर खत्म करते हैं अपनी बहस
तब तक आ जाती है खबर दूसरी हत्या की

7.
हत्या होती है
और हत्यारा बहुत ही शान्त मन से
उसके पास से चला जाता है
उसे जाते देखते हैं लोग
देखता है कैमरा
लेकिन हत्यारा हत्यारा नहीं है

हत्यारा हत्यारा नहीं है क्योंकि
उसके खिलाफ कोई सबूत नहीं है
चुप है हवा
चुप हैं पेड़, चुप हैं कीट-पतंगे तक

वह हत्यारा, हत्यारा नहीं है
लेकिन उसी हत्या के लिए
होता है उसका सम्मान
फूलों की मालाओं से लद गई है
उसकी गरदन

8.
कभी हम भी एक युवा के हाथ को थामकर
रोकते थे उसे करने से आत्महत्या
हम बैठते थे साथ
होते थे उसके दुख के साझीदार

एक युवा करता था आत्महत्या
तो साथ ही मरते थे थोड़ा-थोड़ा हम
लाज से धँस जाते थे हम अपने ही शरीर के भीतर
एक युवा करता था आत्महत्या
तो उसके साथ मरता था थोड़ा-थोड़ा हमारा देश
हमारा भरोसा

अब एक युवा को खींचकर मारने में
होते हैं हम शरीक
युवा की हत्या में चुप रहकर भी देते हैं हम साथ
धीरे-धीरे मर रही है हमारी इंसानियत
धीरे-धीरे मर रहा है हमारी आँखों का पानी

9.
हत्यारे चाहते तो अट्टहास कर सकते थे
लेकिन उनके चेहरे पर ठहराव है
वे विजय के गीत गा सकते थे
लेकिन अभी वे चुप हैं

हत्यारे जो कर रहे हैं अट्टहास
वे नहीं हैं असली हत्यारे
असली हत्यारे को रौंदने हैं अभी
और भी ढेर सारे शब्द, इतिहास
और चीखें
असली हत्यारों के नाम तो आते हैं
बस हस्ताक्षरों में।

यह देश तुमसे कुछ नहीं पूछेगा

बारिश की बूँदों को तुम आग कह दो
और आग को पानी
तुम चाहो तो पेड़ की पत्तियों को
लहलहाता हुआ कोयला कह दो
और रेत को तूफान

तुम कहो तो बारिश की बूँदों पर
आज चढ़ा दूँ चाय की केतली
और पेड़ की पत्तियों से सुलगाऊँ
आज अपनी सिगरेट

तुम चाहो तो आइंस्टीन को न्यूटन कहो
और न्यूटन को गैलीलियो
तुम इतिहास को झूठ कह सकते हो
और अपने नारे को इतिहास
तुम भूगोल से एक दो ग्रहों को
यहाँ-वहाँ खिसका सकते हो
और एक-दो ग्रहों
को बन्द कर सकते हो
अपने धर्मग्रन्थों में

यह देश कोई कचहरी तो है नहीं
कि हर वक्त झूठ बोलने के लिए
शक के घेरे में आना ही पड़े
यह देश समझदारों का अड्डा भी नहीं है
कि वह तुमसे हर लफ़्फ़ाज़ी का
हिसाब माँग ही ले
देश देश होता है प्रश्न करने की कोई माकूल जगह नहीं
कि वहाँ खून के बारे में भी पूछा जाए
भूख के बारे में भी
और आत्महत्या के बारे में भी

यह देश तुमसे कुछ नहीं पूछेगा
न ही गुरुत्वाकर्षण के बारे में
ना ही इतिहास के बारे में
ना ही भूगोल के बारे में
ना ही पूछेगा वह फूलों के बारे में
पत्तों के बारे में
आसमान के बारे में
सूरज के बारे में या फिर
बृहस्पति ग्रह के बारे में

यह देश तुमसे कुछ नहीं पूछेगा
ना ही जमीन पर गिरे खून के बारे में
ना ही उस पुलिस वाले की आत्महत्या के बारे में
और ना ही जुगनुओं के बारे में
यह देश तुमसे कुछ नहीं पूछेगा

इसलिए तुम अभी चाहो तो
बारिश की बूँदों को आग कह सकते हो
और आग को पानी
दुख को सुख कह सकते हो
आत्महत्या को तुम उसका शग़ल बतला सकते हो
तुम क्रान्ति को तो आज बतला ही रहे हो
जीवन जीने का एक फैशनपरस्त तरीका।

मो.: 9810229111

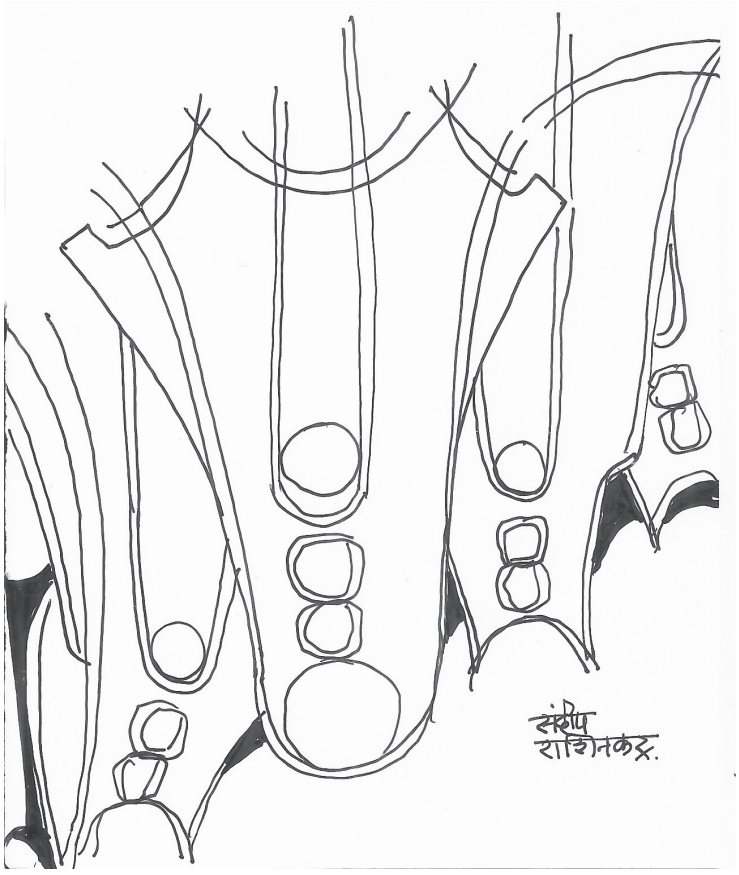

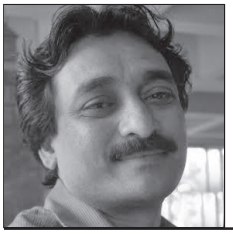

रवीन्द्र प्रजापति

नदी एक फोटो भर बची है

नदी के किनारों ने चाँद को देखना छोड़ दिया
दुनिया भी अब चाँद को नहीं देखती

हर खूबसूरत नजारा सिर्फ़ एक फोटो है
जिसे शहर के पास नहीं देख सकते
लेकिन मैं अपने कमरे में रोज देखता हूँ

नदी देखने के लिए अब फोटो ख़रीदने होते हैं
मैं नदी पर अब नहीं जाता
मैंने दुनिया को फोटो में बदलना सीख लिया
खेत और फसलें भी एक फोटो हैं

हवाओं को एसी में डाल दिया है मैंने
इस तरह पूरा जीवन फोटो में बदल लूँगा

नदी अब सिर्फ़ फोटो भर बची है
जो मेरे जीवन में नहीं फोटो में बह रही है।

दुनिया का पहला ड्राफ्ट

मैंने दुनिया की डिज़ाइन को इतना सरल नहीं बनाया था
कि काग़ज़ पर लिखने से
कोई भी नदी ज़मीन और जंगलों पर काबिज हो जाए
पहाड़ों को अपने नाम लिख ले

दुनिया में आज की और उस पुरानी डिज़ाइन में फ़र्क़ है
आज सरकारों ने उस पहले ड्राफ्ट पर चेंज कर दिया

जिसमें सरकार जैसी कोई चीज़ उसमें नहीं डाली गई थी
नहीं था राजा और न कोई पानी पर हक जमाता था
सरकार को किसने बनाया है जिसे पक्षियों की चिन्ता नहीं
और उन लोगों से जो पेड़ काटने से पहले
जंगल और पेड़ से पूछते थे
क्या सरकार ने उनसे पूछा है कि तुम्हारे जंगल हम ले रहे हैं

सरकार होने का अर्थ सबसे ज़्यादा बेईमान होना हो गया
नए ड्राफ्ट में लगातार छीनती रहती है नदियों का पानी
प्राणियों का खाना और पक्षियों का दाना

काग़ज़ पर लिखे ड्राफ्ट को अब सरकार नहीं मानती
इसलिए अब इसका बदला जाना ज़रूरी है।

पहाड़ पर खड़ा होकर देखता हूँ तुम्हें

मैंने तुमको पहाड़ पर खड़े होकर देखा
मैंने तुमको कार की खिड़की से देखा
मोर और हिरण के फोटो लिए
किसानों को काम करने के अलावा
पहाड़ और जंगल के घने पेड़ों को देखा
मेरे पास सिर्फ़ देखना ही देखना बचा था

मैं देखने के अलावा और क्या कर सकता था
कि मैं तुममें से आर पार हो जाऊँ
तुम्हारे जेहन जैसे फैलाव में पड़े हैं
कुछ रद्दी काग़ज़, प्यार के दो पल और एक आह
ओह तुम कितनी अच्छी लगती हो

मैंने तुमको जिया और मैं तुममें रहा
तुम नहीं फेंकती हो मुझे रद्दी काग़ज़ की तरह
मैं छोड़ जाता हूँ तुम्हें काम का बहाना देकर

शहर में रहकर भूल चुका हूँ फिर भी
पहाड़ जंगल और नदी क्यों याद आते हैं ?

जैसे तुम हो वैसा लिखना

मैं तुम्हें वैसे ही लिखना चाहता हूँ जैसी तुम हो
लेकिन तुम वह नहीं हो जैसा तुम्हें देखा गया
किसी को देखकर नहीं कहा जा सकता कुछ

नहीं हो तुम धूप छाँव और न मन की छवि हो
न झील का पूरा प्रतिबिम्ब हो तुम

लहरों जैसा लिखने पर भी नहीं हो वैसी
तुमको सुबह या शाम भी नहीं लिखा जा सकता
हर जगह हो तुम और हर जगह तुम नहीं हो
तुम सब मैं सब जैसी हो— तुमको क्या लिखूँ

तुम्हें पूरा लिखने के लिए क्या करूँ
तुमको तुम जैसा लिखने के लिए कहाँ से शुरू करूँ।

मर्यादा प्रेम में नहीं बैर में होनी चाहिए

तुमने एक दिन धीरे से पूछा था—
तुम्हारे प्यार में कोई मर्यादा है ?
मैं चुप रहा और तुम्हें देखता रहा
तुमने हँसी के छींटे मारकर कहा—
मर्यादा प्रेम में नहीं बैर में होनी चाहिए...

मैंने नदी के किनारे तुम्हारे शब्दों को दोहराया—
मर्यादा प्रेम में नहीं बैर में होनी चाहिए
और सब तरफ देखकर अंकल जैसे पहाड़ की नज़रें बचाईं
बच्चों जैसे पेड़ों से कहा— झील के उस पार ऊँट देखो
और तुम्हारे हाथों पर चुम्बन ले लिए थे

तुमने आँखों से मुस्कराकर कहा
तुम्हारे किस झील और पहाड़ ने देख लिए
तुम चोरी भी नहीं कर पाते—सबने तुम्हारा प्यार देख लिया

मैंने झील के सामने ही कहा—
अब चलो इस मर्यादा को कहीं दूर रख आएँ
कुछ घृणा करने और कुछ कराने वालों को दे दें
ताकि उनको पता रहे घृणा में मर्यादा होती है

कुछ इस देश के हिन्दू मुसलमानों में बाँट दें
ताकि वे दुश्मनी करें तो मर्यादा में करें
और झील पर प्यार करने वालों से कुछ न कहें।

मो.: 09098410010

नरेन्द्र पुंडरीक

वह स्त्री मुझे यहीं कहीं मिली थी

वह स्त्री मुझे यहीं कहीं मिली थी
जिसे मैं प्यार करता हूँ
बाकी स्त्रियों की तरह खटती हुई
जूझती हुई समय से
समय के साथ उसका जूझना
मुझे अच्छा लगा था,

अच्छा लगा था मुझे
उसका समय को ललकारना
समय के साथ दो दो हाथ करना
मुझे अच्छा लगा था,

अच्छा लगा था मुझे उसका
समय की कठोर छाती को
पाँव से रौंदना

जिन पाँवों को माँ ने कभी
पालने से नीचे नहीं उतरने दिया
पिता रखे रहे हमेशा कन्धों पर
पिता की लाई जूतियों में
समा नहीं सके ये पाँव,

समय से लड़ते हुए मुझे
वह कभी पराजित नहीं दिखी
लेकिन थकी दिखी कई कई बार,

उसने कहा मेरे सिर में दर्द है
जरा सहला दो इसे
जरा सा दबा दो मेरे हाथ पैर
उसके हाथ पैर दबाते हुए मुझे लगा
यही वह स्त्री है
जिसे मैं खोज रहा था

जो एक पुरुष से कह सकें
दबा दो मेरे हाथ पैर।

पापा आप अपना ध्यान रखना

लड़कियाँ जो शादी के पहले
पिता से नहीं डरीं
भाइयों से बराबर लड़ीं
माँ से मुँह की मुँह लेकर
लाँघ जाती रहीं
बार बार घर की देहरियाँ,

वे डरती हैं पतियों से
वे ब्लॉक करने लगती हैं
अपने प्रिय लोगों के नम्बर
गायब करने लगती हैं मैसेज,

वे डरते डरते करती हैं
माँ और पिता से बात
कहती हैं सब ठीक है,

सब अच्छा है
मैं बहुत खुश हूँ
पापा आप अपना ध्यान रखना
मैं अभी नहीं आ पाऊँगी
वे आफिस जाते हैं
उन्हें देखना पड़ता है
सुबह उठकर जल्दी
तैयार करना पड़ता है नाश्ता खाना,

पापा माँ ठीक हैं न
उन्हें बता देना मैं खुश हूँ
अब देर तक नहीं सोती
अँधेरों से घबड़ाकर
सूरज के उठने के पहले ही उठ जाती हूँ।

मो.: 9450169568

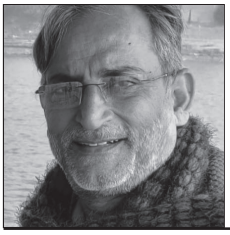

सदानन्द शाही

बस कोई दिन

रोज ही स्त्री सुबोधिनी पढ़ाई जाती है
रोज ही लक्ष्मण रेखाओं से उलझती हूँ

घर लौटने पर
रोज रोज की
अग्नि परीक्षाएँ

कोई दिन तुम भी पढ़ लो स्त्री सुबोधिनी
रह जाओ लक्ष्मण रेखा के भीतर
दे डालो अग्निपरीक्षा....
बस कोई दिन।

अक्षरों के अभिलेखागार में

मेरे कविता लिखने से रेल की पटरी पर कट गए मजदूर
जीवित नहीं हो जाएँगे
हजारों लाखों बेघर हुए मज़दूरों का दुख दूर नहीं हो जाएगा
एक डॉक्टर जो इलाज करते-करते रहस्यमय बीमारी का शिकार हुआ
और मर गया
एक नर्स जो सेवा करते हुए बीमार हुई
और मर गई
एक सिपाही जो चौराहे पर ड्यूटी देता रहा
और मर गया
किसी को जीवित नहीं कर सकतीं
मेरी कविताएँ

जिलाना तो बहुत दूर की बात है
मृतकों के परिजनों का दुख तक दूर नहीं कर सकतीं
मेरी कविताएँ
बीमा कम्पनियों जैसी नहीं हैं
मेरी कविताएँ
और न ही शाहेवक्त हैं
जो यह सब कर पायें

महर्षि वाल्मीकि के श्लोक लिख देने से क्रौंच पक्षी जी नहीं उठा था
और न तो जीवित बच गई
अभागी क्रौंची का दुख ही कुछ कम हो गया था
बस बहेलिए की क्रूरता
और क्रौंच पक्षी का दुख
दर्ज हो गया था
अक्षरों के अभिलेखागार में।

उलटबाँसी

डॉक्टर भोंपू बजा रहा था
मास्टर ट्रैफिक कंट्रोल के लिए तैनात थे
पुलिस के जिम्मे डॉक्टरी आ गई थी
अर्थशास्त्री लोक-नृत्य कर रहे थे
राजनीति शास्त्री विदूषकों की नाक में दम किए हुए था
इतिहासकार अर्थ रचना सँभालने में जुटे थे
कवियों ने भाटों का पेशा हथिया लिया था
भाट इतिहास लिखने के लिए मजबूर थे
पत्रकारों ने खोल लिए थे मसाज पार्लर
वकील योगा सिखाने लगे थे
योगिराज तेल बेच रहे थे
भोंपू बजाने वाले के हाथ में विधि व्यवस्था सँभालने की जिम्मेदारी थी
विदूषक वीजा पासपोर्ट विभाग में जम गए थे
लोक नर्तक जुट गये थे एटॉमिक रिसर्च के फ्रंट पर
मदारी युद्धनीति पर काम कर रहे थे
फिल्मी कलाकार फरमान जारी कर रहे थे
विलेन सेवा कार्य में जुटा हुआ था
महानायक बीमा पालिसी बेचने में मशगूल था
पुजारी ले उड़े थे दारू के ठेके
और जब दारूवाला ज्योतिष बाँच रहा था
ठीक उसी समय
सल्फास की दुकानों पर
खरीदारों की लम्बी लाइन लग चुकी थी।

अल्पमत में

जब बुद्ध ने राजपाट छोड़ा
अल्पमत में थे
जब सुकरात को ज़हर दिया गया
अल्पमत में थे
जब ईसा मसीह सलीब पर लटकाये गए
अल्पमत में थे

सूर्य नहीं
पृथ्वी लगाती है सूरज के चक्कर
ऐसा कहने वाले
ब्रूनो कॉपरनिक्स और गैलीलियो
अल्पमत में थे

जब काशी छोड़नी पड़ी कबीर को
जरूर रहे होंगे
अल्पमत में।

मो.: 9616393771

राजेन्द्र उपाध्याय

शोक समाचार

चौराहा है गोलचक्कर नहीं है
सुबह 7-50 पर नहीं 7-20 पर मरे
दुघर्टना में नहीं मरे
दिल का दौरा पड़ने से मरे।

ड्राइवर भाग गया
नहीं मर गया
नहीं पकड़ा गया
गिरफ्तार कर लिया गया।

पूछताछ कर रहे हैं
अब पूछताछ क्या करनी है
वो तो दिल के दौरे से मरा है
इंडिका ने नहीं, होंडा ने टक्कर मारी है
अकेला ही था, नहीं अकेला नहीं था।

साथ में वो भी उसकी
उसका नाम नहीं ले रहे हैं
अन्तिम संस्कार वहाँ नहीं
वहाँ होगा

पैतृक गाँव में होगा
पर उसका पैतृक गाँव तो वो है वो नहीं।

मुम्बई के रहने वाले थे
मुम्बई के रहने वाले नहीं थे
कुँवारे थे कुँवारे नहीं
दो-दो छोड़ चुके थे।
एक से तो बेटा भी है
जिसको इस बार खड़ा किया था
पैसा पानी की तरह बहाया फिर भी हार गया।

अवकाश प्राप्त अफसर

अब उनके 'कर कमल' नहीं रहे।
जब से उनके कर कमल हो गए थे
वे मुझसे नजरें नहीं मिलाते थे।
उनकी नजरें नीचे नहीं झुकती थीं।

अब उनकी देह वातानुकूलित नहीं रही

जब से उनकी देह वातानुकूलित हुई थी
वे नहाते वक्त शिकायत करते थे कि
एसी किसी ने बन्द कर दिया है।

दिन भर एसी वाला उनकी देह और उनके कमरे का
तापमान मापता रहता था।

वे भूख न होने पर भी लंच एक बजे कर लेते थे
अब भूख होने पर भी कोई उनकी मेज पर
लंच गरम करके नहीं रखता

पदभार ग्रहण करते ही वे अचानक
मातृभाषा की सेवा ज्यादा करने लगे थे
उनकी स्टैनो मातृभाषा की सेवा करते करते थक गई थी।

अब भी वे चाहते हैं कि मातृभाषा की सेवा करें
पर प्रेरणा नहीं आती
प्रेरणा मातृत्व अवकाश पर चली गई है।

पहले वे बहुत आभार प्रकट करते थे
अब पत्नी का भी आभार प्रकट करते हैं
जब वो उनके लिए चाय बनाती हैं।

अब उनका भार ज्यादा हो गया है
सीढ़ी से चढ़ उतर नहीं पाते
लिफ्ट का बटन सपने में भी दबाते रहते हैं।

जिनको उन्होंने इस आशा से उपकृत किया था कि
बाद में वे भी उपकृत करेंगे
वे सम्पादक निदेशक अब उनका फोन भी नहीं उठाते

हवाई जहाज में आते जाते उनकी आदत अब ऐसी है
कि राजधानी में भी पीठ अकड़ जाती है, जबकि एसी है।

मो.: 9953320721

अश्वघोष

वह ख़ुद

वह ख़ुद को देखना चाहता था
देखने की तरह
देखते ही,
ख़त्म हो गया उसका देखना
वह ख़ुद के बारे में सोचना चाहता था
सोचने की तरह
सोचते ही, ख़त्म हो गया उसका सोचना
वह ख़ुद को समझना चाहता था
समझने की तरह,
समझते ही
ख़त्म हो गया उसका समझना
इस वक़्त
ख़ुद के सामने खड़ा है वह
चुपचाप
यह सोचता हुआ कि
ख़ुद की तरह नहीं है
वह ख़ुद।

चीज़ों के डर

घर से चलते वक़्त
चीज़ें नहीं थीं हमारे साथ
चीज़ों के डर थे

कि कभी भी कोई चोर
ताला तोड़कर
घुस सकता है घर में
गायब हो सकती हैं चीज़ें
कि कभी भी आ सकती है
वर्षा या तेज आँधी
बिगड़ सकती हैं
चीज़ों की शक्लें

कि कभी भी आ सकता है भूकम्प
हिल सकती है धरती कभी भी अनायास
अपना स्थान छोड़ सकती हैं चीज़ें
चकनाचूर हो सकता है
उनका जिस्म
सचमुच चीज़ों से अधिक बोझ है
चीज़ों के डर में, वस्तुतः
कितने सुखी हैं वे लोग
जिन्होंने नहीं जोड़ीं चीज़ें और
नहीं ढोए चीज़ों के साथ-साथ
चीज़ों के डर।

अभी रफ़्तार में है नदी

अभी रफ़्तार में है नदी
किनारे नहीं दौड़ सकते उसके साथ
अभी तो वे
गुड़गुड़ाएँगे गप्पों का हुक्का
पढ़ेंगे हरियाली के अख़बार
चर्चा करेंगे नदी की

शाम को जब थकी-माँदी होगी नदी
किनारे नहाएँगे आकंठ
प्यार से
टटोलेंगे नदी की जेबें।

शरीर के संसार में

दुख
दिमाग पर नहीं
दिल पर करते हैं वार
वही एक गीली ज़मीन है
शरीर के संसार में

दुख बहुत डरपोक होते हैं
चोरों की तरह होते हैं उनके पैर
जिन्हें कभी भी
उखाड़ा जा सकता है
खेत में उगे
खरपतवार की तरह।

मो.: 09897700267

चित्रा मुद्गल

औंधे कटोरों से

औंधे कटोरों से
औंधे ही रह गए
छूँछे
कई-कई दिन!
न उतरी उनमें चढ़ते घाम की गुनगुनी सेंक
न पिछवाड़े टपका पकी निंबोरियों का सोना
सिरहाने
कुम्हला गईं अधखिले गुलाबों की क्यारियाँ

न झपकीं
कंडे पाथती कोहनियों तक भरी कलाइयाँ
न उड़ी आस्मान में पंक्तिबद्ध हिलोरें लेते खगों की चहक
न दुबकी
मेंड़ों के बाहुपाश में फूली सरसों की बुलाक
न टूटा ठिठके पाँवों का हठीला असमंजस
न फूटे होंठों से मनौवल के दो बोल
सेंध,
लगाती नहीं है आस
तुम,
तुम ऐसे रुठ गए!

कुछ पन्ने

कुछ कोरे पन्ने
भरती हूँ रोज
भरते हैं काग़ज़
या भरती हूँ खुद को!

मो.: 9873123237

सुलोचना वर्मा

कहते हैं सब लालन फकीर हिन्दू हैं या यवन

कहते हैं सब लालन फकीर हिन्दू है या यवन,
क्या कहूँ अपना मैं नहीं जानता संधान।।

एक ही घाट पर आना जाना, एक माँझी खे रहा,
कोई नहीं खाता किसी का छुआ, अलग जल का कौन करता है पान।।

वेद पुराणों में सुनते हैं, हिन्दू के हरि हैं यवन के साईं,
फिर भी मैं समझ नहीं पाता, दो रूपों में सृष्टि के क्या हैं प्रमाण।।

नहीं है मुसलमानी*, नहीं है जिसके पास जनेऊ वह भी तो है ब्राह्मणी,
समझो रे भाई दिव्य ज्ञानी, है लालन भी वैसा ही जात एक जन।।

*मुसलमानी = खतना

मैंने एक दिन भी नहीं देखा उसे

घर के पास है आरशी नगर
वहाँ एक पड़ोसी रहता है
मैंने एक दिन भी नहीं देखा उसे

गाँव भर अगाध पानी
न है किनारा, न है तरणी* किनारे
इच्छा होती है कि देखूँ उसे
कैसे वहाँ जाऊँ रे?

क्या कहूँ पड़ोसी के बारे में
हस्त पद स्कंध माथा नहीं है
क्षण भर तैरता है शून्य के ऊपर
क्षण भर बहता है नीर में

पड़ोसी यदि मुझे छूता
यम यातना सब दूर हो जाते
वह और लालन एक साथ रहते हैं
लाख योजन फाँक* रे।

*तरणी = नौका, फाँक = दूरी

मैं अपार होकर बैठा हूँ

मैं अपार होकर बैठा हूँ
हे दयामय,
उस पार ले जाओ मुझे ।।
मैं अकेला रह गया घाट पर
भानु* बैठ गया नदी के पाट पर
(मैं) तुम्हारे बिन हूँ घोर संकट में
नहीं दिख रहा है उपाय ।
नहीं है मेरे पास भजन-साधन
चिरदिन कुपथ की ओर गमन
नाम सुना है पतित-पावन
इसलिए देता हूँ दुहाई।
अगति* को यदि नहीं दी गति
इस नाम की रह जाएगी अख्याति
लालन कहे, अकुलपति
कौन कहेगा तुम्हें ।।

*भानु— सूर्य
अगति— दुर्गति/दुर्दशा

मो.: 9818202876

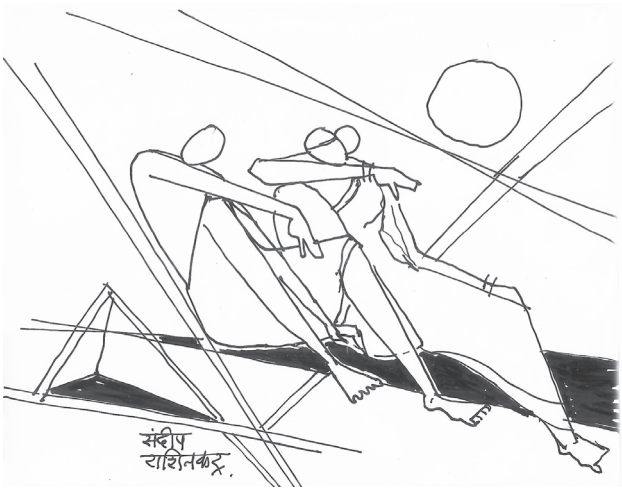

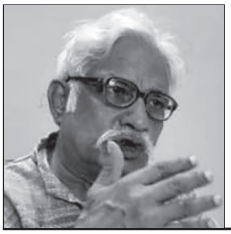

आर.सी. शुक्ला

सूचना

तुम क्यूँ बनना चाहती हो
एक कवयित्री
विख्यात होने के लिए?
तुम्हारे भीतर इतनी विशिष्टताएँ हैं
कि वे
कारण बन सकती हैं
असंख्य कविताओं की
जो लिखी जा सकती हैं तुम्हारे ऊपर

यदि तुम स्वीकार कर सको मेरा प्रतिवेदन
और बैठ सको मेरे समक्ष
अलग-अलग अवसरों पर
मुझे विश्वास है
मैं बहुत अर्थपूर्ण कविताएँ
लिख सकता हूँ तुम्हारे विषय पर
उन कविताओं से
तुम्हें प्राप्त हो सकता है
तुम्हारा मन चाहा विस्तार

देवयानी ने
कोई कविता नहीं लिखी थी
न शर्मिष्ठा ने
किन्तु ये दोनों महिलाएँ
जीवित हैं साहित्य में
द्रोपदी ने भी कोई कविता नहीं लिखी थी
किन्तु वे भी
आज जीवित हैं
समस्त भारतीयों के लिए
मोनालिसा ने
कब लिखी थीं कविताएँ
किन्तु आज वे विख्यात हैं
पूरे विश्व में
एक और उदाहरण है कादम्बरी का

बाणभट्ट ने
अमर बना दिया है उन्हें

तुम्हारे चेहरे की करुणा
तुम्हारा अर्थपूर्ण मौन
और
पुरुष को द्रवित कर
देने वाला तुम्हारा सौन्दर्य
ज़्यादा वज़नी है
सैकड़ों कविताओं से।

निवेदन

तुम्हारे मोह के
महल में प्रवेश करने से पहले
मैं सन्तुष्ट थी
नदी में तैरती हुई
मछली की तरह
पेड़ों पर विश्राम करते
प्रात:कालीन कोहरे की तरह निर्द्वन्द्व
अचानक न जाने क्या हुआ
शायद कोई पुराना कर्म जागा
किसी संस्कार ने आवाज़ दी मुझे
और मैं
दौड़ी, दौड़ी चली आई
रेत के मैदान में तुम्हारे पास

जल्दी, जल्दी
हम लोगों ने
लिखनी शुरू कर ही एक कथा
प्यास की
तृप्ति की
किन्तु
कथा के समाप्त होने के पहले से
मैं बिखर गई

पीपल के सूखे पत्तों की तरह
मेरे अपने ही आँगन ने
अस्वीकार कर दिया मुझे
आज
काँच की
केवल दो चूड़ियाँ पहने
मैं बैठी हूँ अपनी देहरी पर
अपने ही द्वारा निर्मित
परिभाषाओं से क्षुब्ध
ऐसे जैसे
छीनाझपटी में फट जाने वाला
उपन्यास का एक पन्ना हूँ

मैं अनुरोध करती हूँ तुमसे
मुझे लौटा दो मेरा भूत
मैं
उस सत्य से बाहर
जीवित नहीं रह सकती
जिसे
बन्द कर रक्खा है तुमने
अपनी मुट्ठी में।

मो.: 09411682777

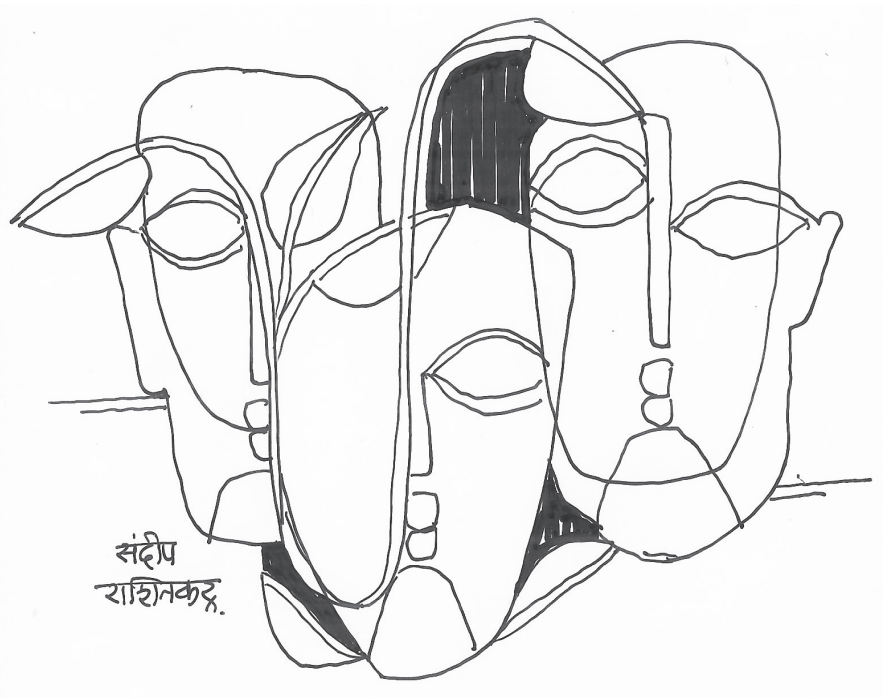

शहनाज जाफर बासमेह

हमारा यार हशमत

(कृष्णा सोबती की याद में)

(1)
हशमत
आप औरत या मर्द में
कभी फ़र्क़ न करने वाले
हमारे दौर के आदमी थे
एक आजाद ख्याल आदमी

हशमत
आप यारों के यार
यारबाज थे
जाम-ए-जिन्दगी छलकाते थे,
अपनी बेतकल्लुफ हँसी से
महफिल की रौनक बढ़ाते थे।

हशमत
आप में अदबी उर्दू की शाइस्तगी थी
तो दूसरी ओर
आपकी जुबान पर गाली भी सजती थी।

हशमत
आप अवाम की नुमाइंदगी करने वाले
मुल्की मुस्सनिफ थे
जो कभी सियासत के हाथों का
मोहरा न बने थे।

(2)
बहुत तेज है हशमत की तलवार
पेशी होती है सभी की
हशमत के दरबार
सभी को खड़ा करते हैं वे,
बनाके एक कतार
क्या दुश्मन, क्या यार
बचा न सका कोई हशमत का वार
उस पर यह फिकरा कसते हैं,
हजूर बार-बार
अजी इस नाचीज हशमत की क्या मजाल
जो छू सके आपको एक बार।

(3)
हशमत
यह हसरत हमारी छीन ली आपने
कृष्णा जी की तन्हाई बाँट ली आपने
अब हम क्या लिखें, क्या बयाँ करें,
अलफाजों को हमारे लूटकर, तरन्नुम बना ली आपने।

हशमत
कृष्णाजी का ताप, आप ही झेल सकते हैं
ज़िन्दगीनामा अब उनका, आप ही लिख सकते हैं।

चाँद की नागरिकता ख़तरे में है।

आज क्यों, चिन्ता में है चाँद
मजहबपरस्ती का उस पर
क्यों लगाया है दाग।
जो कभी, निल गगन का स्याह शिकारा था,
आज क्यों सियासती साजिश का शिकार है चाँद।

चाँद मियाँ हाजिर हो,
चाँद मियाँ हाजिर हो,
दरबान ने आवाज़ लगाई कचहरी में
तभी
सिर झुकाए अदब में
चाँद ने गुहार लगाई कठघरे से।
किस गुनाह की सजा है मैंने पाई।
सदियों बाद आज ही मुझसे
नागरिकता क्यों माँगी गई।

बेचारे चाँद को क्या पता था
ईद पर दिखना ही केवल उसका जुर्म था
जिसका खामियाज़ा उसे
इस देश से निकलकर चुकाना था।
फिर भी,
बेचारा दुबला-पतला चाँद
घबराकर निकलता है
सियासती बदली को देख छिप जाता है।

एक रात तो अपनी आएगी इस आस में
देश के लिए अपनी पिरकापरस्ती निभाता है।

मो.: 09689655822

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

राजनीति के जलसाघर से श्रीकान्त वर्मा

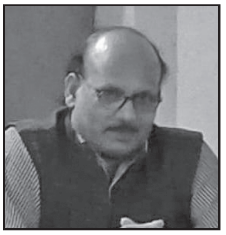

अरविन्द त्रिपाठी

जन्म : 31 दिसम्बर, 1959, गोरखपुर (उ.प्र.)।

शिक्षा : गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर से एम.ए. (हिन्दी)।

प्रकाशित कृतियाँ : शताब्दी, मनुष्य और नियति, हमारे समय की कविता, आलोचना की साखी, कवियों की पृथ्वी, श्रीकान्त वर्मा , देवीशंकर अवस्थी (मोनोग्राफ)।

सम्पादन : श्रीकान्त वर्मा रचनावली के अलावा कई महत्त्वपूर्ण कवियों की प्रतिनिधि कविताओं के संकलन। आलोचना के सौ बरस (तीन खंडों में)।

सम्मान : हिन्दी अकादमी, दिल्ली की ओर से 'मेरा घर' कविता के लिए पुरस्कृत तथा 'हमारे समय की कविता' के लिए 'कृति सम्मान'। देवीशंकर अवस्थी स्मृति सम्मान। म.प्र. शासन का आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार। भगवत रावत स्मृति सम्मान।

मो.: 09415313214

श्रीकान्त वर्मा के जीवन का एक दूसरा पहलू उनका राजनीतिक जीवन है, जिसको जाने-समझे बिना श्रीकान्त को जानना अधूरा सच होगा। यह दिलचस्प बात है कि जिस व्यक्ति की महत्त्वाकांक्षा एक दौर में सिर्फ साहित्य तक सीमित थी, अपने दूसरे दौर में वह सक्रिय राजनीति की तरफ लौटता है। इस तथ्य की पड़ताल करना श्रीकान्त के पाठकों के लिए उतना ही जरूरी है, जितना उनके कवि-व्यक्तित्व को जानना, हालाँकि श्रीकान्त की राजनीति में दिलचस्पी विद्यार्थी जीवन से थी। उनके पिता स्वाधीनता संग्राम सेनानी थे। इसलिए राजनीतिक पृष्ठभूमि उनके भीतर थी। अपने युवा काल में श्रीकान्त मार्क्सवाद से प्रभावित थे। लेकिन 1956 में हंगरी की घटनाओं के कारण मार्क्सवाद से उनका मोहभंग हो गया। पर वे मार्क्स के कट्टर विरोधी कभी नहीं रहे। वे बराबर मार्क्सवाद से असहमत रहे। हिन्दी के कुछ मार्क्सवादी लेखकों ने काँग्रेस की सक्रिय राजनीति में जाने के बाद उन्हें मार्क्सवाद का कट्टर विरोधी समझ लिया। पर वास्तविकता यह है कि मार्क्सवादी लेखन से झगड़ने और बहस करने वाले वे हिन्दी के कुछ प्रमुख लेखकों में एक थे। मार्क्सवाद से मोहभंग के बाद श्रीकान्त वर्मा डॉ. राम मनोहर लोहिया के सम्पर्क में आए, जिनके व्यक्तित्व से वे गहरे स्तर पर प्रभावित हुए। श्रीकान्त अपनी राजनीतिक पृष्ठभूमि के बारे में खुद स्वीकारते हैं ''राजनीति में मेरी रुचि तो कॉलेज-स्कूल के दिनों से थी, लेकिन सक्रिय दिलचस्पी 1969 में काँग्रेस-विभाजन के समय हुई। उसके पहले डॉ. राम मनोहर लोहिया से मेरी पहली भेंट 1963 में हुई थी। मैं उनके व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ था और उनका भी मेरे प्रति अनुराग था। सन् 1967 में डॉ. लोहिया की मृत्यु के बाद समाजवादी आन्दोलन बिखरने लगा और अन्य बुद्धिजीवियों की तरह मैं भी समाजवादियों से दूर जा पड़ा। वैसे मैं समाजवादी पार्टी का विधिवत सदस्य न था, न काँग्रेस का। 1969 में श्रीमती गाँधी ने कई ऐसे कदम उठाए जिन्हें अब भी मैं बहुत जनवादी मानता हूँ। मैं इससे आकर्षित होकर श्रीमती गाँधी के निकट आया। 1976 में मुझे राज्य सभा के लिए चुना गया। इससे पहले 1971 में मेरा नाम लोक सभा चुनाव के लिए प्रस्तावित हुआ था। मगर मैं उन दिनों अमेरिका में था।''

इस वक्तव्य को गौर से देखें तो पता चलता है कि पहले श्रीकान्त का रुझान समाजवादी विचारधारा की तरफ था। जिसके सूत्रधार थे— डॉ. लोहिया। श्रीकान्त की वैचारिक दृष्टि और उनके लेखकीय स्वधर्म पर गौर करें तो रचनात्मक स्तर पर वे हमेशा लोहिया की समाजवादी विचारधारा के पोषक रहे। समाजवादी विचारधारा का यह असर श्रीकान्त की दो-टूक वाणी से लेकर उनकी कविता और गद्य में छाया हुआ है। डॉ. लोहिया के असामायिक अवसान के पश्चात् समाजवादी आन्दोलन में जबर्दस्त बिखराव आया। जाहिर है कि 1969 में श्रीमती गाँधी ने ऐसे कदम उठाए जिसे वे अब भी बहुत जनवादी मानते रहे। सम्भवत: उन्हीं से व्यक्तिगत तौर पर प्रभावित होकर वे काँग्रेस में गए।

काँग्रेस की राजनीति में श्रीकान्त वर्मा के प्रवेश को लेकर तब साहित्यिक हलके में बहुत हंगामा हुआ था। अनेक लेखकों-बुद्धिजीवियों ने इसे श्रीकान्त की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा कहा। यह भी कहा गया कि साहित्य उनके लिए सत्ता तक पहुँचने की एक सीढ़ी है। कुछ तो ऐसी टिप्पणियाँ भी की गई हैं जिनका शाब्दिक उल्लेख करना श्रीकान्त की आत्मा के प्रति ज्यादती होती। लेकिन यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि श्रीकान्त जब दिल्ली आए तो उनके भीतर सिर्फ साहित्यिक महत्त्वाकांक्षा थी। उनके साहित्यिक संघर्ष के इतिहास को अनदेखा करना बौद्धिक गैर-ईमानदारी होगी। उनकी यह साहित्यिक महत्त्वाकांक्षा जीवन के अन्त तक बनी रही। यह कहना गलत निष्कर्ष निकालना होगा कि साहित्य उनके लिए सत्ता तक पहुँचने की सीढ़ी थी जबकि उनका विचार था साहित्य एक सीमा तक समाज को बदल सकता है। उसे अन्तत: बदलने का माध्यम राजनीतिक ही हो सकता है। शायद इसीलिए वे

सक्रिय राजनीति में गए। यह दूसरी बात है कि वह समाज को बदलने वाली राजनीति को नहीं बदल पाये। इतना तो तय है कि जीवन के आखिरी वर्षों में लिखे गए डायरी के पन्ने इस बात के गवाह हैं कि उन्हें वर्तमान व्यवस्था से सिर्फ असहमति ही नहीं थी बल्कि तीव्र घृणा थी। ऐसा लगता है कि काँग्रेस में सत्ता के दलालों की राजनीति से उनका मन भर गया था। देखने की बात यह है कि जिस दौर में उन्हें लोग घोर सत्तापिपासु समझ रहे थे, उस समय श्रीकान्त काँग्रेस के भीतर ऐसी शक्तियों से अकेले लड़ रहे थे जो जीवन विरोधी, समाज विरोधी और राजनीति की स्वस्थ्य परम्परा की चरम विरोधी थीं। उनकी प्रकाशित डायरियों में ऐसे अनेक प्रसंग आये हैं जो यह साबित करते हैं कि वे काँग्रेस के वर्तमान चेहरे से तीव्र घृणा करने लगे थे। डायरी का यह पृष्ठ देखिए— ''मुझे ए.आई.सी.सी. के अन्तर्गत विचार का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। लगभग एक महीना पहले ही मुझे फोतेदार ने बताया था कि काँग्रेस अध्यक्ष ने मुझे विचार विभाग का अध्यक्ष नियुक्त किया है। मैंने तभी विरोध किया था क्योंकि अब मैं अलग होने की प्रक्रिया में हूँ। मुझे न कोई पद चाहिए न प्रतिष्ठा। मैं तो बाकी बचा जीवन सिर्फ लेखन में व्यतीत करना चाहता हूँ— मेरा काम क्या होगा ? बुद्धिजीवियों को संगठित करना। कैसे संगठित करूँगा उन्हें ? और किसलिए ?

''कुछ मेरे अपने प्रभाव से भले ही विचार विभाग में आ जाएँ : कोई न कोई तो तमाचा जड़ेगा : बुद्धिजीवी के साथ तुम्हारी पार्टी कैसा सलूक करती है, इसका प्रमाण तो खुद हो। अभी दो महीना हुए तुम्हें जुतिया कर निकाल दिया गया। तुम बेहया हो और सही है।

मेरे साथ बांडेड लेबर जैसा सलूक किया जा रहा है।''

तब श्रीकान्त के लिए काँग्रेस और राजनीति एक चक्रव्यूह हो गई थी जिससे वे निकलने के लिए छटपटा रहे थे। उनकी मनोदशा का एक वक्तव्य यह है— ''मैं एक चक्रव्यूह में फँस गया हूँ। निकलना चाहता हूँ, रास्ता नहीं मालूम, जिधर से निकलने की कोशिश करता हूँ सिर दीवार से टकरा जाता है। शायद यहीं मारा जाऊँगा, इसी तरह इस चक्रव्यूह के भीतर, छटपटाता, चीखता, चिल्लाता, आर्तनाद करता हुआ अरण्यरोदन।'' (4 सितम्बर, 1985)

एक राजनीतिक के रूप में श्रीकान्त वर्मा का मूल्यांकन किया जाए तो उनकी दिलचस्पी केवल काँग्रेस पार्टी के लिए नहीं, अपितु देश के अवाम के लिए उनके मन में गहरा प्रेम था। वे लोकतन्त्र में गहरा विश्वास करते थे। देश की अर्थव्यवस्था के लिए वे नेहरू की आधुनिक टेक्नोलॉजी के पक्षधर थे किन्तु वे नेहरू को गाँधी का विकल्प नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में गाँधी बीसवीं शताब्दी के अकेले महानायक हैं जिनसे भारतीय समाज ही नहीं आलोकित होता है बल्कि समूची दुनिया उनकी कृतज्ञ हैं। वे भारतीय राजनीति में गाँधी को पूजा या जाप की वस्तु बनाने की बजाय उनके जीवन और राजनीतिक मूल्यों की स्थापना के हिमायती थे। दुर्भाग्यवश आज की राजनीति ने गाँधी को न केवल देश निकाला दे दिया है बल्कि कहना चाहिए गाँधी की जितनी धज्जियाँ इस देश में आजादी के इन वर्षों में उड़ाई गई हैं, उतना शायद ही दुनिया की राजनीति ने अपने जननायक के साथ ऐसा सलूक किया हो।

श्रीकान्त भारतीय राजनीति में गाँधी, राम मनोहर लोहिया के वैचारिक अवसान से इतने आहत हुए कि जीवन के अन्तिम लमहों में उन्हें लगा कि राजनीति मेरे लिए एक गलत जगह थी क्योंकि वहाँ मूल्य नहीं मूल्यों का क्षरण था। विचार नहीं विचारों की हत्या थी जिससे क्षुब्ध होकर उन्होंने 'कोसल में विचारों की कमी है' शीर्षक कविता में स्पष्ट कहा— 'कोसल अधिक दिन तक टिक नहीं सकता।'

सन् 1980 में श्रीकान्त वर्मा मुखर होकर भारतीय राजनीति में प्रविष्ट हुए थे। कहा जाता है कि सन् 80 में काँग्रेस की वापसी में श्रीकान्त वर्मा का योगदान अन्यतम था। सन् 80 के आम चुनावों में सुनियोजित प्रचार तन्त्र के जरिये श्रीकान्त ने अपने सम्मोहक नारों के माध्यम से भारतीय जनमानस के भीतर काँग्रेस के लिए एक नई लहर पैदा की। यही काम

एक राजनीतिक के रूप में श्रीकान्त वर्मा का मूल्यांकन किया जाए तो उनकी दिलचस्पी केवल काँग्रेस पार्टी के लिए नहीं, अपितु देश के अवाम के लिए उनके मन में गहरा प्रेम था। वे लोकतन्त्र में गहरा विश्वास करते थे। देश की अर्थव्यवस्था के लिए वे नेहरू की आधुनिक टेक्नोलॉजी के पक्षधर थे किन्तु वे नेहरू को गाँधी का विकल्प नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में गाँधी बीसवीं शताब्दी के अकेले महानायक हैं, जिनसे भारतीय समाज ही नहीं आलोकित होता बल्कि समूची दुनिया उनकी कृतज्ञ है।

हिन्दी साहित्य का ऐसा गतिमय व्यक्तित्व जिसने अपने किशोर जीवन में सन् 50 के आस-पास एक भावुक गीतकार के रूप में साहित्यिक जीवन की शुरुआत की, पर गजानन माधव मुक्तिबोध, हरिशंकर परसाई के विद्युत-स्पर्श के बाद 1960 के आस-पास हिन्दी के प्रखरतम आधुनिक कवि के रूप में असाधारण ख्याति अर्जित की थी।

उन्होंने सन् 84 के चुनावों के दौरान भी किया। देश में जब पंजाब आन्दोलन के दौरान आतंकवाद का खौफ छाया हुआ था, तब श्रीकान्त ने उसका पार्टी प्रवक्ता की हैसियत से तीव्र विरोध किया जिसके चलते उन्हें आतंकवादियों की धमकियाँ सुननी पड़ीं। वे बाकायदा आतंकवादियों की हिट लिस्ट में थे। लेकिन श्रीकान्त अपने मनसूबों से पीछे नहीं हटे। सन् 84 में ही पार्टी ने उन्हें अपना प्रमुख महासचिव बनाया। इससे पार्टी और देश की राजनीति में उनका कद शीर्ष राजनीतिज्ञों में गिना जाने लगा पर उनकी राजनीतिक और बौद्धिक लोकप्रियता पार्टी के भीतर कुछ ओछे नेताओं को रास नहीं आई। लिहाजा श्रीकान्त के ख़िलाफ़ भीतर ही भीतर शक्तियाँ लामबन्द हुईं, जिससे श्रीकान्त बेखबर रहे। फल यह हुआ कि पार्टी आलाकमान ने स्वस्थ्य न होने के बहाने से अकारण उन्हें महासचिव और पार्टी प्रवक्ता पद से हटा दिया।

राजेन्द्र माथुर ने श्रीकान्त के इस राजनीतिक अवसान पर बहुत सटीक टिप्पणी की है— ''इसमें सन्देह नहीं कि इंका के एक महासचिव के रूप में श्रीकान्त वर्मा एक शक्ति पुरुष बन गए। लेकिन उनके राजनीति में जाने से कवि और बुद्धिजीवी के रूप में उनकी छवि पर विपरीत प्रभाव पड़ा। न वे मूलत: एक राजनीतिक प्राणी थे और न पार्टी अथवा प्रदेश में उनके समर्थकों की फौज थी। श्रीकान्त वर्मा जैसा बुद्धिजीवी पार्टी के शीर्ष नेताओं को तो रास आता था लेकिन वह पार्टी का खाँटी नेता स्वयं न बन सका। वह अपनी बौद्धिकता का भी इस्तेमाल पार्टी में नहीं कर सका। जब श्रीकान्त वर्मा पार्टी प्रवक्ता बने तो वे यह भूलने लगे कि वे एक प्रखर बुद्धिजीवी होकर नहीं बल्कि आज्ञापालक होकर ही बच सकते हैं।''

श्रीकान्त वर्मा के साथ दिक्कत यही थी कि वे राजीव गाँधी के आज्ञापालक नहीं हो सकते थे। वे आज्ञापालक तो इन्दिरा गाँधी के भी नहीं हो सकते थे, जो उन्हें बहुत प्रिय थीं। यहाँ तक कि वे साहित्य की दुनिया में अज्ञेय सरीखे शीर्ष व्यक्तित्व के भी हमराही नहीं बन सके जिसके चलते उन्हें तीसरा सप्तक में शामिल नहीं किया गया। वे नई कविता के दौर में सबसे ज्यादा असहमति और जिरह अज्ञेय से करते थे। यह दूसरी बात है कि अज्ञेय ने श्रीकान्त के अवसान को निजी क्षति बताते हुए उन्हें हिन्दी के 'सतातन डिसेंट' का कवि कहा था। यही नहीं, अज्ञेय ने उनकी चिता में लेखकों की ओर से मुखाग्नि दी। इसलिए यदि श्रीकान्त मौजूदा राजनीति के जलसाघर में विफल होकर नितान्त अलग-थलग पड़ गए तो इसके पीछे उनका लेखकीय स्वाभिमान ही उत्तरदायी था जो किसी के सामने झुक नहीं सकता था। टूट सकता था जरूर और वह बुरी तरह टूटा, इस कदर टूटा कि जीवन से ही विदा हो जाना पड़ा। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ, श्रीकान्त की आकस्मिक मृत्यु में भारतीय राजनीति के बजबजाते नरक का बहुत बड़ा हाथ है जिसने एक अत्यन्त संवेदनशील और प्रखरतम साहित्यिक व्यक्तित्व को हिन्दी संसार से असमय छीन लिया। हिन्दी साहित्य का ऐसा गतिमय व्यक्तित्व जिसने अपने किशोर जीवन में सन् 50 के आस-पास एक भावुक गीतकार के रूप में साहित्यिक जीवन की शुरुआत की, पर गजानन माधव मुक्तिबोध, हरिशंकर परसाई के विद्युत-स्पर्श के बाद 1960 के आस-पास हिन्दी के प्रखरतम आधुनिक कवि के रूप में अपनी असाधारण ख्याति अर्जित की थी।

सन् 1984 में मगध की कविताओं से गुजरते हुए श्रीकान्त अपने जीवन की आखिरी सीढ़ियों पर जिस मन:स्थिति में पहुँच चुके थे वह रास्ता उनके सक्रिय राजनीति से तीव्र मोहभंग था, जहाँ वे अपने सजग और ईमानदार भरे नैतिक क्षोभ के साथ वर्तमान राजनीति और व्यवस्था से ऊब चुके थे और इस नतीजे पर भी पहुँचे कि यह व्यवस्था नाकाफी हो चुकी है। वहाँ से फिर लौटे साहित्य की ओर... लौटे पर देर हो चुकी थी। अमेरिका में कैंसर के स्लोन केटरिंग मेमोरियल अस्पताल में मृत्यु उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

साहित्य श्रीकान्त वर्मा का घर था और राजनीति उनके लिए बाहर निकले किसी व्यक्ति के लिए सड़क जैसी थी। यह सड़क गलत रास्ते की ओर मुड़ी या सही, इस पर विवाद की पर्याप्त गुंजाइश है। पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह सड़क उनका घर नहीं थी। सड़क कभी आदमी का घर नहीं होती। यद्यपि श्रीकान्त अपनी काव्य स्वीकारोक्ति में कहते भी हैं—

चाहता तो बच सकता था
मगर कैसे बच सकता था
जो बचेगा
कैसे रचेगा? (हवन)

कथा-साहित्य

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

अमोक्ष
[कहानी-संग्रह]
प्रतिभा राय
अनुवाद : राजेन्द्र प्रसाद मिश्र
मूल्य : 280 रु. मात्र

प्रतिभा राय की कहानियाँ और उपन्यास सामाजिक बुराइयों और अन्याय की जमकर निन्दा करते हैं। वे हमें अन्धी धार्मिकता के पीछे की बुराइयाँ दर्शाते हैं, जोकि मानव-बन्धुत्व के हमारे प्रयासों को नकारते हैं। यद्यपि सच्ची आध्यात्मिकता में विश्वास उनके लेखन ने हमेशा स्वीकारा है, उनकी बहुत सारी कहानियाँ रूढ़िवादी परम्परा और अधिकारिता के दावों के बारे में सवाल उठाती दिखाई देती हैं।

तंग गलियों से भी दिखता है आकाश
[कहानी-संग्रह]
चयन व अनुवाद : यादवेन्द्र
मूल्य : 340 रु. मात्र

तंग गलियों से भी दिखता है आकाश दुनिया के विभिन्न देशों की करीब ऐसी दो दर्जन महिला कथाकारों की ऐसी कहानियों का संग्रह है, जो लगभग दुनिया के सारे महाद्वीपों की बात कहती हैं। विभिन्न देशों की ये महिला कथाकार उथल-पुथल भरी किन-किन नई परिस्थितियों से गुजर कर नयी दृष्टि के साथ दुनिया की अत्यंत मार्मिक तस्वीर सामने रख रही हैं, यह संकलन उन कहानियों का एक अनोखा गुलदस्ता है।

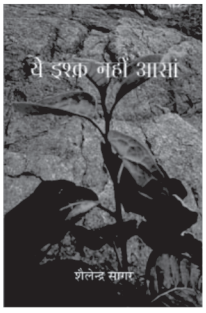

ये इश्क़ नहीं आसां
[उपन्यास]
शैलेन्द्र सागर
मूल्य : 150 रु. मात्र

'निमिषा,' उन अन्तरंग क्षणों में मैंने उसके बालों में उँगलियाँ फेरते हुए कहा, 'जब से तुम मेरे जीवन में आयी हो मैंने अपनी जिन्दगी में एक नयी तरह की उत्तेजना को महसूस किया है। सिर्फ आवाज और तुमसे बातें करके ही तुम्हारा नशा मुझे तरंगित करने लगा था और उस सरसरी मुलाकात ने तो मुझे मदहोश कर दिया। जादूगरनी हो तुम।'
'कम तुम भी नहीं हो, प्रमेश। सोच भी नहीं सकती थी कि मेरी जिन्दगी में ऐसा रोमांचक मोड़ भी आएगा। कोई पुरुष मुझे इस तरह खींच सकता है और वो भी इस हद तक...। तुम्हारा

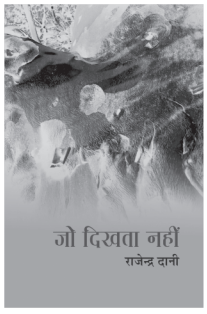

जो दिखता नहीं
[उपन्यास]
राजेन्द्र दानी
मूल्य : 270 रु. मात्र

जीवन की विकट दुरूहताओं की अपने अनोखे कथा शिल्प से मनोवैज्ञानिक पड़ताल राजेन्द्र दानी की सृजनात्मकता का निकष है। अपने इस आख्यान में राजेन्द्र दानी ने न केवल इस काल विशेष में अवतरित भूमंडलीकरण और उदारीकरण के दौर में चिन्हित इन भीषण, भयावह जीवन स्थितियों के नेपथ्य में निहित अदृश्य कारकों की शिनाख़्त की है, बल्कि उसे अपने रचना कौशल से सम्प्रेषणीय और पठनीय भी बनाया है।

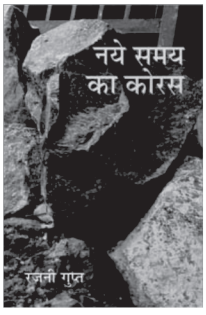

नये समय का कोरस
[उपन्यास]
रजनी गुप्त
मूल्य : 400 रु. मात्र

''आज के नौनिहाल हर क्षेत्र में महारत हासिल कर रहे हैं पर उनकी ओर सीना फुलाकर देखनेवाले नही देख पाते कि उनकी दिक्कत क्या है? विशेष रूप से लड़कियाँ। लड़कियों ने अपने को सिद्ध किया है। अब पहलेवाली पीढ़ी की तरह कोई नही कह सकता कि वे कमतर हैं और न कोई यह कह सकता कि लड़की होने के कारण उनका प्रमोशन हो जाता है। परन्तु यह बात परिवार बनाने के लिए भारी है। पति और बच्चे का टास्क लेना वे अफोर्ड नही कर सकतीं। नव्या की मुश्किलें देखकर नेहा विवाह के विषय में सोचती तक नहीं।''

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

मज़बूती का नाम महात्मा गाँधी

पुरुषोत्तम अग्रवाल

हिन्दी के वरिष्ठ आलोचक, लेखक और चिन्तक हैं। अकथ कहानी प्रेम की : कबीर की कविता और उनका समय, कबीर: साखी और सबद, संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध जैसी अनेक पुस्तकों के लेखक पुरुषोत्तम अग्रवाल अपने व्याख्यानों के लिए भी जाने जाते हैं। वह नाकोहस नामक एक प्रयोगधर्मी उपन्यास भी लिख चुके हैं। एक फिल्म समीक्षक और स्तम्भकार के रूप में भी उनका काम अहम माना जाता है।

मो.: 9810411679

गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान द्वारा आयोजित वार्षिक गाँधी व्याख्यान 2005 मैंने दिया था। विषय का चुनाव मेरा ही था—मजबूती का नाम महात्मा गाँधी। बचपन से सुनते आ रहे थे, अभी भी सुनते ही हैं कि मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी। यह विषय इसी मूर्खता का प्रतिवाद करने के लिए चुना गया था। आज पन्द्रह बरस बाद अपने मन के भीतर तो यह धारणा दृढ़ होती ही गई है, सन्तोष यह देखकर होता है कि बहुत सारे लोग मानने और कहने लगे हैं कि मजबूरी का नहीं मज़बूती का नाम महात्मा गाँधी। कहने की ज़रूरत नहीं कि इस मज़बूती का देह से कोई लेना-देना नहीं। देह से तो गाँधीजी किसी दोस्त को गौरैया से लगते थे तो कोई मज़ाक़ करते थे कि आपको तो मैं एक हाथ से उठाकर जेब में रख सकता हूँ। मज़बूती थी आत्मा की और जीवन के एक मूलभूत सच का साक्षात्कार कर लेने के आत्मविश्वास की। उनके निकटतम लोग भी गाँधीजी की कई मान्यताओं और गतिविधियों से हमेशा सहमत नहीं हो पाते थे। बिहार के भूकम्प को छुआछूत के पाप की सज़ा बतलाने वाले उनके बयान की टैगोर ने भी कठोर आलोचना की थी और नेहरू ने भी। जवाहरलाल जी के साथ तो गाँधीजी का सम्बन्ध बहुत ही रोचक था। कई मामलों में गाँधीजी की सार्वजनिक आलोचना करने के बावजूद, नेहरू उन्हीं से कह सकते थे कि, ''कई बार लगता है कि मैं किसी अनजान देश में भटक गया हूँ, अन्धकार में ठोकरें खा रहा हूँ, ऐसे में बस आप ही हैं जो रास्ता दिखाते हैं।''

दूसरी ओर, सुभाष बोस अँग्रेज़ी राज के विरुद्ध जर्मनी और जापान की मदद से लड़ रहे थे, सारे काँग्रेस नेतृत्व की राय के ख़िलाफ़ जाकर उन्होंने अपना रास्ता तय किया था। और उन्होंने ही सबसे पहले गाँधीजी को 'फादर ऑफ अवर नेशन' कहा था। नेहरू-बोस हों या टैगोर, गाँधीजी की किसी बात पर आलोचना करने वाले सभी गम्भीर लोग दो बातों से वाक़िफ थे—एक गाँधीजी की निजी निःस्पृहता; दूसरी, उनके सरोकारों की दूरगामिता। ज़ाहिर है कि यह दूरगामिता सबसे ज़्यादा साफ़ तौर से गाँधीजी की अहिंसा-दृष्टि में ही दिखती है।

अहिंसा और कायरता को पर्यायवाची मानने का गाँधीजी ने कई बार कठोर प्रतिवाद किया ही था, उन्होंने अहिंसा की धारणा पर गहरा दार्शनिक मनन भी किया था। उनकी बहुत सारी बातों से असहमति के साथ कहा जा सकता है कि हिंसा-अहिंसा के सवाल पर गाँधीजी का मनन उन्हें निरन्तर प्रासंगिक बनाए हुए है। यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि हिंसा को अपने आपमें अलग से गम्भीर

सुभाष बोस अँग्रेज़ी राज के विरुद्ध जर्मनी और जापान की मदद से लड़ रहे थे, सारे काँग्रेस नेतृत्व की राय के ख़िलाफ़ जाकर उन्होंने अपना रास्ता तय किया था। और उन्होंने ही सबसे पहले गाँधीजी को 'फादर ऑफ अवर नेशन' कहा था। नेहरू-बोस हों या टैगोर, गाँधीजी की किसी बात पर आलोचना करने वाले सभी गम्भीर लोग दो बातों से वाक़िफ थे—एक गाँधीजी की निजी निःस्पृहता; दूसरी, उनके सरोकारों की दूरगामिता। ज़ाहिर है कि यह दूरगामिता सबसे ज़्यादा साफ़ तौर से गाँधीजी की अहिंसा-दृष्टि में ही दिखती है।

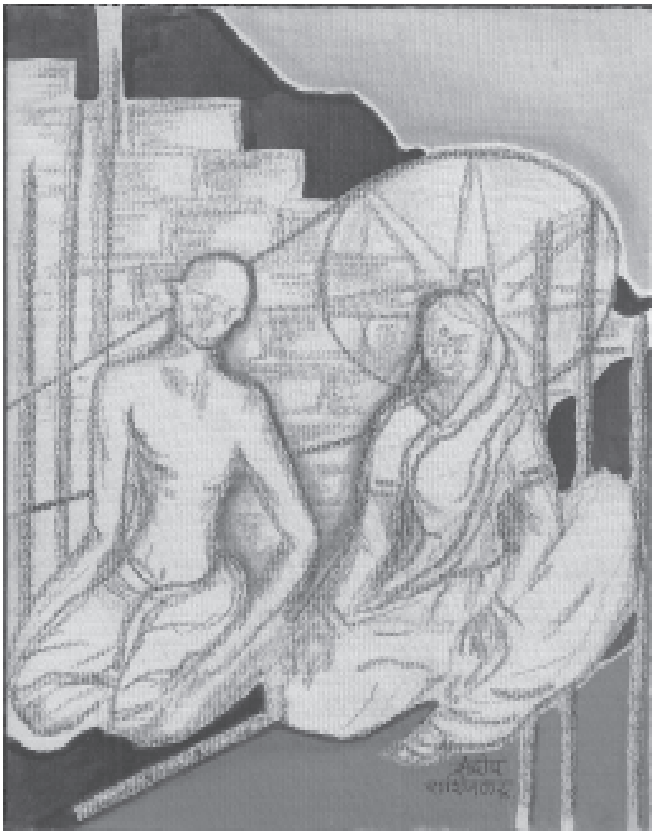

गाँधीजी ने आत्मकथा पिछली सदी के तीसरे दशक में लिखी थी, जबकि वे विश्वविख्यात हो चुके थे। आत्मकथा को सत्य के प्रयोग उन्होंने बिल्कुल सही कहा था, और मूलभूत सत्य का वह साक्षात्कार भी दर्ज किया था, जिसका ज़िक्र मैंने ऊपर किया है। गाँधीजी लिखते हैं, ''हिंसा की होली की लपेट में आए हुए हम पामर प्राणी हैं। जीवै जीवाहारा की बात ग़लत नहीं है। मनुष्य क्षण भर भी बाह्य हिंसा के बिना नहीं जी सकता। खाते-पीते, उठते-बैठते सब कामों में इच्छा से या अनिच्छा से कुछ न कुछ हिंसा वह करता ही रहता है। उस हिंसा से निकलने का उसका महाप्रयास हो, उसकी भावना में करुणा हो, वह छोटे से छोटे प्राणी का भी नाश न चाहे, यथाशक्ति उसे बचाने की कोशिश करे, तो वह अहिंसा का पुजारी है।

चिन्तन का विषय बनाना—यह भारतीय चिन्तन परम्परा की खूबी रही है। अन्य प्राचीन परम्पराओं में, चीन, यूनान आदि में राजसत्ता पर, नागरिक जीवन पर गहरा विचार है, लेकिन हिंसा अपने आप में विचार का विषय वहाँ नहीं है। भारत में बुद्ध और महावीर तो विख्यात ही हैं अपने अहिंसा आग्रह के लिए, लेकिन 'अहिंसा परमो धर्मः' यह उक्ति बुद्ध या महावीर की नहीं, महाभारत की है। गाँधीजी टाल्स्टॉय और रस्किन से भी बहुत प्रभावित थे। बाइबिल को वे टाल्स्टॉय दृष्टि से ही पढ़ते थे। चिन्तन-परम्पराओं के इस संवाद से ही गाँधीजी का अपना मौलिक अहिंसा-विचार सम्भव हुआ था। मौलिकता का एक पहलू तो यही था कि तब तक जो साधनाएँ नितान्त व्यक्तिगत मानी जाती थीं, गाँधीजी ने उन्हें सामूहिक बनाया। आपके व्यक्तिगत जीवन में संयम की बात बहुत से सन्त-महात्मा करते आए थे, इसे स्वाधीनता आन्दोलन का उपकरण बना देने वाले गाँधीजी पहले व्यक्ति थे।

गाँधीजी ने आत्मकथा पिछली सदी के तीसरे दशक में लिखी थी, जबकि वे विश्वविख्यात हो चुके थे। आत्मकथा को सत्य के प्रयोग उन्होंने बिल्कुल सही कहा था, और मूलभूत सत्य का वह साक्षात्कार भी दर्ज किया था, जिसका ज़िक्र मैंने ऊपर किया है। गाँधीजी लिखते हैं, ''हिंसा की होली की लपेट में आए हुए हम पामर प्राणी हैं। जीवै जीवाहारा की बात ग़लत नहीं है। मनुष्य क्षण भर भी बाह्य हिंसा के बिना नहीं जी सकता। खाते-पीते, उठते-बैठते सब कामों में इच्छा से या अनिच्छा से कुछ न कुछ हिंसा वह करता ही रहता है। उस हिंसा से निकलने का उसका महाप्रयास हो, उसकी भावना में करुणा हो, वह छोटे से छोटे प्राणी का भी नाश न चाहे, यथाशक्ति उसे बचाने की कोशिश करे, तो वह अहिंसा का पुजारी है। उसकी प्रवृत्ति में संयम की वृद्धि होगी। उसकी करुणा बढ़ती जाएगी। पर कोई देहधारी बाह्य हिंसा से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकता।''

इस कथन पर जरा गहराई से, व्यापक फलक पर गौर करें तो गाँधीजी की प्रासंगिकता ऐसा स्वयंसिद्ध लगने लगेगी, जिसे बार-बार कहना ज़रूरी नहीं। ग्लोबल वार्मिंग अब सचाई है, साइंस फ़िक्शन नहीं। और कितना उपभोक्तावाद झेलने की सामर्थ्य बची है पृथ्वी में? कोविड से निबटने का उपाय भले ही हमारी विश्व-सभ्यता के पास न हो, इतने परमाणु हथियार अवश्य हैं कि एक बार नहीं कई बार दुनिया नष्ट की जा सके। इस समय सारी दुनिया में सांस्कृतिक-धार्मिक पहचानों की राजनीति का बोलबाला हो और विभिन्न सभ्यताओं के बीच संवाद को भुलाकर केवल संघर्ष ही याद रखे जा रहे हैं। आत्म के दुख से सब भरे हुए हैं, अन्य के दुख को सुनने समझने की गुंजाइश ही जैसे नहीं बची है।

ऐसे में कोई उपाय है क्या—सिवा अपनी ज़रूरतों और फैंटेसियों पर क़ाबू पाने के, दूसरे के दुख के प्रति करुणा को सहज स्वभाव बनाने के? अहिंसा की उपरोक्त परिभाषा याद रखें तो समझ जाएँगे कि मार्टिन लूथर किंग ने क्यों कहा था, ''अब बात अहिंसा और हिंसा में से एक को नहीं बल्कि अहिंसा और सर्वनाश में से एक को चुनने की है।''

(प्रस्तुति : सुधांशु गुप्त)

प्रोफेसर सुधीर चन्द्र प्रख्यात इतिहासकार, चिन्तक और गाँधी एक असम्भव संभावना के लेखक भी हैं। गाँधी पर उनका बहुत काम है। उन्होंने गाँधी के उपवास पर भी लेख लिखे हैं। आधुनिक भारत की सोच पर औपनेविशक इतिहास के असर पर उनका काम महत्त्वपूर्ण है। उनकी अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकों में हिन्दू हिन्दुत्व हिन्दुस्तान, गाँधी के देश में, बुरा वक्त अच्छे लोग शामिल हैं।

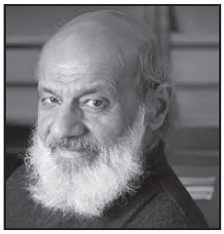

गाँधी की असम्भव अनिवार्यता

सुधीर चन्द्र

कल तक दक़ियानूसी और वाहियात लगने वाली गाँधी की कोई बात अगर आज सार्थक और ज़रूरी लगने लगे तो सचेत हो जाना चाहिए। सोचना चाहिए कि क्या था कि इसी सार्थक और ज़रूरी बात को नकारते वक़्त हमने अपने नकार की पड़ताल तक नहीं की। गाँधी की बातों का सार्थक और ज़रूरी लगना संकट की चेतावनी होता है। संकट के कारण ही उनके अदृश्य अर्थ उजागर होने लगते हैं।

गाँधी अपने आख़िरी साल-डेढ़ साल में बहुत दुखी और अकेला महसूस करने लगे थे। कोई उनकी सुनता नहीं था, और वह अपना 'अरण्यरोदन' —यह उन्हीं का शब्द है— चलाए जाते थे। कारण कि उन्हें विश्वास था कि मानव जाति विनाश के रास्ते पर जा रही है और उस से बचने के लिए उनके बताए रास्ते पर चलना ही होगा। उनका अरण्यरोदन हिन्दुस्तान के लिए ही नहीं, समस्त दुखी जगत के लिए था।

दुखी जगत— यह भी गाँधी के ही शब्द हैं— कभी इतना दुखी और संकटग्रस्त नहीं था जैसा आज है। गाँधी भी कभी ऐसी शिद्दत से प्रासंगिक नहीं लगे जैसे कि आज लग रहे हैं।

शब्द-सीमा की विवशता है,सो गाँधी की केवल दो ऐसी बातों की ओर इशारा करूँगा जो आज मानव के लिए अनिवार्य हो गई हैं। वैसे— विचित्र नियति है मानव की—अमल इनमें से एक पर भी नहीं होने वाला।

गाँधी ने हिन्द स्वराज में आधुनिक औद्योगिकी सभ्यता के ख़तरे के प्रति आगाह करते हुए एक वैकल्पिक सभ्यता की रूपरेखा प्रस्तुत की। इस सभ्यता का मर्म है स्वदेशी। गाँधी का सपना था कि आज़ाद हिन्दुस्तान इस वैकल्पिक सभ्यता को अपनाए और बाकी जगत को भी वैसा करने की प्रेरणा देकर मानव को समूहिक विनाश से बचाए।

गाँधी की स्वदेशी का आधार है यथासम्भव स्थानीय संसाधनों से जीवन निर्वाह। इस के शाब्दिक अर्थ के कारण स्वदेशी को देश से और संकीर्ण राष्ट्रवाद से जोड़ दिया गया। बाज़ारवादियों ने इसे संरक्षणवाद के आधार पर ख़ारिज कर दिया। गाँधी की स्वदेशी की मूल भावना संकीर्ण नहीं है। उनके ही शब्दों में, उसका 'निचोड़ यह है कि मनुष्य जीवन के लिए जितनी जरूरत की चीज है, उस पर निजी काबू होना चाहिए।' साथ ही वह यह भी जोड़ देते हैं: 'मैं ऐसी बहुत सी चीज का खयाल करा सकता हूँ जो बड़े पैमाने पर बनेगी।'

वैश्विक एकता का जाल रच अपने अनन्त मुनाफ़े के लिए मानव और प्रकृति का अबाध शोषण करने वाली व्यवस्था से छुटकारा स्वदेशी जैसे विकल्प से ही मिल सकता है। सादा सरल जीवन जीने वाली असंख्य इकाइयों से बने एक ऐसे संसार का विकल्प जहाँ न मानव का दोहन है न प्रकृति का। स्वदेशी वह 'लोकल' नहीं है जिसका नाम ले हम चीन जैसी 'ग्लोबल' शक्ति बन जाना चाहते हैं।

गाँधी की दूसरी ज़रूरी बात है एक ईमानदार पारदर्शी राजनैतिक जीवन की अपरिहार्यता। कोविड-19 एक ऐसा संकट है जिसमें सच न केवल सैद्धान्तिक बल्कि व्यावहारिक आवश्यकता भी है। इस बीमारी का कारण हो, उसका फैलाव हो, उससे मरने और बचने वालों के, डॉक्टरों, नर्सों, अस्पतालों के, या दीगर ज़रूरी आँकड़े हों, इनमें से किसी में भी सच से खिलवाड़ घातक है। हो वही रहा है।

ईमानदारी को अपरिहार्य बना देने वाले इस संकट में भी हम होश में नहीं आ रहे। सफ़ेद झूठ हमारे सार्वजनिक जीवन में रच-बस गया है। उदाहरण बेशुमार हैं। सिर्फ़ एक याद कर लीजिए। लॉकडाउन से प्रवासी मज़दूरों की क्या दुर्गति हुई सबने देखा। पर हमारी सरकार ने हलफ़नामा दिया कि एक भी मज़दूर अपने गाँव लौटने के लिए बाहर नहीं निकला है। हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने उस हलफ़नामे को सोलह आने सच माना। तदनन्तर अनगिनत पढ़े-लिखे लोग अपनी राजनैतिकि वफ़ादारी जताने-भुनाने के लिए इस झूठ को सच साबित करने लगे।

निजी ज़िन्दगी हो या राजकाज, हर स्तर पर ईमानदारी और पारदर्शिता चाहते थे गाँधी। जानते थे कि झूठ से फ़ौरी फ़ायदे का भ्रम तो हो सकता है पर उसके दुष्परिणामों से बचा नहीं जा सकता। केवल एक दृष्टान्त। बिहार में, जहाँ काँग्रेसी शासन था, मुसलमानों के विरुद्ध भयंकर हिंसा फूट पड़ी। गाँधी पहुँच लिए वहाँ। देखा कि काँग्रेसियों का बड़ा हाथ रहा है हिंसा में। बड़ी नाजुक घड़ी थी। गाँधी खुले आम काँग्रेसियों को साम्प्रदायिक हिंसा के लिए ज़िम्मेदार ठहराते तो निश्चित था कि मुस्लिम लीग देश के बँटवारे के लिए उसका इस्तेमाल करेगी। फिर भी खुलकर बोले और शान्ति ले आए बिहार में।

हम नहीं सोचेंगे कल के आगे। उसी रास्ते चलेंगे जिस में कोविड-19 जैसे संकट अवश्यम्भावी हैं। आश्वस्त कि विज्ञान—इन संकटों का मूल— मुक्ति दिलाता रहेगा हर संकट से।

(प्रस्तुति : सुधांशु गुप्त)

वरिष्ठ पत्रकार, कहानीकार, आलोचक और अनुवादक प्रियदर्शन की अनेक किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। कहानी संग्रह, संस्मरण, लेख संग्रह के अलावा उनका उपन्यास भी प्रकाशित हो चुका है। वह सलमान रुश्दी के चर्चित उपन्यास 'आधी रात की सन्तानें' का अनुवाद भी कर चुके हैं। लेखकीय व्यस्तताओं के साथ-साथ प्रियदर्शन खूब पढ़ते भी हैं।

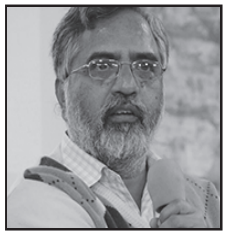

सतह पर नहीं होता अहसास

प्रियदर्शन

मैं अरसे से यह मानता रहा हूँ कि गाँधी आज भी प्रासंगिक हैं और रहेंगे। दरअसल उनकी प्रासंगिकता का एहसास सतह पर नहीं होता। सतह पर हर तरफ भ्रष्टाचार दिखता है, सांप्रदायिकता दिखती है, तरह-तरह का पाखंड दिखता है। इस बात के ढेर सारे सबूत दिखते हैं कि हमने गाँधी को अप्रासंगिक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। गाँधी का नाम बस एक पाखंड की तरह लेते हैं, एक कर्मकांड की तरह लेते हैं। अब तो इस बात को लेकर बहुत सारी फिल्में आ चुकीं और किताबें भी लिखी जा चुकीं कि हमने गाँधी को कैसे खो दिया है, कैसे हम गाँधी को बार-बार मारते रहे हैं।

लेकिन कुछ है जिसकी वजह से गाँधी बार-बार जी उठते हैं। वे ख़ुद कहा करते थे कि सवा सौ साल जिएँगे और अपनी क़ब्र से आवाज़ देते रहेंगे। तमाम भ्रष्टाचार, पाखंड या सांप्रदायिकता के बावजूद गाँधी जैसे बार-बार हमारी चेतना पर दस्तक देते हैं। बल्कि गाँधी का नाम लेना आज की तारीख़ में एक मजबूरी है। क्योंकि आज की तारीख़ में जो पाँच सबसे बड़े मुद्दे हैं वे जैसे गाँधी विचार की कोख से ही निकलते हैं। दुनिया भर में मानवाधिकार की लड़ाइयों को गाँधी के नज़रिए से काट कर देखा नहीं जा सकता। जो सांस्कृतिक बहुलता का मुद्दा है, वह बड़े पैमाने पर गाँधी विचार का हिस्सा है। यहाँ तक कि जिसे हम पर्यावरण का मुद्दा कहते हैं, उसके बीज भी गाँधी में मिलते हैं। अघाए उपभोक्तावाद के ख़िलाफ़ गाँधी हमेशा किफ़ायत की सलाह देते रहे और साम्प्रदायिकता के ख़िलाफ़ तो जीवन भर लड़ते रहे। इसके अलावा दुनिया के कई बड़े आन्दोलनों पर गाँधी की छाया रही है। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के ख़िलाफ़ लड़ाई तो सवा सौ साल पहले उन्होंने ही छेड़ी थी।

लेकिन ये सारी लड़ाइयाँ बताती हैं कि गाँधी का रास्ता आसान रास्ता नहीं था। मानवाधिकार के मोर्चे लहूलुहान हैं, उपभोक्तावाद अपने चरम पर है, साम्प्रदायिकता बिल्कुल अट्टहास कर रही है, रुग्ण राष्ट्रवाद सांस्कृतिक बहुलता को ख़ारिज करने पर तुला है और पर्यावरण की सारी फिक्र औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा में धुआँ-धुआँ हुई जा रही है। ऐसे में हम कैसे कह सकते हैं कि गाँधी अब भी प्रासंगिक बने हुए हैं। दरअसल इस सवाल को कुछ धीरज के साथ और कुछ विस्तृत परिप्रेक्ष्य में भी समझना होगा।

ध्यान से देखें तो हमारे पास दो गाँधी हैं— एक आसान गाँधी और एक मुश्किल गाँधी। आसान गाँधी प्रतिरोध का एक मानवीय व्याकरण सिखाते हैं। 'लगे रहो मुन्ना भाई' जैसी फिल्में इसी आसान गाँधी को केन्द्र में रखकर बनाई जाती हैं। गाल पर थप्पड़ खा लेने वाला और विरोधियों को गुलाब बाँटने वाला यह गाँधीवाद आकर्षक भी है और ख़तरनाक भी नहीं। साफ़-सफ़ाई या स्वच्छता इसी आसान गाँधी के कुछ मुश्किल रूप हैं। निश्चय ही गाँधी के ये दोनों रूप भी हमें कुछ मानवीय और कुछ सभ्य बनाते हैं। यह सलीका भी छोटा नहीं कि हम अपने व्यवहार को हिंसा और आक्रामकता से दूर रखें।

लेकिन एक मुश्किल गाँधी भी हैं जो हमारे ज़्यादा मुश्किल इम्तिहान लेते हैं। वे सलाह देते हैं कि हम साम्प्रदायिक दंगों के बीच अकेले घूमें, अपनी आर्थिक जरूरतें कम से कम करें, बड़ी मशीनों से दूर रहें और सादगी को जीवन की शर्त बनाएँ। दरअसल यह आर्थिक मोर्चा ऐसा है, जहाँ हम गाँधी से कोसों आगे निकल चुके हैं। लौटकर गाँधी तक आना सम्भव नहीं लगता।

एक सामाजिक मोर्चा भी है, जहाँ गाँधी मुश्किल में दिखते हैं और हमें भी मुश्किल में डालते हैं। एक चुनौती गाँधी को उस अविश्वास से बाहर लाने की है, जिसमें हमने उन्हें डाल दिया है। देश में गाँधी बनाम अम्बेडकर की जो बहस चल रही है, उसमें अविश्वास की दीवारों को गिराकर आपसी भरोसे का पुल बनाने की ज़रूरत है। गाँधी अगर इस देश की आत्मा हैं तो अम्बेडकर इस देश का मस्तिष्क हैं।

लेकिन कुल मिलाकर गाँधी को भूलने का संकट हमारी सभ्यता का भी संकट है। यह अनायास नहीं है कि हम जितने भी आधुनिक हुए जा रहे हैं, उतने ही आधुनिकता की विडम्बनाओं से परिचित हुए जा रहे हैं। पूँजीवाद में जैसे-जैसे हमारा विश्वास बढ़ता जा रहा है, हमारी आर्थिक असमानता भी बढ़ती जा रही है। अन्ततः समाज को इस अघाए हुए उपभोग से बाहर आना होगा। दुनिया में कई देशों में छोटे-छोटे समूह इसकी शुरुआत भी कर चुके हैं। यह एहसास लगातार बड़ा हो रहा है कि यह आधुनिकता आत्मघाती साबित हो रही है। इससे बचने के लिए जब हम किसी वैकल्पिक आधुनिकता का रास्ता खोजेंगे तो बहुत सम्भव है कि हम गाँधी की ओर ही लौटें।

(प्रस्तुति : सुधांशु गुप्त)

युवा कवि और आलोचक अच्युतानन्द की कविताएँ और आलोचनात्मक गद्य अनेक पत्र पत्रिकाओं में नियमित छपते हैं। उनका कविता संग्रह—आँख में तिनका: इस बार शब्द उलझे नहीं? प्रकाशित हो चुका है। उत्तर मार्क्सवादी विचारकों पर उनकी आलोचना की एक किताब—बाजार के अरण्य में— प्रकाशित हो चुकी है। उनकी कविताओं में आम आदमी की तकलीफ़ को सुना जा सकता है।

प्रतिरोध आत्म चेतना का एक जागृत रूप

अच्युतानन्द मिश्र

भारत जैसे देश में गाँधी की प्रासंगिकता कभी खत्म नहीं हो सकती। ऐसा इसलिए कि जिसे आज हम भारत कहते और समझते हैं, उसकी व्यावहारिक अवधारणा गाँधी और राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच से ही निकली है। तो जब तक यह देश है और इस देश के लोग हैं, गाँधी की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हो सकती। हम 19वीं सदी में एक भिन्न भारत में रह रहे थे। हमारी चेतना में जो भारत की संकल्पना है, भले आदर्श रूप में ही सही, वह गाँधी की संकल्पना ही है, जिसे उन्होंने राष्ट्रीय संग्राम के दौरान विकसित किया। गाँधी की भारत की संकल्पना का क्या अर्थ है? यह किस अर्थ में आज महत्त्वपूर्ण है या कि आज उसकी प्रासंगिकता क्या है? इन प्रश्नों की तलाश ही सही अर्थों में हमे गाँधी के निकट लाती है। ऐसे समय में, जब हम समाज से समूह में और समूह से व्यक्ति के रूप में घटते जा रहे हैं, गाँधी की परिकल्पना ही हमें व्यक्ति से समूह, समूह से समाज और समाज से राष्ट्र में बदल सकने में सक्षम है। गाँधी की परिकल्पना का अर्थ है— बहु-आयामिता का समावेश। फिर चाहे वह बहु-आयामिता धर्म से सम्बद्ध हो, जाति से, लिंग से या भाषा से।

गाँधी ने एक ऐसे राष्ट्र की परिकल्पना रची, जिसकी नागरिकता का एकमात्र प्रमाण मनुष्य होना है। सतत बेहतर की ओर अग्रसर, अधिक मानवीय और सहज। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि अगर आज गाँधी जीवित होते तो हमारे आधार कार्ड पर हमारी पहचान के तौर पर लिखा होता मनुष्य।

गाँधी ने भारत के अतीत का निर्माण वर्तमान के धरातल पर किया, इसलिए जिसे हम अतीत के आदर्श, त्याग और मूल्यबोध के तौर पर देखते हैं, उसकी ज़मीन हमारा वर्तमान ही है। यही वजह है कि आज भी इस देश के नागरिक अपने नेताओं से, न्यायाधीशों से अधिकारियों से सहज रूप में सच्चाई की उम्मीद करते हैं। इस सहज कामना के पीछे गाँधी ही थे और गाँधी ही हैं। गाँधी इस अर्थ में आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि अभी भी इस देश के लोगों में बेहतर होने, सहज होने और सच्चे होने के मूल्य बचे हैं। कहना न होगा कि आज भी लोग इन मूल्यों के लिए संघर्ष करते हैं, आन्दोलन करते हैं, जेल जाते हैं, झूठी साजिशों का शिकार बनते हैं, पुलिस की मार खाते हैं, लेकिन अपने रास्ते पर डँटे रहते हैं।

गाँधी प्रतिरोध के दर्शन को सिर्फ विरोध के रूप में नहीं देखते थे— उनके लिए प्रतिरोध आत्म चेतना का एक जागृत रूप था। इसलिए जो उनसे असहमत थे या उनसे अलग रास्ते पर चलना चाहते थे, वे भी उनके प्रभाव से मुक्त नहीं थे। गाँधी स्वयं भी लगातार बदल रहे थे। वे व्यवहार और सिद्धान्त के प्रश्न से लगातार संघर्ष कर रहे थे। चौरी चौरा की शुरुआत और उसके अन्त में जो लोग तात्विक विरोध देखते हैं या यह समझते हैं कि गाँधी ने हिंसा के बाद आन्दोलन वापस ले लिया, वह उनकी भूल थी। वे यह नहीं समझ पाते कि गाँधी का लक्ष्य आत्म चेतना को हर आन्दोलन के बाद एक नये स्तर तक ले जाना था। वे अँग्रेजों के लिए नहीं लड़ रहे थे। वे भारत के लिए लड़ रहे थे। जब गाँधी को यह लगा कि आन्दोलन की चेतना को अगले मुक़ाम तक ले जाने के लिए उसे वापस लेना चाहिए, उन्होंने ऐसा किया। वे प्रकट तौर पर विपरीत प्रतीत होती चीज़ों और घटनाओं को मिलाकर एक नया सामंजस्य विकसित कर रहे थे। ज्यों ही हम गाँधी को गाँधीवाद में बदलते हैं, हम कुछ लोगों को उनका विरोधी साबित करने लगते हैं। ऐसा करते हुए हम गाँधी के सर्वसमावेशी चिन्तन को ही जाने-अनजाने नकारते हैं। क्या यह जरूरी है कि जो गाँधी से असहमत थे (वे असहमत होते हुए भी उन्हीं मूल्यों और स्वप्नों को पाना चाहते थे जिसे गाँधी) उन्हें हम गाँधी के विरोध में ही देखें। क्या

सुभाष बोस अँग्रेज़ी राज के विरुद्ध जर्मनी और जापान की मदद से लड़ रहे थे, सारे काँग्रेस नेतृत्व की राय के ख़िलाफ़ जाकर उन्होंने अपना रास्ता तय किया था। और उन्होंने ही सबसे पहले गाँधीजी को 'फादर ऑफ अवर नेशन' कहा था। नेहरू-बोस हों या टैगोर, गाँधीजी की किसी बात पर आलोचना करने वाले सभी गम्भीर लोग दो बातों से वाक़िफ थे—एक गाँधीजी की निजी निःस्पृहता; दूसरी, उनके सरोकारों की दूरगामिता। ज़ाहिर है कि यह दूरगामिता सबसे ज़्यादा साफ़ तौर से गाँधीजी की अहिंसा-दृष्टि में ही दिखती है।

भगत सिंह और गाँधी या अम्बेडकर और गाँधी जैसे विपरीत युग्म बना देने से हमारी भारतीयता की अवधारणा अधिक स्पष्ट और मूर्त होती है? क्या यह यूरोपीय वर्चस्व की चेतना को ही स्वीकारना नहीं होगा?

गाँधी का महत्त्व इस बात में है कि उन्होंने भारत को वर्चस्ववादी चेतना का विरोध करना सिखाया, लेकिन ऐसा करते हुए वे विपरीत बनने या संघर्ष को बाइनरी में बदलने की प्रक्रिया को नहीं अपनाते। गाँधी की प्रयोगशीलता का अर्थ था, दर्शन और सामाजिक चेतना के बीच सम्बन्ध की तलाश। इस तलाश में सम्भव है कि कोई उनसे असहमत होते हुए भगत सिंह या अम्बेडकर या नेहरू की तरह सोचने लगे, क्या इसे गाँधी के विरुद्ध रखकर विश्लेषित किया जाना चाहिए? क्या यह गाँधी की सफलता नहीं कि वे दर्शन को सामाजिक चेतना के तमाम समकालीन रूपों से जोड़ने का विवेक सामने रखते हैं। गाँधी ने प्रतिरोध को बहु-आयामी बनाने पर बल दिया। उन्होंने बार-बार स्वयं को बदला। इस बदलने में आत्मालोचना का पक्ष भी था और आत्म मूल्यांकन की कोशिश भी।

इस बात से हम भला किस तरह इनकार कर सकते हैं कि कुछ शक्तियाँ भारत की इस वर्तमान अवधारणा से इत्तेफ़ाक नहीं रखतीं। ये शक्तियाँ चाहती हैं कि व्यापक जन समूह के मानस से गाँधी की छवि विस्मृत हो जाए। लोग गाँधी को भूल जाएँ। वे गाँधी की छवि धूमिल करने का प्रयत्न करती हैं, लेकिन जनता की स्मृतियों से गाँधी को निकाल फेंकना इतना आसान नहीं है। इसलिए वे लोगों की भाषा में, विचार में, जीवन दृष्टि में, गाँधी की छवि को मलिन करने का प्रयत्न करती हैं। यह कोई सामान्य परिघटना नहीं जिसके तहत हमारी भाषा के सामान्य रूप में—मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी—जैसे मुहावरे विकसित किए जाते हैं। किस तरह लोगों की चेतना पर, सहज विवेक पर हमला किया जाता है, यह उसी कोशिश का एक मूर्त रूप है। ये ताक़तें भारत और गाँधी से इत्तेफ़ाक नहीं रखतीं। ये वे लोग हैं जिन्हें यह भय सताता है कि गाँधी आज भी लोगों के बीच जीवित हैं—प्रासंगिक हैं—गाँधी का भूत उन्हें बेतरह परेशान करता है।

(प्रस्तुति : सुधांशु गुप्त)

पुस्तक प्रेमी, पुस्तक विक्रेता, पाठक परिवार के सदस्य

कृपया अपने बहुमूल्य आदेश हमें यहाँ भेजें—Email—sales@jnanpith.net

विष्णु उदयी—मो. : 09350536021 : मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान

राहुल श्रीवास्तव—मो. : 09415762662, 08287906862 : उत्तरप्रदेश, उत्तराखंड, केरल, तमिलनाडु, नेपाल, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल, जम्मू-कश्मीर, बिहार

उत्तम बनर्जी—मो. : 09432012836, 07044550835 : पं. बंगाल, उड़ीसा, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश, नार्थ ईस्ट

दिनेश भटनागर (प्रमुख विक्रय अधिकारी)—मो : 09350536020

भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

फोन : 011-24698417, 24626467, 41523423 विक्रय विभाग का एक्सटेंशन : 33, 34 व 38

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

अपने को समृद्ध करते हुए

जयशंकर

जन्म : 25 दिसम्बर, 1959। समाजशास्त्र में एम. ए., भारतीय स्टेट बैंक से ऐच्छिक सेवा निवृत्ति। रचनाएँ : शोकगीत, मरुस्थल, लाल दीवारों का मकान, बारिश, ईश्वर और मृत्यु, चेम्बर म्यूजिक, इमिगिंग द अदर (कथा ग्रुप) में कहानी का अँग्रेजी अनुवाद। कुछ कहानियों के मराठी, बांग्ला, मलयालम, अँग्रेजी और पोलिश में अनुवाद प्रकाशित। विजय वर्मा कथा सम्मान, श्रीकान्त वर्मा स्मृति पुरस्कार से सम्मानित।

मो.: 9421800071

दिल्ली— 15 जून, 1981

विदिशा से सुबह-सुबह दिल्ली पहुँचा। पहाड़गंज के एक फुटपाथ के किनारे एक सफेद रंग का घोड़ा अपनी आखरी साँसें गिन रहा था। उसके पास कोई भी नहीं था। महानगर में गर्मियों के एक दिन की ऐसी शुरुआत हुई। मन में आया कि क्या कोई घोड़ा इतने लोगों की आसपास बनी हुई उपस्थितियों के बावजूद, मेरे अपने छोटे से शहर में उस कस्बे में जहाँ मैं नौकरी कर रहा हूँ, इस तरह की बेबसी, इस किस्म की तड़प लिए हुए मर सकता है? ये अपने छोटे से शहर को छोड़ने, उसके बाहर कहीं रहने-ठहरने के शुरुआती दिन हैं।

शाम को यमुना के किनारे घूमता रहा था। इंडिया गेट के दोनों किनारों पर काफी भीड़ थी। रात में टेलीविजन पर सिद्धेश्वरी देवी का गाना सुना। सोने के पहले बरसाती में बैठे हुए निर्मल वर्मा का उपन्यास 'एक चिथड़ा सुख' पढ़ता रहा। 'वे दिन लाल टीन की छत' के बाद का उपन्यास।

दिल्ली— 16 जून, 1981

आज सुबह दस के आसपास ही नेशनल आर्ट गैलरी में था। पहली बार, अपने शहर की छोटी-सी गैलरी को देखने के बाद किसी इतनी विशालकाय कलाविथिका में। भूरे पत्थरों की इतनी लम्बी-चौड़ी इमारत। उसके परिसर के सामने के बाग में पेड़-पौधों की जीवन्त दुनिया। वहाँ खड़ी हुई पत्थर, मिट्टी, धातु की मूर्तियाँ, कलाकृतियाँ।

मकबूल फिदा हुसेन की उन्नीस सौ पचपन में बनाई गई, 'जमीन' शीर्षक के चित्र की मानवीयता, मार्मिकता और कविता ने गहरे स्तर पर प्रभावित किया। वहीं हुसेन की विश्वामित्र, कृषक परिवार शीर्षक की कृतियाँ भी थीं। एक प्रसिद्ध चित्रकार की इतनी कृतियों को एक ही जगह पर देखने का पहला अवसर है। उनके सिर्फ एक चित्र को अपने शहर के सेंट्रल म्यूजियम से जुड़ी गैलरी में देखा था। 'जमीन' शीर्षक के चित्र में खड़े भारतीय साधारण जीवन, साधारण लोगों के जीवन को देखते हुए याद आया कि उन्नीस सौ पचपन में ही, सत्यजित राय ने बंगाल के ग्रामीण जीवन को केन्द्र में रखकर 'पाथेर पांचाली' जैसी असाधारण फ़िल्म बनाई थी।

दुपहर तक गैलरी में अलग-अलग कक्षों में, अमृता शेरगिल, रामकुमार, अकबर पद्मसी, सतीश गुजराल, कृष्ण खन्ना, गुलाम मोहम्मद शेख और नलिनी मालिनी जैसे कलाकारों के अनेक चित्रों को देखना हो सका।

बीच-बीच में मैं लॉन की घास पर बैठता रहा। गैलरी के भीतर रखे गए सोफे पर थोड़ा-सा आराम करता रहा। कहीं-कहीं, किसी-किसी जगह पर रोशनदान के आसपास बैठे हुए कबूतरों की फड़फड़ाने की आवाजें सुनाई दे जातीं। विदेशी सैलानियों का कोई ग्रुप भारतीय गाईड के साथ चित्रों को देख-समझ रहा होता या कोई अकेला पुरुष या अकेली स्त्री चित्रों को निहारते हुए नजर आ जाती।

आर्ट गैलरी का वातावरण वहाँ की स्वच्छता, शान्ति को महसूस करते रहना भी, अच्छा और आत्मीय अनुभव, बनता रहा था।

दिल्ली— 17 जून, 1981

श्याम बेनेगल की नयी फ़िल्म 'कलयुग' को एक थिएटर में देखा। फ़िल्म का एक रिश्ता महाभारत से भी बनता है। दो परिवारों का सम्पत्ति की खातिर जारी रहता संघर्ष। बेनेगल की अपनी पहले की फ़िल्मों के परिप्रेक्ष्य में यह फ़िल्म कमजोर-सी जान पड़ी। उनका जोखिम उठाना, नये विषयों की चुनौतियों को स्वीकार किया जाना, इस फ़िल्म में था। फ़िल्म का परिवेश शहर था। पात्र भी शहर के।

थिएटर से निकलकर एक चीनी रेस्तराँ में दुपहर का खाना खाया। कनाट प्लेस के पालिका बाजार के भीतर घूमता रहा। वहीं एक दुकान से अमेरिकी लेखक हेनरी मिलर का उपन्यास 'ट्रोपिक ऑफ कैंसर' खरीदा। बाद में

चाँदनी चौक के बाजार में रिकार्डों की एक दुकान में। कुछ रिकार्ड्स सुने, कुछ खरीदे। बाद में लाल किले में। वहाँ की घास पर कुछ देर। आसपास के जीवन, आसपास के लोगों को देखना होता रहा।

दिल्ली— 18 जून, 1981

सुबह अपने मित्र असित सिन्हा के साथ 'गाँधी स्मृति' तक गया। तीस जनवरी मार्ग। गाँधीजी के पसन्दीदा भजन हवा में गूँज रहे थे। वे कभी इसी जगह पर रहे होंगे। प्रार्थना करते होंगे। विचार-विमर्श करते रहे होंगे और यहीं पर उन्होंने अपनी आखरी साँस ली होगी। यह बात मेरे भीतर, विस्मय, हर्ष और दुख जगाती रही। अल्बर्ट आइंस्टीन का उनके बारे में कहा गया वाक्य अपनी नोटबुक में उतारा। सोचता हूँ कि आने वाले बरसों में गाँधी जी की कुछ किताबों को पढ़ना ही चाहिए। उनको थोड़ा-सा जान-समझ पाना, थोड़ा-सा अपने देश और समाज को जानना भी होगा। गाँधी जी और उनके वक्त के बारे में। गाँधी जी और हमारे समय के बारे में। मैं सफदरजंग के मकबरे के आसपास सोच रहा था। वहाँ पेड़ों के नीचे प्रेमियों के जोड़े बैठे हुए थे। तभी मुझे कल देखे गए हुमायूँ के मकबरे के आसपास का परिवेश याद आया था। मकबरे के आसपास गर्मियों में बनी रहती दुर्गन्ध फैली हुई थी। झाड़ियों, दीवारों, पेड़ों के पास से निकलती मलमूत्र की गन्ध।

कनाट प्लेस की धूमिमल आर्ट गैलरी में जगदीश स्वामीनाथन, सूजा, सतीश गुजराल और लक्ष्मा गौड़ के चित्रों को देखना हुआ। 'बुकवर्म' से कुछ किताबें खरीदीं। दुकान में पश्चिमी शास्त्रीय संगीत की कोई रचना गूँजती रही थी। ऐसी कितनी ही किताबें इस संसार में हैं जिनसे जरा-सी भी पहचान नहीं। मार्डन लाइब्रेरी की किताबों के टाइटल्स देखकर सर चकराने लगा था। बहुत ज्यादा, खूब अच्छी तरह से पढ़ना होगा मुझे। नौकरी के पहले की सुबह और बाद की शाम का वक्त खूब सोच-समझकर बिताना होगा। साहित्य का छात्र जरूर रहा लेकिन गम्भीरता से पढ़ी गई किसी एक कविता का भी ध्यान नहीं आता है।

शाम को एक गिरजाघर के परिसर में जीसस के जन्म पर एक फ़िल्म देखी। शायद 'जीसस ऑफ नाजरेथ' शीर्षक था उसका। कुछ बरस पहले देखी गई बर्गमैन की काली-सफेद फ़िल्म 'द सेवेंथ सील' की याद आई।

दिल्ली— 18 जून, 1981

कनाट प्लेस के एक आइसक्रीम पार्लर में अपने मित्र के साथ बैठा हुआ आइस्क्रीम खा रहा था। पार्लर की काँच की खिड़की से सात-आठ बरस की एक लड़की को भीख माँगते हुए देखा। साँवला रंग ली हुई। दुबली-पतली और बहुत ही छोटी लड़की। न जाने इस लड़की का भीख माँगते वक्त की आत्मदया लिया हुआ मासूम चेहरा, कितने दिनों तक मेरे साथ रहेगा। बाद में आइस्क्रीम खाने का मन मर-सा गया। कनाट प्लेस में शाम की चहल-पहल के बीच। गलियारों की आधुनिक साज-सज्जा ली हुई, साफ-सुथरी आकर्षक दुकानें। उनके आसपास परिधान बेचती हुई, नीचे बैठी हुई राजस्थानी औरतें। फ्रूट्स और पत्र-पत्रिकाएँ बेचते हुए पान-सिगरेट की गुमटी लगाए हुए, पॉलिश करते हुए लोग। कनाट प्लेस का रौशन माहौल। कार से उतरते, कार में चढ़ते लोग। दुकानों, रेस्तराओं और होटल के समाने खड़े हुए दरबान। मेरे अपने लिए एकदम पराई-सी दुनिया जहाँ की चकाचौंध को मैं बाइस साल की अपनी उम्र में पहली बार देख रहा हूँ। यह मेरी तीसरी दिल्ली यात्रा है।

दिल्ली— 19 जून, 1981

सुबह दस के आसपास जनपथ पर खड़े नेशनल म्यूजियम में गया। पहली बार। दूर से ही उसकी भव्यता प्रभावित करने लगी। अब तक अपने ही शहर का छोटा-सा म्यूजियम, जबलपुर का एक संग्रहालय ही देखा था। लम्बे-चौड़े कक्ष। चमकता हुआ फर्श और बड़े-बड़े गलीचे। एक से दूसरा गलियारा। एक कक्ष से दूसरे कक्ष में जाना। संग्रहित कला-कृतियों की अँग्रेजी और हिन्दी में लिखी गई जानकारियाँ। देशी-विदेशी दर्शकों के समूह पर समूह। गांधार शैली की कुछ मूर्तियों को पहली बार देखा। वाद्ययन्त्रों के कक्ष में एक पुराना पियानो रखा था। गोआ में बनी मेडोना की प्रतिमा भी आत्मीय जान पड़ी। वहीं संथालों की बनाई पालकी भी रखी थी। दुपहर तक म्यूजियम में रहा। वहीं की कैंटीन में नाश्ता किया। वहीं से आईटीओ के करीब के डॉल्स म्यूजियम में। देशी-विदेशी किस्म की गुड़िया का विशाल संग्रह।

रात में पहाड़गंज के वैष्णव भोजनालय में खाना खाया। वहीं एक हिप्पी किताबों की दुकान पर अपने बैग से निकालकर कुछ किताबें बेचना चाह रहा था। आसपास कुछ और विदेशी युवक-युवतियाँ नजर आ रही थीं। इतने सारे, इतने बोहेमियन किस्म के विदेशी युवाओं को मैं पहली बार देख रहा था। किताबों की दुकान पर आकर देखा तो जाना कि उसकी बेची गई किताबों में वी.एस. नॉयपाल की किताब 'एरिया ऑफ डार्कनेस' भी थी।

दिल्ली— 20 जून, 1981

सुबह-सुबह पार्क स्ट्रीट के एक पार्क में घूमने गया था। वहाँ एक फोटोग्राफर बैडमिंटन खेल रही लड़कियों की तस्वीरें खींच रहा था। बाद में उसकी ग्रुप की एक लड़की पार्क के चारों तरफ दौड़ती नज़र आई। उसे देखकर बचपन के अपने शहर का वह मैदान निगाहों के सामने से घूम गया जहाँ पर कभी मैं फुटबाल खेला करता था। बारिश के दिनों के स्कूली दिन। मैदान में खड़ी बरसों पुरानी इमारत, रखी हुई तोपें, इमली का विशालकाय वृक्ष। दुपहर में लेडी हार्डिंग मेडिकल कॉलेज, पालिका बाजार और कनाट प्लेस के इलाकों में घूमता रहा। कनाट प्लेस के गलियारों में घूमना अच्छा लगता रहा। मेरे लिए वहाँ की दुनिया पराई-पराई सी जान पड़ती। गलियारों में छाया थी, टेलीफोन बूथ और कोने में खड़ी, किताबों-पत्रिकाओं की, राजस्थानी वेशभूषा की, सिगरेट-पान और फ्रूटस की अस्थाई-सी दुकानें थीं। उसके आसपास खरीदारी करते लोग, जो देखने-दिखाने में काफी समृद्ध घरों से आए जान पड़ते थे।

कनाट प्लेस के रीगल सिनेमा के पड़ोस की एक रिकार्डों की दुकान में रिचर्ड स्ट्रॉस का रिकार्ड सुना। वहीं से बेगम अख़्तर का एक रिकार्ड

खरीदा। बुकवर्म में आई एक बंगाली लड़की अपने पिता को नॉयपाल के एक उपन्यास के बारे में कुछ बता रही थी। वे जहाँ खड़े हुए थे, वहाँ की रैक पर नॉयपाल की कुछ किताबें रखी हुई थीं। मैंने वहाँ से एरिक फ्रॉम की प्रसिद्ध किताब 'ऑर्ट ऑफ लविंग' और रिल्के का कविता संग्रह खरीदा। बाद का समय हुमायूँ का मकबरा के आसपास। चिड़ियाघर से शेर के दहाड़ने की आवाजें आती-जाती रही थीं। रात में अपने मित्र के स्कूटर पर उनके साथ चाणक्यपुरी की सड़कों पर घूमता रहा।

होटल करीम की मेज पर बैठी हुई एक महिला, उसके सामने की कुर्सी पर बैठे हुए आदमी से कह रही थी कि अगर आपकी अन्तरात्मा साफ सुथरी नहीं है तो सामने वाली की आँखों में झाँककर कुछ कह पाना, बहुत ज्यादा मुश्किल हो जाता है। रात में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तीन कहानियों पर आधारित सत्यजित राय की फ़िल्म 'तीन कन्या' का आखरी हिस्सा दूरदर्शन पर देखा।

दिल्ली— 20 जून, 1981

प्रगति मैदान के एक पंडाल के सामने घास के गोलाकार टुकड़े पर लेटा हुआ। कहीं से आती हुई बेगम अख्तर की गजल 'इब्ने मरियम हुआ करे कोई' सुनता रहा। लौटने का रिजर्वेशन करवाने नई दिल्ली रेलवे स्टेशन गया था। लाइन में खड़े हुए टेलीफोन बूथ के बाजू जमीन पर सोई हुई एक अधेड़ उम्र की महिला को नींद में देखा। सिरहाने पर अँग्रेजी की किताब थी। सिगरेट का पैकेट और कोल्हापुरी चप्पलें। उन्होंने नीले रंग की पतलून और उस पर नीले रंग की ही टी-शर्ट पहन रखी थी।

दिल्ली— 21 जून, 1981

सुबह ब्रासी एवेन्यू के चर्च में गया था। मास शुरू ही हो रहा था। वहाँ की सीढ़ियों पर बैठा हुआ भीतर से आती हुई संगीत की धुनों को सुनता रहा। उन पियानो से निकलती धुनों को हमेशा-हमेशा याद रखना चाहूँगा। संगीत का ऐसा गहरा, मार्मिक और रहस्यमय आयाम। क्या संगीत हमारे भीतर ऐसा भी कुछ इतना गहरा इतनी पीड़ा लिया हुआ कुछ जगा सकता है ? आठ बजे के आसपास एक युवा पादरी हाथ में क्रॉस लिए हुए आल्टर के सामने खड़ा हो गया। वह मास के शुरू हो जाने का क्षण था। मैं बाहर निकल आया।

वहीं से काली बाड़ी के गिरजाघर में गया। मरियम की अत्यन्त सुन्दर प्रतिभा देखी। एक विदेशी बूढ़े ने मुझसे हिन्दी में पूछा— ''यहाँ गुसलखाना कहाँ हैं ?'' बाद में वहीं एक पादरी हाथ में गिटार लिए हुए, लोगों को कुछ गाने सुनाता रहा।

मैं और असित सुबह दस बजे के आसपास श्रीकान्तजी (वर्मा) के घर गए। श्रीकान्तजी के पीछे की दीवार पर किताबें ही किताबें थीं। एक पत्थर की मूर्ति भी। उनके साथ ज्यादा न बैठ सके। उनको कहीं जाना था। उनसे एक किताब पर हस्ताक्षर करवाये।

वहीं से करोलबाग स्थित निर्मलजी (वर्मा) के घर गए। उनकी बरसाती में फिर एक बार। बातचीत में वे रूसी लेखकों के रूस में ही किये गए अँग्रेजी अनुवादों की सीमाओं के बारे में बताते रहे। वे कुछ महीनों पहले अपनी रूस और पूर्वी यूरोप की यात्रा से लौटे थे। उन्होंने बताया कि रूसी आक्रमण के बाद चेक लेखकों को शोफर-ड्राइवर बनना पड़ा था। घर की खिड़कियों को साफ करने जैसा काम करना पड़ा था। उन्होंने बताया कि उन्होंने अपने पिछले हंगरी प्रवास में हंगरी में वैसा कोई रेजिमेंटेशन महसूस नहीं किया। अपनी उसी यात्रा में वे उस रेल की पटरी को भी देखने गए थे जहाँ हंगरी के प्रसिद्ध कवि अत्तिला जोसेफ ने आत्महत्या की थी। वे उस कवि का घर भी देख आए थे।

बाद में मैं उनसे चेक उपन्यास 'एमेके : एक गाथा' के बारे में पूछता रहा। इस उपन्यास का निर्मलजी ने बरसों पहले सीधे चेक भाषा से ही हिन्दी में अनुवाद किया है। उनकी लिखने की डेस्क पर पुश्किन और जेम्स ज्वायस की कहानियों की किताबें रखी थीं। उनको एकाध घंटे सुनते रहना, अत्यन्त प्रीतिकर, प्रभावशाली अनुभव बनता गया था।

निर्मलजी के घर से निकलकर एक और बार पुराना किला देखने गया। रात में दिल्ली से विदिशा के लिए निकलना था। दिल्ली की गर्मियों के इन दिनों के बारे में सोच रहा था और मेरी निगाहों में उस सुबह जामा मस्जिद के सामने बैठे हुए कबूतरों का झुंड उतरा था, जिसे इस प्रवास की पहली ही सुबह में, स्टेशन से बाहर निकलते हुए देखा था। जामा मस्जिद और कनाट प्लेस के कबूतर।

दिल्ली— 21 जून, 1981

ट्रेन की अपनी बर्थ पर लेटे हुए फ्रेंच लेखक आंद्रे जीद के जर्नल्स की किताब खोल लिया। किताब के पहले पन्ने पर श्रीकान्तजी (वर्मा) के दस्तखत लिए थे। दस्तखत करता हुआ उनका चेहरा याद आया।

अपनी बात कहते हुए निर्मलजी के शान्त, गम्भीर और चमकते हुए चेहरे का स्मरण भी आता रहा। वे अपनी बात को धीरे-धीरे, सोचते-समझते हुए बोल रहे थे। वे अपनी रूस और हंगरी की यात्राओं के अनुभवों का जिक्र करते रहे थे।

मैं उनको कितनी जल्दबाजी में अपनी बे सिर-पैर की बातें कहता रहा लेकिन वे मेरी बकवास को भी शान्त मन से सुनते रहे। उन्होंने मुझे कहीं भी रोका-टोका नहीं। मैं उनसे फॉकनर के उपन्यास 'लाइट इन अगस्त' का जिक्र करने लगा जो मुझे जरा-सा भी समझ में नहीं आया था।

इस प्रवास का भी निर्मलजी को सुनना उनकी बरसाती में कुछ समय बिताना, मेरे अपने जीवन का अविस्मरणीय, आत्मीय अनुभव बना रहेगा।

विदिशा— 28 जून, 1981

जर्मनी के कवि-लेखक गेटे की किताब 'इटालियन जर्नी' पढ़ रहा हूँ। बीच-बीच में पड़ोस के मन्दिर से घंटियों का, आरती का स्वर उभरता है और मेरा पढ़ना टूट जाता है। सुबह साढ़े नौ तक ही थोड़ा-सा कुछ पढ़ना हो जाता है। फिर बैंक जाने की तैयारी। पैदल ही जाता हूँ।

गेटे एक जगह कह रहे हैं कि ''किसी को वैसे ही लिखना चाहिए

जैसा वह जीता है, पहले अपने खुद के लिए, बाद में अपने-से जुड़ी हुई कुछ अनुकूल आत्माओं के लिए।''

इतने पुराने, इतने असाधारण लेखक भी यही सोचते आए थे कि हम बहुत ही कम लोगों के लिए ही लिख सकते हैं और वे भी जब उनका मन हमारे अपने मन से कुछ मिलता-जुलता हो। क्या मैं उनकी बात समझ रहा हूँ?

इन्दौर— 27 जुलाई, 1981

आज यहाँ हल्की बारिश के बाद का वातावरण रहा। बैंक के ट्रेनिंग सेंटर की इमारत बरसों पुरानी है। शायद होल्कर के शासन के दिनों की। इमारत में लकड़ी का अत्यन्त कलात्मक काम है। खासकर बाल्कनी की नक्काशी। आसपास नीम, आम और इमली के बड़े-बड़े वृक्ष, जिनसे पानी की बूँदें टपकती रहती हैं। पड़ोस में मार्तण्ड का मन्दिर है। ट्रेनिंग सेंटर के सामने से एक लम्बी, सूनी और संकरी सड़क मन्दिर तक जाती है। मैं सुबह-शाम उस मन्दिर तक जाता हूँ। वहाँ की सीढ़ियों, चबूतरों पर बैठे हुए गिलविक की कविताएँ पढ़ता रहता हूँ। पेंगुइन प्रकाशन की यह किताब इन्दौर में ही 'रूपायन' से खरीदी थी। रूपायन से ही अमेरिकी लेखक विलियम फॉकनर के उपन्यास का हिन्दी में किया गया अनुवाद भी खरीदा है।

दो बरस होने को आ रहे हैं अपने बचपन के शहर को छोड़कर। मध्यप्रदेश के कुछ कस्बों, कुछ शहरों में घूमा हूँ। हर जगह पर लोगों की अभावग्रस्त ज़िन्दगी बड़े पैमाने पर नजर आती है। मेहनत करने वाले लोगों का जीवन कठिन, अभावग्रस्त नजर आता है। आज पुल के नीचे खड़े हुए एक रिक्शेवाले से बात हुई। गर्मियों में यहाँ रीवा से कुछ कमाने की आस लिए हुए आया था। दिन भर रिक्शा चलाता था और शाम को एक जगह पर गन्ने का रस बेचा करता था। कह रहा था कि न ज्यादा कमा पाया और न ही ज्यादा बचा पाया। बीमार अलग होता रहा।

इन्दौर— 27 जुलाई, 1981

जब सातवीं-आठवीं कक्षा में पढ़ रहा था तब गर्मियों की छुट्टियों में या दीवाली की छुट्टियों के दिनों में विदर्भ के उन ग्रामीण इलाकों में जाता रहा था जहाँ पिता अध्यापन करते थे। गाँव की गरीबी का बहुत ही हल्का-सा लेकिन अनुमान जरूर साथ रहा था। अपने शहर में सिर्फ अपना ही जीवन गरीब, अभावग्रस्त, नीरस नज़र आता रहा था, लेकिन शहर छोड़ने के बाद, मध्यप्रदेश में थोड़ा-सा घूमना हुआ है और यह समझ में आ रहा है कि मेरी अपनी ज़िन्दगी बहुत-बहुत लोगों से काफी बेहतर रहती आई है। मैंने वह सब देखा तक नहीं है, जिसे कई-कई लोग, रोज-रोज, साल-दर-साल भोगते रहते हैं। भारत की अपनी किस्म की गरीबी और भारत के गरीब लोगों का जीवन। यह सब मैं इन्दौर के उस इलाके के पास से गुजरते हुए सोच रहा था। जहाँ बहते नाले के आसपास झुग्गी-झोपड़ियाँ खड़ी थीं। उनके आसपास नंग-धड़ग बच्चे थे और घूमते-भागते सुअर, कुत्ते।

1 अगस्त, 1981

दुपहर में इन्दौर के संग्रहालय में गया था। संग्रहालय में कुछ इटालियन मूर्तिशिल्प थे। पत्र पढ़ती हुई औरत का संगमरमर में ढला मूर्तिशिल्प अच्छा लगा। एक कक्ष में कुछ बहुत सुन्दर पेंटिंग्स टँगी थीं। अँग्रेज दम्पती शीर्षक से एक तैलचित्र काफी आत्मीय जान पड़ा। संग्रहालय की छत की मुंडेरों से सटी कुछ मूर्तियों को देखना भी अच्छा लगा। छत से समूचा शहर नजर आ रहा था। शहर में कहीं वह पुराना पुल, उसके नीचे बहता नाला, उसके किनारे खड़ी झोपड़ियाँ भी होंगी, जहाँ से मैं पिछले दिनों में गुजरता रहा हूँ। म्यूजियम की चीज़ें कितनी साफ़-सुथरी व्यवस्थित, शाश्वत और पवित्र नजर आती हैं जबकि उसके बाहर एक गन्दा-गँधाता भीड़ और शोर लिया हुआ, बेतरतीब, बेडौल-सा शहर खड़ा रहता है।

कल शाम यहीं से मांडू के लिए निकलूँगा। मांडू के बारे में काफी कुछ सुनता आया हूँ। रानी रूपमती, बाज बहादुर और नर्मदा के किस्से। इसी शहर से कुछ दूरी पर उज्जैन है, जहाँ कालीदास ने अपनी कुछ प्रसिद्ध रचनाओं को रचा था। भारतीय इतिहास का एक प्रसिद्ध और पुराना नगर। बेताल पच्चीसी में आती-उतरती एक जगह।

विदिशा— 22 अगस्त 1981

पुराने किले के भीतर खड़े हुए विशालकाय पेड़ बारिश में भीगते रहते हैं। सकरी सड़क के दोनों किनारों पर खड़े हुए कच्चे-पक्के मकान। कस्बे के टाँगा चलाने वाले कुछ लोगों के आवास यहीं हैं। घर के सामने किसी पेड़ के नीचे खड़ा हुआ ताँगा बँधा हुआ घोड़ा। एक मरियल-सी घोड़ी अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। तभी वहाँ पर धोती-कुर्ता पहने हुए गले में कैमरा लटकाये हुए फोटोग्राफर शरद श्रीवास्तव नजर आए। वे परिवार नियोजन के अपने दफ्तर से लौट रहे थे। फोटोग्राफी में इनका बड़ा काम है। उनको देख फणीश्वरनाथ रेणु के चेहरे की याद आ जाती है हालाँकि उनके न रेणु जैसे लम्बे बाल हैं और न ही चेहरे की शक्ल।

मेरे बैंक के सामने की गली में शरदजी का दफ्तर है। कभी-कभार वहाँ चला जाता हूँ। इनकी भी हिन्दी साहित्य में दिलचस्पी है। विदिशा का अपना साहित्यिक-सांस्कृतिक वातावरण है।

यहीं पर बाबा नागार्जुन, भवानीप्रसाद मिश्र जैसे कवियों को सुना है। इन कवियों से कुछ मुलाकातें भी हैं।

मैं जिस घर में पहली मंजिल के कमरे में रहता हूँ उसी घर के ड्राइंग रूम में बाबा नागार्जुन आकर ठहरते हैं। वहीं कस्बे के उनको पढ़ने वाले, जानने वाले लोग आते रहते हैं। एक शाम बाबा के साथ कस्बाती मेले में भी घूमा हूँ। एक सुबह वे मेरे कमरे में आए थे। मेरे रिकार्ड प्लेयर पर बेगम अख़्तर की ग़ज़लें आ रही थीं। उनका आना मुझे बहुत अच्छा लगा। इधर बाबा नागार्जुन को पढ़ भी रहा हूँ।

विदिशा 18 सितम्बर 1981

शमशेर जी (शमशेर बहादुर सिंह) और उपाध्याय जी के साथ सावरकर बाल विहार में बैठा रहा। शमशेर जी कुछ दिनों से विदिशा में हैं। उनको भाषा के सन्दर्भ में सुनना प्रीतिकर अनुभव रहा। बाद में उन

दोनों की बातचीत महात्मा गाँधी, मदर टेरेसा के आसपास फैल गई। मेरे एक सवाल के जवाब में शमशेरजी ने कहा कि अब वे चित्र बनाना चाह रहे हैं। बहुत दिनों से उनका मन Instinct पेंटिंग की तरफ बढ़ रहा है। कल उनसे ही उनकी कुछ कविताएँ सुनने का सौभाग्य मिला था। उनको पेंटिंग पर बोलते हुए सुनकर उनकी कविताओं की चित्रात्मकता का ध्यान आया।

विदिशा— 19 सितम्बर, 1981

विदिशा की लोहांगी पहाड़ी पर खड़ा हुआ लैम्पपोस्ट मन को खींचता है। बीच में भोपाल जाती हुई हमारी ट्रेन दीवानगंज स्टेशन पर रुक गई थी। स्टेशन छोटा है। पैसेंजर ट्रेन ही रुकती है। वहाँ का लैम्प मिट्टी के तेल से जलाया जा रहा था। तभी मुझे मांडू की एक रात में 'नीलकंठ' नाम की जगह के आसपास खड़ा हुआ लैम्पपोस्ट भी याद आया था।

अपने बचपन में पैसेंजर ट्रेन से नागपुर से जबलपुर जाना होता था। वहाँ अम्मा का मायका था। जब-जब ट्रेन रात के वक्त किसी स्टेशन पर रुकती तब-तब इस प्रकार के लैम्पपोस्ट नजर आते थे। बहुत सालों के बाद मंडला जाने के लिए नैनपुर से एक पैसेंजर ट्रेन में बैठा था। ट्रेन की वह यात्रा मेरे बाइस बरस के जीवन का अद्‌भुत अनुभव रहा है। वक्त के साथ, बढ़ती उम्र में कितना कुछ छूटता चला जाता है।

विदिशा— 24 सितम्बर, 1981

बैंक से घर लौटते हुए तिलक चौराहे पर डॉक्टर मजूमदार की क्लिनिक में गया था। सुबह चाकू से एक उँगली पर घाव उतर आया था। दवाखाने की मेज पर बैठे हुए ग्रीक चिकित्सक हिप्पोक्रेट्स का चित्र देखा। चित्र के नीचे चिकित्साशास्त्र में उनके योगदान के बारे में लिखा हुआ था। ठीक चित्र के नीचे लिखा था—

Hippocrates
(Circa 460 - 360 BC?)

विदिशा— 25 सितम्बर, 1981

कई-कई दिनों के बाद, पहली मंजिल के कमरे से पहले एक मुस्लिम फकीर की आवाज सुनी और बाद में उसे छत से हमारे घर के सामने भिक्षापात्र लिए हुए देखा। नागपुर के हमारे घर के सामने ऐसे फकीर आते ही रहते हैं। बारकरी सम्प्रदाय के भक्तगण भी और छत्तीसगढ़ के किसी इलाके से आए हुए कबीरपन्थी भी। इधर जब कभी कुमार गन्धर्व के निर्गुण भजनों का रिकार्ड सुनता हूँ तब उन कबीरपन्थियों में से किसी का चेहरा याद आ जाता है।

अम्मा उनको गाते हुए सुनकर अच्छा महसूस किया करती थी। अम्मा खुद न्यू थिएटर के जमाने के गानों के बीच बड़ी हुई थी। सहगल, पंकज मलिक, कानन देवी के गानों को गुनगुनाया करती थी। खासकर कुन्दनलाल सहगल के गानों को।

शाम में एक बरगद के पेड़ के नीचे प्राचीन, पत्थर की मूर्तियों के आधे-अधूरे हिस्सों को देखा। कुछ औरतें वहाँ पूजा कर रही थीं। मालवा अंचल की घूँघट डाली हुई रंग-बिरंगी साड़ियाँ पहनी हुई छोटे कद की औरतें।

विदिशा— 8 अक्तूबर, 1981

सुबह सीढ़ियों से उतरकर ठाकुर साहब के ड्राइंग रूम में आया तो उन्हें अपने पुरखों की तलवारों की साफ-सफाई करते देखा। दशहरा है। रघुनाथ सिंह जी अध्यापक हैं। साहित्य-संस्कृति से जुड़ी किताबों के संवेदनशील सजग पाठक। मैं उनकी किताबों की आलमारी से नागार्जुन का उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' निकालकर पढ़ने लगता हूँ। बीच-बीच में मेरी निगाहें उनकी चमकती तलवारों पर ठहरती हैं। इसके पहले तलवार को सिनेमा की स्क्रीन पर ही देखा था।

शाम के समय ठाकुर रघुनाथ सिंह के साथ एक पुरानी हवेली में गया। हवेली में एक बावड़ी भी थी। हाल ही में पढ़ी गई मुक्तिबोध की कविता 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' का स्मरण हो आया। हवेली के लम्बे-चौड़े परिसर में ही एक मस्जिद भी खड़ी हुई है। मस्जिद की दीवार से सटे हुए लकड़ी के पहिये। ताजे फूलों से सजी हुई एक कब्र। हवेली के मालिक ने बताया कि कभी मुगल बादशाह औरंगजेब अपनी सेना के साथ इस हवेली में आए थे। यह हमारा मौखिक इतिहास है।

कहा जाता है कि विदिशा से ही सम्राट अशोक की एक रानी आई थी। सांची के स्तूप और उदयगिरी की गुफाएँ विदिशा की प्राचीनता की बड़ी गवाह हैं। खामबाबा का स्तम्भ भी। एक ग्रीक राजदूत के वैष्णव धर्म को स्वीकार किये जाने की स्मृति में खड़ा हुआ स्तम्भ।

हवेली के ठाकुर साहब अपनी राजपूतों की वेशभूषा में घोड़े पर बैठे हुए निकलते हैं। रावण दहन होता है। काफी भीड़ हो गई है। घोड़े पर बैठे कुछ लोग ढोलक बजा रहे हैं। इस तरह के दशहरे को पहली बार देख रहा हूँ। आज की छुट्टी दशहरे के अनुभवों में बीत गई।

विदिशा— 9 अक्तूबर 1981

सुबह से मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी' पढ़ रहा हूँ। कल रात मुक्तिबोध की कहानी 'क्लाड इथरली' को पढ़ना प्रीतिकर और प्रभावशाली अनुभव रहा था। इनका निजी-सा, निराला गद्य अच्छा लग रहा है। उनकी कविताओं की ही तरह उनका सर्जनात्मक जोखिम उनके गहरे सामाजिक-राजनैतिक सरोकर उनके गद्य में भी नज़र आते हैं। उनकी भाषा में एक तरह का आवेग, एक किस्म का आवेश भी। नैतिक आवेग और नैतिक स्वप्न लिया हुआ उनका खुरदुरा-सा गद्य।

शाम को अपनी रेसिंग साइकिल से सांची गया। वहाँ पहुँचने पर वहाँ लगे हुए नेत्र-शिविर के बारे में जाना। एक मैदान में आसपास के ग्रामीण इलाकों से आए हुए लोग एकत्र थे। एक जगह पर कुछ विदेशी लोग खड़े हुए थे और उनमें से ही एक लड़की बाँसुरी बजा रही थी। उसके कन्धे पर लटकते कपड़े के झोले में लकड़ी की तीन-चार बाँसुरियाँ नजर आ रही थीं।

सांची से लौटते वक्त, बेतवा नदी और उसके आसपास के पेड़ों, झाड़ियों और खंडहरों को देखना बहुत अच्छा लगा। इधर देखे गए रूसी

चित्रकार इसाक लेविटिन के लैंडस्केप याद आए। लेविटिन रूसी लेखक एन्तोन चेखव के मित्र रहे। चेखव की कहानियों में नजर आती उदासी, लेविटिन के लैंडस्केप में भी उभरती रहती है।

घर लौटकर अपने प्लेयर पर 'Call of the Valley' सुनता रहा। हरिप्रसाद चौरसिया, शिवकुमार शर्मा और ब्रजभूषण काबरा की रचना।

विदिशा— 11 अक्तूबर, 1981

विनोदकुमार शुक्ल से उनकी कुछ कविताएँ सुनीं। विदिशा में एक जगह उनका कविता पाठ था। श्री विजय बहादुर सिंह, यहाँ इस तरह के आयोजन करवाते रहते थे। वे यहाँ एक कॉलेज में हिन्दी पढ़ाते हैं। कविताएँ लिखते हैं। उनकी आलोचना पर कुछ किताबें हैं। बाद में विनोदजी और नरेन्द्र जैन के साथ एक ढाबे में दुपहर का खाना खाया।

विदिशा— 11 अक्तूबर, 1981

सुबह फोटोग्राफर अशोक महेश्वरी के साथ पहले उदयगिरी की गुफाएँ देखने गया और बाद में वहीं से सांची जाना हुआ। एक और बार सांची के संग्रहालय में अपना कुछ समय बिताया। सांची के इतने करीब रहना। यहाँ बीच-बीच में आते रहना, मुझे अपना सौभाग्य-सा जान पड़ता है। मन में आता है कि सांची में ही एक कमरा किराये से ले लूँ और वहीं से रोज़ अपनी बैंक की नौकरी के लिए जा आ सकूँ। पता नहीं विदिशा में कब तक रहना हो सकेगा? अम्मा बीमार रहने लगी हैं।

शाम को विदिशा के एक मैदान में सामाजवादी नेता लाडली मोहन निगम का व्याख्यान सुना। वे भारत की भयावह आर्थिक विषमताओं पर, नगालैंड की समस्या पर, बहादुरशाह जफर पर कुछ नये सन्दर्भों में, नया-सा कुछ कह गए।

विदिशा— 24 नवम्बर, 1981

सुबह-सुबह सैर के लिए निकला था। एक छोटा-सा पहाड़ी इलाका है। नीलगिरी के पेड़ों की लम्बी कतार। छोटा-सा तालाब, जहाँ परिन्दों के झुंड के झुंड बने रहते हैं। सर्दियों के ऐसे मनोरम लैंडस्केप से मन खुश था कि रास्ते के एक फोटो स्टूडियो के सामने उन बीस-पच्चीस ग्रामीण लोगों को देखा। एक ही लम्बी रस्सी से उन सबके हाथ बँधे हुए थे। एक हवलदार ने मुझे बताया कि ये सारे लोग किसी दूसरे के खेत से धान की फसल चुरा रहे थे। इन सबके कपड़े फटे हुए थे और मैले भी। सबने ही धोती-कुर्ता पहना हुआ था। दाढ़ी सबकी बढ़ी हुई। कम उम्र के लेकिन बुढ़ापा झेलते चेहरे। मुझे नहीं लगता कि इन ग्रामीणों ने कोई अपराध किया होगा। मैं सैर से लौटते हुए इन ग्रामीणों के चेहरों को याद कर रहा हूँ। और वैन गॉग के बंदियों के चित्र को भी।

भोपाल— 29 नवम्बर, 1981

भोपाल के रवीन्द्र भवन में इन्दौर के कलाकार विष्णु चिंचालकर की प्रदर्शनी देखी। बेकार फालतू हो चुकी चीजों से बनाई गई कुछ दिलचस्प कलाकृतियाँ। क्या कोई मामूली दिमाग बेकाम, रद्दी चीजों को ऐसा गहरा कलात्मक आयाम दे सकता है? लकड़ी की कुर्सी के पिछले हिस्से पर टँगे गेरुए कपड़े से बनाये गये रामकृष्ण परमहंस, बाथरूम स्लीपर से बनी मोनालिसा, फटी चिथड़ा बनियान से बनी सूली पर चढ़े हुए जीसस क्राइस्ट की आकृति। और भी न जाने कितनी ही ऐसी कलाकृतियाँ।

रोजमर्रा की जरूरतों की फालतू हो गई चीजों को ऐसा कलात्मक उपयोग पहली बार देखा है। विष्णु चिंचालकर खादी का कुरता और पायजामा पहने हुए थे। दर्शक उनसे मिल रहे थे, बतिया रहे थे। उनको देखना, उनसे कुछ देर बात करना मन को छूता रहा।

ट्रेन से विदिशा लौटा। रास्ते में रेलवे प्लेटफार्म की व्हिलर की किताबों की दुकान से पेंगुइन प्रकाशन की Russian writing today खरीदा था। ट्रेन की ऊपरी बर्थ पर लेटे-लेटे, सोवियत रूस के लेखक दास्तोव्स्की की मार्मिक कहानी The Rainy Down पढ़कर समाप्त की। विदिशा में अपने कमरे में लौटकर, आज भोपाल से खरीदा गया यहूदी मैनुहिन और रविशंकर का रिकार्ड सुनता रहा।

विदिशा— 7 दिसम्बर, 1981

दुपहर में लंच टाइम के वक्त सरकारी अस्पताल की तरफ गया था। एक ग्रामीण युवा स्त्री, अपने सामने रखी बच्चे की लाश को छू-छूकर रोती-बिलखती रही। उसका रोना-बिलखना सुन मेरी ही तरह, कुछ और लोग भी उसके आस पास इकट्ठा हो गए। गरीबी, बेबसी और ममता से बनता वह एक मार्मिक, करुणाजनक क्षण था जो रात के इस वक्त तक मेरे साथ बना हुआ है।

घर से बाहर निकला हूँ, मध्यप्रदेश के इस इलाके के जनजीवन को देख रहा हूँ और बार-बार मन में आता है कि मैंने अपने समाज को, अपने देश को कितना कम जाना है। मुझे पता ही नहीं है कि हमारे लोग कितना सहते रहते हैं, कैसे जीते रहते हैं? अपने आसपास को अच्छी तरह जानने की कोशिशें करना चाहूँगा।

रायसेन— 11 दिसम्बर, 1981

रायसेन विदिशा से कुछ दूरी पर खड़ा हुआ एक और कस्बा है। मैं वहाँ की गलियों, सड़कों और मैदानों में घूमता रहा। यहाँ पर भी एक विदेशी और युवा जोड़ा नज़र आया। शाम के वक्त में लड़की अपने बायनाकुलर से रायसेन के किले के बुर्ज को देख रही थी। बुर्जों को अँधेरा घेरने लगा था। एक लम्बी, अँधेरी सड़क पर खड़े हुए बरगद के पेड़ पर बैठे हुए कव्वे जोर-जोर से चिल्ला रहे थे।

विदिशा— 18 दिसम्बर, 1981

पेंगुइन से प्रकाशित फ्रेंच कवि मलार्मे की कविता-संग्रह पढ़ रहा था। भाषा की अनन्त सम्भावनाओं को निचोड़ती हुई कविताएँ इनको बार-बार पढ़ना होगा। धीरे-धीरे समझना होगा। आने वाले क्रिसमस को अपने जीवन के बाइस बरस समाप्त करूँगा।

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

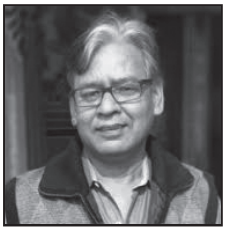

स्त्री विमर्श का समवेत स्वर!

सुधांशु गुप्त

कहानियाँ मुल्क का इतिहास भी बताती हैं। कहानियाँ बताती हैं कि मुल्क में स्त्रियों के साथ किस-किस तरह का भेदभाव हो रहा है, कहानियाँ उन परम्पराओं पर भी उँगली रखती हैं, जो स्त्री के पैरों की बेड़ियाँ बनी हुई हैं। कहानियों का सफ़र यहीं नहीं रुकता। बल्कि वे यह भी बताती हैं कि पूरी दुनिया में स्त्रियाँ अपने साथ होने वाले अत्याचार, अन्याय और बंदिशों के विरुद्ध अपनी कलम की धार कैसे पैनी कर रही हैं। अगर दुनिया के एक बहुत बड़े हिस्से में स्त्री लेखकों द्वारा लिखी जा रही कहानियों को एक साथ एकत्रित कर दें तो आपको आधी आबादी की एक मुकम्मल तस्वीर दिखाई देगी। एक ऐसी तस्वीर जो आपको बेचैन कर देगी, आपको सोने नहीं देगी। आप यह भी जरूर सोचेंगे कि इन लेखकों में हम क्यों शामिल नहीं हैं! इस पर फिर कभी बात लेकिन फिलहाल एक ऐसी किताब पर बात, जो स्त्री लेखन को पुरजोर तरीके से पेश करती है। यह किताब है यादवेन्द्र द्वारा सम्पादित 'स्याही की गमक'। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व वाले छात्र आन्दोलन में सक्रिय भागीदारी से शुरू करके यादवेन्द्र ने नुक्कड़ नाटकों और पत्रकारिता में सामाजिक सक्रियता निभाई। विदेशी समाजों की कविताओं और कहानियों का बड़ी संख्या में उन्होंने अनुवाद किया।

ईरान के सांस्कृतिक परिदृश्य पर उनका गम्भीर काम है। यह गम्भीरता इस संग्रह में भी दिखाई पड़ती है। संग्रह में 32 कहानियाँ हैं। हर कहानी स्त्री विमर्श की कहानी है, लेकिन एक भी कहानी ऐसी नहीं है, जिसमें कथा से कोई समझौता किया गया हो। निसन्देह ये कहानियाँ रचनाशीलता की एक ऐसी खिड़की खोलती हैं, जहाँ से आप स्त्री लेखकों का सामूहिक स्वर सुन सकते हैं, जहाँ आपको सुनाई देगी आततायी शक्तियों के विरुद्ध स्त्री की सबसे मुखर आवाज़। यहाँ लैंगिक असमानताएँ केवल किताबी नहीं हैं, बल्कि लेखक का 'फर्स्ट हैंड एक्सपीरियंस' है। इसलिए ये कहानियाँ आपको व्यथित करती हैं। संग्रह में यादवेन्द्र ने अमेरिका, ब्रिटेन, न्यूजीलैंड, ईरान, लेबनान, जिंबाब्वे, इरीट्रिया, तुर्की, चीन, नाइजीरिया, कुवैत, चिली, चीन, मलेशिया, अर्जेंटीना, बेलारूस, एंटीगुआ जैसे कई देशों की स्त्री लेखकों की कहानियाँ चुनी हैं।

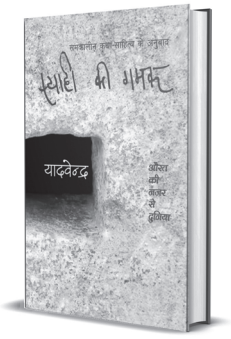

स्याही की गमक
(अनूदित कहानियाँ)
यादवेन्द्र
संभावना प्रकाशन, हापुड़
मूल्य : 250 रुपये/-

बकौल यादवेन्द्र, कोई भी समाज बन्द कमरे में साँस लेकर स्वस्थ नहीं रह सकता, दुनिया भर की रस गन्ध ध्वनियों और अनुभूतियों से गर्भित खुली हवा उसको पोषित करे तभी उसका शरीर और चेतन सन्तुलित ढंग से निर्मित होता है। लेकिन पहले उन कहानियों पर बात करते हैं जिनमें खिड़कियाँ बन्द हैं। पश्चिमी अफ्रीकी देश नाइजीरिया की एक युवा लेखक हैं— ओके एकपाघा। इनकी कहानी है 'क्या तुम्हें खाना बनाना आता है?' स्त्री पुरुष संवादों के माध्यम से कहानी आगे बढ़ती है, पुरुष स्त्री से पूछता है, क्या तुम्हें खाना बनाना आता है? लड़की चौंककर उसकी तरफ देखती है। पुरुष फिर कहता है, इसका मतलब नहीं आता। लड़की पलटकर पूछती है, क्या तुम्हें आता है? इसके बाद पुरुष लगातार उसे अलग अलग डिशेज ना बना पाने के लिए अपमानित करता रहता है। पुरुष लड़की के जवाबों को सुनकर तंग आ जाता है और कहता है, तुम यह साबित करने पर तुली हो कि तुम्हें ढंग से सिखाया-पढ़ाया नहीं गया है, तुम्हारी ढंग की ट्रेनिंग नहीं हुई है। लड़की चाहती है कि उसे सब बातों का जवाब दिया जाए, लेकिन फिर सोचती है कि उस जैसे मूढ़ इंसान का सारा वजूद ही मेरी शख्सियत का अपमान है।

वह चुपचाप अपना सामान उठाती है और कमरे से बाहर निकल जाती है। इरीट्रिया की लेखक रिबूका सिभातू एक की एक पृष्ठ की कहानी है 'कौमार्य'। कहानी की शुरुआत इस वाक्य से होती है—किसी दुल्हन के लिए उसकी आँखों की सुन्दरता से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कौमार्य। कहानी का नायक चार नौजवानों के साथ नायिका को देखने उसके घर आता है। नायिका उससे विवाह करने की इच्छुक नहीं है। लिहाजा वह कह देती है, मेरा कौमार्य खंडित हो गया है। वे नौजवान नायिका की बात सुनकर एक शब्द भी नहीं बोलते, उठकर चले जाते हैं...नायक के मन में दूसरी कुँवारी मिल जाने की आस जिन्दा थी। अश्वेत अमेरिकी लेखक क्लॉडिया रैंकिंन की कहानी 'तीन बिम्ब' में स्त्रियों के

साथ अलग-अलग स्थानों पर होने वाले भेदभाव को दर्शाया गया है तो तुर्की की लेखक मेलतेम अरिकन 'औरतों का सदाबहार भरोसा' में चीन की उस परिपाटी पर चोट करती हैं जिसके चलते चार साल की उम्र की बच्चियों के पैर के अँगूठे तलवों की ओर मोड़कर बाँध दिए जाते हैं ताकि लड़की का पैर बड़ा न हो। कहानी में दिखाया गया है कि किस तरह स्त्रियाँ स्वयं इस परिपाटी का पालन करने के लिए अभिशप्त हैं। कहानी के अन्त में लेखक नैरेटिव में कहती है, ऐसा लगता है जैसे हम कैलेंडर के पुराने पन्नों की तरह हैं जिनकी नियति फाड़कर फेंक दिए जाने से अधिक कुछ भी नहीं है। धरती पर बिछी अनगिनत लाशें...औरत होने की अटूट परिपाटी...और उनमें औरतों का सदाबहार भरोसा। ऐसी ही एक और कहानी है जिंबाब्वे की लेखक टेंडई मचिनगेडजा की 'मेरे केश पुरखों से बतियाते हैं।' कहानी में लेखक ने घुँघराली लटों को अपनी बात कहने का जरिया बनाया है। एक युवा लड़की को उसके लटों वाले केशों की वजह से शिजोफ्रेनिया का मरीज बताया जाता है। लेकिन लड़की का मत है कि उसके केश उसके पुरखों से बात करते हैं। अन्त में उसे सामान्य बनाने के लिए एक बूढ़ा उसके केश काटने का हुक्म देता है। लड़की झपटते हुए कहती है, हाथ मत लगाना, ये मेरे केश हैं...इन पर मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। यह कहानी दूसरी स्त्रियों की तरह दिखने की प्रवृत्ति पर चोट करती है।

स्त्रियों को ग़ुलाम या बन्दिशों में जकड़ने की अनेक परिपाटियाँ ईरान में भी देखी जा सकती हैं। ईरान में क्रान्ति के बाद उभरी धार्मिक कट्टरता को लेकर अनेक रचनाकर्मी, फिल्ममेकर, पत्रकारों ने अपने अपने माध्यमों से अपने विरोध को स्वर दिए। ईरानी मूल की मरजिये मेशकिनी बेहद चर्चित फिल्म निर्देशक, स्क्रिप्ट राइटर, सिनेमेटोग्राफर व फिल्म एडीटर हैं। 2000 में बनी 'द डे आई बिकेम ए वुमन' पटकथा के रूप में यह पूरी कहानी मौजूद है। कहानी में दिखाया है कि नौ साल की बच्चियों से किस तरह उनका बचपन और खिलौने तक छीन लिये जाते हैं, उन्हें बताया जाता है कि अब वे बच्ची नहीं रही औरत बन गई हैं।

किन किन बन्दिशों से स्त्रियों को गुजरना पड़ता है यह इस संग्रह की कहानियों में देखा जा सकता है। कुछ कहानियाँ इन बंदिशों से बाहर आने का रास्ता भी खोलती हैं। ब्रिटेन की एक लेखक हैं ब्रिजेट एटकिंसन। उनकी कहानी है 'औरत और साइकिल'। यह कहानी साइकिल के जरिये औरत की आजादी को रेखांकित करती है। माना यही जाता है कि 19वीं सदी के अन्तिम सालों में जब साइकिल चलन में आई, इसके सहारे औरतों ने नई आज़ादी हासिल की। मर्दों ने इस आज़ादी को खतरनाक बताया। कहानी बिल्कुल सहज और सरल सी है। एक दिन नायिका यह ऐलान करती है कि वह अपनी इच्छा से साइकिल से लम्बी दूरी तय करना चाहती है। साइकिल उसके भीतर क्या परिवर्तन लाती है, कैसे उसका कायान्तरण होता है, यह कहानी में बखूबी दिखाया गया है। पति सोचता है कि यह साइकिल पर पता नहीं कहाँ-कहाँ जाती है। एक दिन वह पत्नी का पीछा करता है। वह एक ऐसी जगह पहुँचता है जहाँ से आगे का रास्ता बन्द है। उसे एक पेड़ के पास पत्नी की साइकिल दिखाई पड़ती है। वह पत्नी की खोज करता है तो देखता है कि पत्नी पूरी तन्मयता के साथ नृत्य कर रही है। उसके बदन से लालिमा लिए एक

स्त्री एक कागज़ पर अपनी सहमति देते हुए अपने अँगूठे का निशान बना देती है। नायिका घर पहुँच कर बैग से वह पर्चा निकालती है और दस्तख़त की जगह दर्ज किए गए अँगूठे के निशान को बार बार देखती है। प्रतीकात्मक अर्थों में अपने हक़ और आज़ादी के लिए हर स्त्री को ये दस्तख़त करने होंगे, यही कहानी कहती है। 'स्याही की गमक' को पढ़ना दुनिया भर की स्त्रियों के उस समवेत स्वर को सुनना है, जो आज़ादी और बराबरी की बात कर रही हैं।

आभा फूट रही थी...फिरनी सी गोल गोल...और अपने में पूरी तरह मगन-आज़ाद। पति वहाँ से चुपचाप लौट आता है। स्त्री आज़ादी की वकालत करती इस कहानी में कहीं भी कोई नारा इस्तेमाल नहीं हुआ, यही इस कहानी की ख़ूबसूरती है। संग्रह में लगभग सभी कहानियाँ ऐसी हैं जिनकी धुरी स्त्री है, और जो लैंगिक समानता की वकालत करती हैं। जॉयस कैरोल ओट्स (अमेरिका) की कहाँ हो तुम, हनान अल शेख (लेबनान) की खोना और पाना, जैनेट फ्रेम (न्यूजीलैंड) की खिड़की से बाहर: दो दृश्य, राशिदा अल चारनी (ट्यूनिशिया) की हाशिये का जीवन, लीडिया डेविस (अमेरिका) की मामूली औरतें, जाना फाउर (लेबनान) की आज नहीं, चिमामंडा न्गोजी अदिची (नाइजीरिया) की जादू भरी बातें करने वाला लड़का, जमैका किंकेड (एंटीगुआ) की छोरी, फातिमा युसेफ अल अली (कुवैत) की छड़ी के अलावा लगभग सभी कहानियों में स्त्री विमर्श का समवेत स्वर सुना जा सकता है। इन कहानियों में केवल स्त्री के जीवन के हालात ही नहीं हैं बल्कि आज़ादी के लिए उनका संघर्ष और लड़ाइयाँ भी देखी जा सकती हैं। ऐसी ही एक कहानी है नौशीन अहमदी खुरासानी (ईरान) की अँगूठे का निशान। कहानी में कट्टरपंथी सरकार के भय को चित्रित किया गया है। पाबंदियों का भय, युद्ध का भय। नायिका प्रचार अभियान के दौरान अनेक घरों में जाती है ताकि स्त्रियों से बात करके, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कर सके। वह एक घर में पहुँचती है। घर में उसे एक स्त्री मिलती है। स्त्री बताती है कि उसका पति उसे बहुत मारता पीटता है। वह कहती है तुम कुछ भी नहीं कर पाओगी, कोई भी कुछ नहीं कर सकता, ख़ुदा के सिवाय। स्त्री एक कागज़ पर अपनी सहमति देते हुए अपने अँगूठे का निशान बना देती है। नायिका घर पहुँच कर बैग से वह पर्चा निकालती है और दस्तख़त की जगह दर्ज किए गए अँगूठे के निशान को बार बार देखती है। प्रतीकात्मक अर्थों में अपने हक़ और आज़ादी के लिए हर स्त्री को ये दस्तख़त करने होंगे, यही कहानी कहती है। 'स्याही की गमक' को पढ़ना दुनिया भर की स्त्रियों के उस समवेत स्वर को सुनना है, जो आज़ादी और बराबरी की बात कर रही हैं।

मो.: 9810936423

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

अरुण होता

मज़दूर बस्ती का इतिहास जो कहीं दर्ज नहीं

हिन्दी की कथा दुनिया में प्रज्ञा की चर्चा और प्रशंसा का मूलाधार है कथाकार की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चिन्ता की अभिव्यक्ति। इस विशेषता के चलते वह अपनी कथा-पीढ़ी में विशेष स्थान की अधिकारिणी है। बहरहाल, इस रचनाकार के सद्यतम प्रकाशित उपन्यास 'धर्मपुर लॉज' की विशेषताओं का उद्घाटन करना हमारा मूल उद्देश्य है। इधर सद्य प्रकाशित उपन्यासों में 'धर्मपुर लॉज' का अलग से रेखांकन आवश्यक प्रतीत होता है।

कपड़ा मिल में काम करने वाले मज़दूरों और उनकी बस्ती की जीवनगाथा और संघर्षशीलता को आधार बनाकर इस उपन्यास की रूपरेखा अंकित की गई है। यह सच है कि हिन्दी साहित्य में श्रमिक, मज़दूर, कामगार और मेहनतकश जनजीवन को आधार बनाकर कई उपन्यास लिखे गए हैं। यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, भैरवप्रसाद गुप्त, जगदीशचन्द्र, मैत्रेयी पुष्पा आदि के उपन्यासों में श्रमजीवियों के विविध सन्दर्भ चित्रित हैं। लेकिन 'धर्मपुर लॉज' की मौलिक कथा और उसकी प्रस्तुति का ढंग निराला है। दिल्ली के शक्तिनगर में अवस्थित बिड़ला कपड़ा मिल में काम करने वाले मज़दूरों के बहाने कथाकार ने उनके जीवन के अँधेरे-उजाले, हर्ष-विषाद, सुख-दुख, मान-अपमान, विजय-पराजय, सामर्थ्य-सीमा, विसंगतियों और विडम्बनाओं आदि को मूर्त करने का प्रयास किया है। लेकिन इस उपन्यास को यहाँ तक सीमित करना उपन्यास के साथ अन्याय करना है। उपन्यास के केन्द्र में मज़दूर और मज़दूर बस्ती तो है, लेकिन उसका वितान राष्ट्रीय स्तर तक व्याप्त है जिसे अपनी कथादृष्टि से उपन्यासकार ने सम्भव बनाया है। इसे सर्वजन सम्मानित, दूरदर्शी और लोकप्रिय मज़दूर नेता गुरु राधाकृष्ण के माध्यम से पुष्ट किया गया है।

उपन्यास का पाठक कथा के व्यापक आयतन की कामना करता है। एकरेखीय कथा से निजात पाना भी चाहता है। कहना न होगा कि 'धर्मपुर लॉज' में लगभग बीस-पचीस वर्षों की कालावधि में घटित महत्त्वपूर्ण घटनाओं, परिघटनाओं, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक हलचलों, राष्ट्रीय महत्त्व के परिवर्तनों आदि को आधिकारिक कथा के साथ सम्बद्ध किया गया है। इससे कथा की एकरेखीयता टूटती है और कथा समय की एक वृहत्तर परिधि उज्जीवित होती है। तत्कालीन समय और समाज की धड़कनें साफ़ सुनी जा सकती हैं। अक्सर नई पीढ़ी के रचनाकार केन्द्र और परिधि के कथा सूत्रों को पिरोने में चूक जाते हैं। प्रज्ञा ने इसे बड़ी ख़ूबसूरती के साथ समन्वित किया है।

आपातकाल ने राष्ट्रीय जनजीवन को अत्यन्त गहराई से प्रभावित किया था। इसके परवर्ती समय से लेकर इक्कीसवीं सदी तक के भारत को उक्त उपन्यास में उसकी यथास्थिति के साथ प्रस्तुत किया गया है। ध्यातव्य है कि यह दौर तमाम उथल-पुथल से भरपूर था। उदारीकरण, निजीकरण, औद्योगिकीकरण, भूमंडलीकरण, विश्व बाज़ार, मुक्त व्यापार आदि लुभावने शब्दों से देश को विकास के नाम पर विनाश की ओर धकेलने की पृष्ठभूमि निर्मित हो रही थी। पूँजीवादी व्यवस्था का असली चेहरा सामने आने लगता है। सत्ता और पूँजी की साठ-गाँठ भी इसी कालखंड में सामने आती है। चौरासी का दंगा इसी कालखंड में होता है और निर्मम जनसंहार से मनुष्यता लहूलुहान होती है। मन्दिर-मस्जिद विवाद के बहाने मानव जाति को बाँटना शुरू हो जाता है। इन परिस्थितियों के भयानक दुष्प्रभावों से आमजन ध्वस्त-विध्वस्त होने लगता है। कपड़ा मिलों के उजड़ने अथवा स्थानान्तरित होने के कारण देश की एक बड़ी आबादी जीवन की आधारभूत ज़रूरतों से वंचित होने लगती है। दिल्ली की कपड़ा मिलें बन्द हो जाने से मज़दूरों के जीवन में आने वाली विपदाओं, अनिश्चितताओं और त्रासद स्थितियों को कथा सूत्रों में मनोज्ञ ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

संजय सोनकर, नंदन मंडोरिया और द्विजेन्द्र नाथ

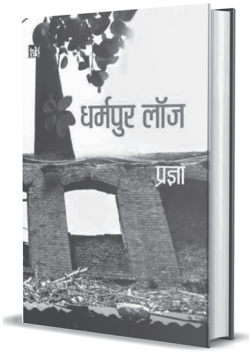

धर्मपुर लॉज
(उपन्यास)
प्रज्ञा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
मूल्य : 500 रुपये/-

त्रिपाठी तीन मित्र हैं। इनकी किशोरावस्था से लेकर कॉलेज, विश्वविद्यालय तथा आगे के जीवन, इनके स्वप्न और संघर्ष, इनकी बस्ती, गली, मुहल्लों के यथार्थ को उपन्यास में चित्रित किया गया है। तीन-तीन पीढ़ियों के जीवन संघर्ष और उसकी खुरदुरी ज़मीन को इस औपन्यासिक कृति की कथाभूमि बनाई गई है। कथा के केन्द्र में कम्युनिस्ट पार्टी के मज़दूर यूनियन का कार्यालय धर्मपुर लॉज है। मज़दूर नेता गुरु राधाकृष्ण की निष्ठा, कर्तव्यपरायणता, संघर्षशीलता, नेतृत्व शक्ति और पूरे इलाक़े के सफल अभिभावकत्व से मज़दूर ही नहीं उनके परिवारों में भी नई प्राणशक्ति ऊर्जस्वित होती है। 1958 से लगातार उनका पार्षद चुना जाना उनकी अपार लोकप्रियता और स्वीकृति का उदाहरण है। हालाँकि परिवर्तित परिस्थितियों और कलुषमयी राजनीति के सामने उनकी हार हो जाती है।

प्रज्ञा की खूबी यह है कि बदलते वक्त की अच्छी तरह से शिनाख्त करती हैं। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बदलावों का गहरे रूप से पर्यवेक्षण और चित्रण करती हैं। तमाम मज़दूर अन्याय का विरोध और न्यायोचित माँगों एवं अधिकार हेतु संघर्ष तो करते ही हैं, नई पीढ़ी के उस संघर्ष में जुड़ जाने से उपन्यास को नई गति मिल जाती है। पूरे उपन्यास में समय स्थिर नहीं, गतिशील है, ठहराव नहीं है। फलस्वरूप पाठक घटनाओं के साथ अपने को शामिल करते हुए कथा विकास का साक्ष्य बनता जाता है। कथावैविध्य के कारण उसे ऊब का शिकार होना नहीं पड़ता है। मज़दूर आन्दोलन और उनके जीवन पर आधारित उपन्यास के लिए पार्टी के घोषणापत्र बन जाने की आशंका बनी रहती है। प्रचार का माध्यम बन जाने की सम्भावना रहती है। लेकिन, 'धर्मपुर लॉज' इन आशंकाओं से मुक्त तो है ही; प्रेम, संघर्ष, अपार जिजीविषा और अदम्य जीवनशक्ति को जीवद्रव्य सिद्ध करने वाला हमारे समय का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास से गुजरकर यह पता चलता है कि इसकी कथा में स्वाभाविकता और विश्वसनीयता पूरी तरह बनी हुई हैं। प्रतीत होता है कि कथाकार ने उत्तरी दिल्ली के उपन्यास में वर्णित इलाक़ों में जाकर पर्याप्त फ़ील्ड वर्क किया है। उसने अपने अनुभव को आधार बनाकर अतीत के बहाने वर्तमान को रचा है और यथार्थ के आधार पर भविष्य का संकेत किया है।

इस उपन्यास में पात्रों ने कथा विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस उपन्यास में मुख्य और गौण पात्रों की संख्या ज़्यादा है जो कथा विकास के लिए आवश्यक हैं। गुरुजी के अलावा तीनों दोस्त— संजय, नंदन, त्रिपाठी, शमीम, राधे, जग्गा, बालू, पंडित बृजेंद्रनाथ त्रिपाठी, सूक्खा सिंह, मुरारीलाल शर्मा, रविन्दर, सुन्दरपाल, टुइयाँ, चंदरभान मंडोरिया, कामरेड योगा टीचर अर्चना बतरा, क्लास टीचर बंसीलाल, कान्ता, मीरा, प्रेमा, सुनीता, सलीम, सूर्यप्रकाश, जनरल मैनेजर गुप्ता, टिल्लू, शुभ्रा, विवेक सिंह, करतार सिंह, आदि तमाम पात्र उपन्यास की संरचना में अपना योगदान करते हैं। गुरुजी, तीनों मित्र, भाई जी, पंडित जी, कान्ता, मीरा, प्रेमा जैसे पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने अपने सरोकार को स्पष्ट किया है। प्रत्येक पात्र का सोच और कर्म उसकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक धारणाओं के अनुरूप होने के कारण स्वाभाविकता, प्रासंगिकता और जीवन्तता परिलक्षित होती है। बाह्य और अन्त:संघर्षों के चित्रण को भी यह उपन्यास समाहित करता है। इस दृष्टि से 'धर्मपुर लॉज' का महत्त्व असंदिग्ध है।

उपन्यास में काल यानी समय की प्रतिध्वनियाँ सुनी जा सकती हैं। मिल मज़दूरों की मौजूदा समस्याओं और परेशानियों से चिन्तित संवेदनशील रचनाकार ने जीवन्त मज़दूर इलाक़ों के उजड़ जाने से अत्यधिक विचलित है। ऐसा प्रतीत होता है, अतीत से सबक लेते हुए वर्तमान की चिन्ताओं से प्रेरित हो भविष्य को आज से कुछ बेहतर बनाने के प्रयत्न में 'धर्मपुर लॉज' की संरचना हुई है। अत: इस उपन्यास में अतीत का चित्रण तो है, लेकिन अतीतजीविता नहीं, उपन्यासकार की भविष्योन्मुखता देखी जा सकती है। इस वैशिष्ट्य के चलते आलोच्य उपन्यास की महत्ता प्रतिपादित होती है।

भले ही उपन्यास में बिड़ला कपड़ा मिल के मज़दूरों और उनके आसपास की बस्तियों आर्यपुरा, शोराकोठी, मलकागंज, मुक़ीमपुरा आदि का चित्रण है। इन बस्तियों के लोगों के अरमान, स्वप्न, रुदन, हास्य और यथार्थ को कथा में उकेरना प्रज्ञा का अभीष्ट है। लेकिन इसे पूरे भारत के मज़दूरों के सन्दर्भ में पढ़ा जा सकता है। मिल के बन्द हो जाने के कारण मज़दूरों के सपने मर जाते हैं। उनकी बदहाली और उनके विस्थापन को राष्ट्रीय सन्दर्भों में समझा जाना चाहिए। इस उपन्यास से गुजरकर यह भी देखा जा सकता है कि भूमंडलीकरण की पृष्ठभूमि कैसे बन रही थी और उसके दुष्परिणामों का आग़ाज़ कैसे हो रहा था। एक गम्भीर राजनीतिक उपन्यास में भाईजी और टिल्लू का प्रकरण 'विट' और ह्यूमर से भर उठता है जिससे पाठक भिन्न कथा रस का स्वाद पाते हैं।

किसी भी रचना के लिए पठनीयता एक अत्यन्त आवश्यक गुण है। यदि रचना कथा-साहित्य के अन्तर्गत हो तो इस गुण का होना ज़रूरी हो जाता है। हालाँकि पठनीयता को भी कुछ लोग आपेक्षिक मान सकते हैं। लेकिन, जो रचना पढ़ी ही न जाए, कुछ ही पन्ने पढ़ने के बाद किताब बन्द हो जाए, भला उसे कैसे सफल माना जा सकता है। उसमें रचनाकार की निहित चिन्ताओं, सन्दर्भों और परिप्रेक्ष्य को कैसे समझा और उद्घाटित किया जा सकता है? इस दृष्टि से 'धर्मपुर लॉज' पूरी तरह से सफल है। किस्सागोई है। भाषा में ज़बरदस्त प्रवाहशीलता है। कथाकार सही शब्द चयन में पूरी तरह सफल रहा है। भाषिक वैविध्य इस उपन्यास की एक बड़ी खूबी है।

'धर्मपुर लॉज' हमारे समय और समाज का तथा हमारे समय और समाज के लिए लिखा गया एक बेहतरीन उपन्यास है। उपन्यासकार ने विभाजनकारी शक्तियों से मुठभेड़ करने वाले जीवन्त पात्रों को उनकी सीमाओं और सामर्थ्य के साथ प्रस्तुत किया है। उसने अपनी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चिन्ता और चेतना को उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। समाज निर्माण में आधारशिला रखने वाले मज़दूरों को सदा सर्वदा इतिहास से बेदख़ल कर दिया जाता रहा है। प्रज्ञा ने उन्हें और उनके अपार संघर्ष को 'धर्मपुर लॉज' के केन्द्र में स्थापित किया है।

मो.: 9434884339

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

यह ग़ज़ल का रचना उत्सव है

ज्ञानप्रकाश विवेक

माधव कौशिक के ग़ज़ल लेखन की निरन्तरता ने उन्हें हमेशा समकालीन ग़ज़ल के केन्द्र में रखा है। इस अथक और निरन्तर ग़ज़ल यात्रा का एक सुफल यह भी हुआ है कि उन्होंने अपना 'ग़ज़ल समय' और अपनी 'ग़ज़ल भाषा' का सृजन किया है। शेर में क्या कहा जाए इस ज़रूरत को वो पहले ही जानते थे, लेकिन शेर में जो कहा जा रहा है, उसे कैसे कहा जाए, इसका संज्ञान भी उन्होंने काफी पहले से लेना शुरू कर दिया था। ग़ज़ल में जो बात कही गई है, वो कैसे कही गई है, इसका महत्त्व होता है, और यही, शेर को अभिव्यक्त करने की सलाहियत, ग़ज़लकार का मुहावरा तय करती है और अन्दाज़े-बयाँ भी।

माधव कौशिक अपने चौदहवें ग़ज़ल संग्रह तक पहुँचते-पहुँचते अपना विशिष्ट मुहावरा तय कर चुके हैं। उनके पास शेरगोई का अपना अन्दाज़े-बयाँ है जिसमें उनके गाढ़े अनुभवों की प्रौढ़ता और विश्वास महसूस होता है।

माधव कौशिक नए समय के इंसान के लिए बेचैन नज़र आते हैं। उनकी ग़ज़ल में, मनुष्य, किसी एलबम में रखी, ज़र्द हो चुकी तस्वीर का नाम नहीं। मनुष्य पाँच तत्त्व (अनासिर) का होने के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। वो जानते हैं कि हर मनुष्य का अपना जिज्ञासाओं का पिरामिड है और चेतना का अबूझ ब्रह्मांड भी।

वो मरकर भी नहीं मरता कभी भी
अगर रिश्ता रूहानी हो गया है।

माधव की ग़ज़लों में अपने समकाल से टकराने की तौफ़ीक है तो उस रूहानियत का भी एक ज़रूरी कोना है। ये शेर यकीनन उसी रूहानियत के और सूफ़ी दर्शन से छनकर आया है—

जीवन को आसान बना
मत इतना सामान बना

शेर को तकनीक की दृष्टि से देखें तो यहाँ— रदीफ़ 'बना' का उस्तादाना प्रयोग हुआ है।

माधव कौशिक एक सामाजिक ग़ज़लकार हैं। अपने क़रीब की दुनिया को वो किसी खिड़की से नहीं देखते, वो उस समाज में ऐसे उतरते हैं जैसे मेले में उल्लास से भरपूर कोई बालक!

इसी नए समाज के नए मनुष्य का जीवन शिल्प और कशमकश, तनाव, आग्रह, सम्बन्धों की टूट फूट, आर्थिक संकट, छोटे होते घर और फैलती जाती महत्त्वाकांक्षाएँ, द्वन्द्व और असुरक्षा के भाव, इन ग़ज़लों के केन्द्र में हैं। ये शेर इन तत्त्वों की तस्दीक करते हैं—

ज़िन्दगी जीने का कुछ ऐसा हुनर है मुझमें
कोई मंजिल भी नहीं फिर भी सफर है मुझमें

मैं सर रखकर जहाँ कुछ देर रो लूँ
नहीं मिलता मुझे काँधा किसी का

मैं ही गायब हो गया हर सीन से
वरना घर में गुमशुदा कुछ भी न था

नए समाज में यह जो गुमशुदगी का एहसास है, इसके पेन ड्राइव में जीवन का सारा कोलाहल और सारी छटपटाती हुई रिक्तताएँ समाई हुई हैं। और इसी व्याकुल होते मनुष्य के लिए माधव कहते हैं— 'हम अपने शेरों में कुछ तो अगन बचा लाए।'

माधव कौशिक के पास एक कशिशभरा माहौल रचने का हुनर है।

उनके उदास करते शेरों में भी वो कशिश है।
शहर के जिस्म से कपड़े उतारने वालो
तुम्हें पता न चला हम कफ़न बचा लाए।

—कफ़न बचाकर लाए, यह जो विडम्बना है, यही हमारे नए वक़्त की उदास करती आत्मकथा है।

माधव कौशिक की ग़ज़लगोई में सामाजिक चेतना ने जहाँ यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है, (लेकिन ग़ज़लों को सपाट नहीं होने दिया) वहीं, उनकी इस ग़ज़लगोई में आत्मचिन्तन, तत्त्वज्ञान के जरिए मन के अबूझ और अदृश्य संसार तक जाने की भी यात्रा की है। जब वो कहते हैं— 'मेरे अन्दर ज़मीं धड़कती है/ साँस लेता है आसमाँ मुझमें—तो यक़ीनन, वो तत्त्वज्ञान के ज़रिए अपने किसी अदृश्य को व्यक्त कर रहे होते हैं, लेकिन वो अदृश्य इतना जटिल है कि अभिव्यक्त

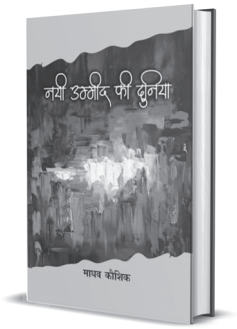

नई उम्मीद की दुनिया
(ग़ज़ल संग्रह)
माधव कौशिक
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
मूल्य : 299 रुपये/-

होता कहाँ है। माधव इस अदृश्य या फिर अकथ और उसके हाशिये की रिक्तता से जितने व्याकुल प्रतीत होते हैं उतने निर्वासित भी—

तू मेरा नाम क्यों नहीं लिखता
अब भी ख़ाली है हाशिया मुझमें

तथा

मुश्किल राम कहानी है
लेकिन हमें सुनानी है

निर्वासित मन की 'मुश्किल राम कहानी', अपने कथन में नहीं, अपने अकथ में ही व्यक्त होती है। ग़ज़ल का संसार तो सांकेतिक संसार होता है। मौलाना शिबली ने भी कहा था कि बात धुँधली हो और वो 'किनाये' यानी संकेतों में व्यक्त हो।

माधव यही तो करते हैं। वो अपनी शेरगोई में सब कुछ स्पष्ट नहीं करते, कुछ अव्यक्त रहने देते हैं। यह प्रतीकात्मकता और मितकथन उनकी शेरगोई का बड़ा हासिल है। वो शब्दों को, मिसरों में गँवाते नहीं, बचाकर रखते हैं। वो जानते हैं, शब्दों की फ़ज़ूलख़र्ची शेर के तनाव को नष्ट कर देती है। इसलिए वो शब्दों के प्रति सतर्क रहते हैं। ग़ज़ल में सारा खेल भावना का और शब्दों का ही होता है। भावना की प्रबलता और शब्दों की सादगी—ग़ज़ल का यह मिज़ाज, ग़ज़ल यात्रा को ध्यान यात्रा में बदल देता है। शेरगोई का यह सलीका माधव कौशिक के पास है।

एक और बात उनकी विशिष्ट है। वो तलाश के कवि हैं। उनके भीतर की जिज्ञासाएँ, एक अतृप्त ग़ज़लकार की वो जिज्ञासाएँ हैं जो उनसे कुछ नई तख़्लीक के लिए उकसाती हैं। वो अपने अश्आर में कुछ जिज्ञासाएँ लेकर, कुछ ढूँढ़ते हुए महसूस होते हैं। लगता है, वो उस रेल के यात्री हैं, जिसके सब मुसाफ़िर उतर चुके हैं। एक अकेला मुसाफिर, उस अकेली बोगी में। उस अकेली बोगी का नाम शायद ज़िन्दगी है। उस तलाश के बाद वो इस नतीजे पर पहुँचते हैं— 'पत्थर की आँखों में सपने पत्थर के।'

माधव की ग़ज़ल का एक शेर है—

कोई तो आके कभी दर पे दस्तकें देगा
इसी उम्मीद पर दिल का मकान है कब से

जीवन का पहला ज़रूरी तत्त्व अगर तलाश है तो दूसरा ज़रूरी तत्त्व इन्तज़ार है। 'दस्तकों की इन्तज़ार'— इसी मुहावरे में पूरी सामाजिक संरचना है कि इन्तज़ार अब भी ख़त्म नहीं हुई, कि दस्तकें देने वाले हाथ अब भी हैं, कि क्षरण के बावजूद रिश्तों की तपिश बची है और आने वाले ज़रूर आएँगे। यह इन्तज़ार, बेहिसी को तोड़ती है। जड़ता को काटती है। यह इन्तज़ार, शायरी का परिसर पैदा करती है। माधव कौशिक की यह ग़ज़लगोई तलाश और इन्तज़ार का ही दूसरा नाम है।

माधव कौशिक की ग़ज़लों में घटनाएँ घटती हैं। पात्रों की ख़ामोशी— में भी कोई गूँजती हुई ध्वनि होती है, वो ध्वनि ही तो संवाद होती है अपने आत्म से, अपने जगत से, अपनी मिट्टी से, बू-बास से, पक्षियों, दरियाओं, नदियों कश्तियों, इंसानों से। यहाँ तक कि बेजान सी कुर्सी और दरवाज़े भी किरदार की शक्ल में अपनी भूमिका निभाते प्रतीत होते हैं—

सभी चीख उठते हैं घर के दरवाज़े
जब सन्नाटा घर को खलने लगता है

मोती समझ के इनको दामन में अपने भर लो
आँसू की शक्ल में भी गिरते हैं यार, सपने

ये जमीं है कि देखती ही नहीं
आसमाँ बन-सँवर के रहता है

खिड़की, रोशनदान, मुँडेरें, ग़म के मारे दरवाज़े
जीती हुई बाज़िर्या, अक्सर, खुद ही हारे दरवाज़े

इन अश्आर में खिड़की, रोशनदान और दरवाज़े जैसे निर्जीव पात्र केन्द्र में हैं तो आसमाँ, ज़मीन, आँसू, सपने और घर भी एक किरदार की तरह, इंसानी जीवन में तहलील रहते हैं, जिनका हमें एहसास नहीं होता और इसका एहसास माधव कौशिक कराते हैं।

देखा जाए तो शब्द साधारण ही होते हैं। लेकिन रचयिता अपनी फनकारी और सृजन शक्ति से उन्हें न केवल गरिमा प्रदान करता है, बल्कि अर्थवान भी बनाता है। इसलिए शब्द से अर्थ अलग नहीं होते। वो शब्दों में पिन्हा होते हैं। हम जब माधव कौशिक की ग़ज़लें पढ़ते हैं तो रफ़्ता रफ़्ता, शब्द, ख़ुद अर्थ बनकर, खुलने लगते हैं। शेर कहने की यह एक तरकीब होती है कि शेर का पूरा अर्थ 'काफ़िये' पर आकर व्यक्त हो। अर्थ की गूँज कुछ पल बनी रहे। 'रदीफ़' उस गूँज को ज़िन्दा रखे और बिखरने न दे। जैसे कि यह सादगी से भरा शेर—

घर से बाहर मिलता हूँ
घर के अन्दर रहकर भी।

पहले मिसरे में एक बात पैदा की गई है। उत्सुकता-सी है। आख़िर शायर कहना क्या चाहता है ? यह बात दूसरे मिसरे में खुलती है— अर्थ के रूप में।

एक और शेर है—

ऐसे माहौल में भी ज़िन्दा हूँ
इससे बढ़कर तो इम्तेहान नहीं

पहले मिसरे में विचार के लिए ज़मीन तैयार की गई है। लेकिन अर्थ का विस्फोट दूसरे मिसरे के आख़िर में होता है। जहाँ काफ़िया है— इम्तेहान। इम्तेहान ही मानीखेज़ है। यह शब्द है और यह अर्थ भी है। पूरा शेर अपनी सम्पूर्णता के साथ यहाँ गूँजता है।

दरवाज़ा लफ़्ज़ माधव कौशिक की ग़ज़लों में बार-बार आता है। वो प्रतीकात्मक है। उसमें अनेक अर्थ हैं। दरवाज़ा कशिश का नाम है तो डोर क्लोज़र संस्कृति ने दरवाज़े की भूमिका ही बदल दी है। माधव, दरवाज़े और खिड़की के बीच, घर का जो तसव्वुर गढ़ते हैं उसमें हैरानी है और जीवनराग भी—

न दरवाज़े मुहब्बत के न कोई प्यार की खिड़की
ज़मीं की कोख से जाने ये कैसे घर निकल आया।

पाब्लो नेरूदा ने कहा था कि कविता आदमी के भीतर से निकली

शेष पृष्ठ 93 पर

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

योगिता यादव

घर बचाने की ज़िद की कहानियाँ

घर एक विराट शब्द है। इसे कई अर्थों और सन्दर्भ में प्रयोग किया जा सकता है। एक 'घर' में रहते हुए भी यह हर एक के लिए कुछ अलग अनुभूति रखता है। कुछ लोगों के लिए जहाँ ये थककर सुस्ताने और आराम करने की जगह है वहीं कुछ के लिए यह प्रेम और वात्सल्य की आश्रय स्थली है। खासतौर से स्त्रियों के लिए तो यह बहुअर्थी है। पीढ़ियों तक स्त्रियों की दुनिया इसी घर के भीतर सिमटी रही है। उसने पूरे मनोयोग से इसे सजाया, सँवारा और विकसित किया है। ये उसके भीतर का घर ही है कि ड्योढ़ी से बाहर निकलकर भी उसके ख्यालों और उसकी फिक्र में घर ही रहता है। परिवार अगर इस दुनिया की प्रारम्भिक और सबसे छोटी इकाई है, तो उस परिवार को अपनी गोद में बैठाकर दुलारने वाला घर ही है। स्त्री के लिए ये उसकी भावनाओं, उम्मीदों और सपनों का एक ऐसा ठिकाना है जहाँ वह खर्च भी होती है और खुद को खोजती भी है। ये उसके पाने और खोने का साझा स्थान है। स्त्री अपनी तमाम उर्जा और सपने इस घर पर न्यौछावर कर सकती है। वह तो इसे हर हालत में सँभाले रखना चाहती है। चुनौतियों, समस्याओं और प्रलयकारी समय में भी वह सबसे पहले घर ही बचाना चाहती है।

व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ते हुए जब एक स्त्री की सोच और चिन्ताओं का दायरा विस्तृत होता है तब उसका घर भी विस्तार पाने लगता है। फिर उसका घर केवल उसके अपने परिवार का ही घर नहीं होता, बल्कि एक पूरा समुदाय, एक पूरा वर्ग, एक समाज और एक पूरा देश उसका अपना घर हो जाता है। पहचान के एक साझा सूत्र में बंधने वाले उस वर्ग, समुदाय, समाज और देश के लोग उसके अपने परिवार के सदस्य हो जाते हैं। अनिलप्रभा कुमार की किताब 'कतार से कटा घर' एक स्त्री (रचनाकार) के द्वारा घर को बचाने की विराट कोशिश का संकलन है। यहाँ बदले हुए समय में उसकी चुनौतियाँ बदलती हैं तो उसे बचाने की उसकी कोशिश भी बदल जाती है। पर हर कोशिश के मूल में रहती है घर को बचाने की ही पवित्र आकांक्षा। यहां लेखिका के लिए घर केवल चारदिवारी पर पड़ी हुई छत भर नहीं है, बल्कि वह एक ऐसी आश्रय स्थली है जहाँ हर व्यक्ति अपनी नेकियों,नाकामियों, गुण, कमजोरियों, सपनों और पसन्द के साथ रह सके।

कतार से कटा घर
(कहानी संग्रह)
अनिलप्रभा कुमार
भावना प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : 350 रुपये/-

अनिलप्रभा कुमार अमेरिका में रहती हैं। अमेरिका में रहकर भी हिन्दी सेवा करती रही हैं। इससे पहले वर्ष 2012 में उनका कहानी संग्रह 'बहता पानी' प्रकाशित हो चुका है। इस तरह यह उनका दूसरा कहानी संग्रह है जबकि एक कविता संग्रह भी उनका 'उजाले की कसम' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी भाषा अनिल प्रभा कुमार के लिए अपने देश से जुड़े रहने का एक माध्यम भी है। हिन्दी कहानियाँ उनके इस पुल को और सजाती-सँवारती हैं। भावना प्रकाशन से प्रकाशित प्रस्तुत कहानी संग्रह 'कतार से कटा घर' में कुल दस कहानियाँ हैं। दसों कहानियाँ अपनी भाषा, शैली और विषय में अलग-अलग आस्वाद लिए हुए हैं। वे अमेरिका में रह रहीं हैं। पर ऐसा नहीं है कि उनसे देश छूट गया है। देश के मोह में वे ऐसी अतिशय भावुक भी नहीं हो गई हैं कि अपने रहने का ये नया देश उन्हें परदेस लगने लगे। बल्कि दोनों ही देशों को उनकी मनुष्यगत भावनाएं पूरी आत्मीयता से छूती और परखती हैं। शीर्षक कहानी को ही लें। 'कतार से कटा घर' एक ऐसे बच्चे की कहानी है जो समलैंगिक जोड़े की संतान है। सामान्य घरों की कतार से कटा हुआ यह एक ऐसा घर है जहाँ एक माँ और पिताजी नहीं बल्कि दो माँएँ हैं। इस बच्चे की बेचैनी में वह वे तमाम सवाल करती हैं जो परम्परागत परिवारों में बँधे लोग समलैंगिक सम्बन्धों के बारे में करते हैं।

'बस पाँच मिनट', 'बेमौसम की बर्फ', 'उसका मरना', 'दीवार के पार', 'वायवी', 'ऐसे तो नहीं', 'जब मन्दिर ढहते हैं', 'मौन राग' और 'महानगर में ही कहीं' संग्रह की अन्य कहानियाँ हैं। जो कहीं बीमार बेटी के लिए, कहीं कामकाजी मां के इंतजार में बैठे बच्चों और कहीं धर्म के पाखंडियों के बीच खुद को और अपने परिवार को बचाती संघर्षरत स्त्री की वही कोशिशें हैं, जिनमें वह अपने घर को हर बला से सुरक्षित रखना चाहती है। घर को बचाने की ये कोशिशें ही दुनिया भर में मनुष्यगत भावनाओं को बचाकर रखने में अहम भूमिका अदा करेंगी।

मो.: 9599096226

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

यथार्थ और फैंटेसी की विरल कहानियाँ

रमेश अनुपम

दिव्या विजय का सद्य: प्रकाशित कहानी-संग्रह 'सगबग मन' भी उनके पहले संग्रह में संग्रहीत कहानियों की स्मृतियों को ताजा कर देता है। इस संग्रह में दिव्या विजय की नौ कहानियाँ संग्रहीत हैं, लेकिन 'सगबग मन' नाम से कोई कहानी इस संग्रह में नहीं है।

इस संग्रह में दिव्या विजय की एक कहानी है 'महानगर की एक रात' जिसकी काफी चर्चा इन दिनों हुई है। यह कहानी एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो नौकरी पेशा है। वह नौकरी के चलते एक जरूरी मीटिंग में शामिल होने के लिए महानगर आई हुई है। मीटिंग समाप्त होते-होते रात के बारह बज जाते हैं। उसे इतनी रात को अकेले ही अपने होटल तक लौटना पड़ता है। मीटिंग खत्म होने के बाद वह किसी पुरुष मित्र को होटल तक छोड़ने के लिए भी कह सकती थी पर इस कहानी की नायिका अनन्या भारतीय पुरुषों की मानसिकता से भली भांति परिचित है।

इस कहानी में अनन्या के भीतर चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण दिव्या विजय ने जिस बखूबी और गंभीरता के साथ किया है, वह सम्पूर्ण भारतीय स्त्री की मन:स्थिति को प्रकट करने के लिए पर्याप्त है। ''उसने अपने आप से कई बार सवाल किया कि क्या यह बात उसके लिए इतना मायने रखती है? अगर हाँ तो क्यों? क्या वह भी शरीर को पवित्रता का परिचायक मानती है। न, वह ऐसा तो नहीं मानती। क्या उस रात वह बलात्कार से डर रही थी या बलात्कार के दौरान हो सकने वाली हिंसा से?''

'काचर' कहानी में रतनी के माध्यम से दिव्या विजय एक ऐसी निम्नवर्गीय स्त्री की छवि को गढ़ती है, जिसमें अद्भुत जिजीविषा एवं संघर्ष की अदम्य क्षमता है। इसी बहाने दिव्या विजय राजस्थान की निम्नवर्गीय स्त्रियों के जीवन संघर्ष तथा उनके टूटते बिखरते हुए सपनों को अपनी एक अलग शैली में प्रस्तुत करती है, वह इस कहानी को उनकी ही अन्य कहानियों से अलग हटकर देखने की माँग करती है।

दिव्या ने अपने इस संग्रह की एक कहानी 'यूँ तो प्रेमी पचहत्तर हमारे' में स्त्री के मन में पलने वाले स्वप्न और मुक्ति की कामना को एक नए रूप में देखने की कोशिश की है। इस कहानी में कहानी के कथानक का केन्द्र थाईलैंड की राजधानी बैंकाक है। मध्यवर्गीय परिवार से संबंध रखने वाली रेखा शादी के पश्चात् अपने पति गोविंद के साथ घूमने फिरने के लिए बैंकाक जाती है।

बैंकाक में टैक्सी में घुमते हुए टैक्सी ड्राइवर उन्हें गोगो डान्स के बारे में बताता है। होटल में सामान रखने के बाद रेखा की जिद के चलते गोविंद उसे बैंकाक का सुप्रसिद्ध इलाका 'नाना स्ट्रीट' जो गोगो बार के लिए प्रसिद्ध है, ले जाता है। 'नाना स्ट्रीट' में आकर रेखा हतप्रभ रह जाती है। यह उसके लिए एक नई दुनिया है जहाँ चारों ओर उन्मुक्तता का वातावरण है। स्त्री और पुरुष सभी वर्जनाओं से मुक्त हैं।

इस कहानी का अंत दिव्या विजय ने कुछ इस तरह से किया है, ''वह (गोविंद) क्लब के हर हिस्से को देखता है। इधर-उधर नजरें दौड़ाकर पीली साड़ी वाली औरत को खोजने की कोशिश करता है। वहाँ नाचती औरतों में पीली साड़ी तो दिखती है पर उसकी रेखा कहीं नहीं मिलती।''

इस संग्रह की एक अन्य कहानी 'भय मुक्ति भिनसार' एक अबोध प्रेम कथा है। बांग्ला गल्प की तरह ठेठ बंगाली रंगढंग की प्रेम कथा। अल्पवयस्क बंगाली कन्या देवश्री के अन्तर्मन में पनपते हुए प्रेम को दिव्या विजय ने इस कहानी में बांग्ला गल्प की तरह ही बहुत सुन्दर रूपाकार में रचा है। देवश्री के मन में शुभो को लेकर जो प्रेम की कोपलें प्रस्फुटित होती रहती है, जिसे वह स्वयं भी समझ नहीं पाती है। इस कहानी को दिव्या विजय ने बहुत महीन और बारीक संवेदनाओं के तार से बुना है।

सगबग मन
(कहानी संग्रह)
दिव्या विजय
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
मूल्य : 240 रुपये/-

इस संग्रह की अन्य कहानी 'मगरिबी अंधेरे' नताशा और श्लोक के बहाने एक ऐसी अंधेरी और उजली दुनिया की कहानी है, जिसमें जादुई फैण्टेसी को यथार्थ के साथ मिलाकर गूँथा गया है। यह एक ऐसी दुनिया की कहानी भी है, जो जितनी दृश्यमान है उतनी ही अदृश्य भी। दिव्या विजय इस कहानी में अपने इस जादुई कथानक को जिस जादुई रूपविधान में विन्यस्त करती है, वह पाठक के कौतुहल को एक चरम तक ले जाती है। इस कहानी की नायिका नताशा एक ऐसी एडवेंचर पसंद लड़की है।

यह कहानी जितनी जीवन की है उतनी ही मृत्यु की

भी। जीवन और मृत्यु की अनेक अबूझ पहेलियों को जिस तरह से अपनी इस कहानी में दिव्या विजय ने बूझने तथा न बूझने की जो कोशिश की है। वह इस कहानी को हिंदी की एक विशिष्ट कहानी बना देती है।

यह अफसाना किसी दिलचस्प फसाने से कम नहीं है। इस कहानी को दिव्या विजय ने जिन महीन शब्दों से बुना है, उसमें अनेक ऐसे रंग और बिम्ब छिपे हुए हैं, जो बहुत आसानी से दिखाई नहीं देते हैं। इसलिए उनकी कहानियों को सरसरी निगाह से पढ़ने से कहीं अधिक उनमें डूबना आवश्यक हो जाता है। इस कहानी में शब्द किसी संगीत की लय की तरह देर तक हमारे भीग्र गूँजते रहते हैं। उनकी भाषा में निहित काव्यात्मक संवेदना इस कहानी की सबसे बड़ी शक्ति है। वाक्य की पंक्तियों में छिपे हुए मौन का भी इस कहानी में अपना एक अलग और गहरा अर्थ है।

इस संग्रह में 'पियरा गई बेला स्वंजन की', 'वर्जिन गिफ्ट' तथा 'समानान्तर रेखाएँ' स्त्री की मुक्ति की आकांक्षा को सर्वथा एक नए रूप में प्रस्तुत करने वाली कहानियाँ है। दिव्या विजय की इस संग्रह में संग्रहीत कहानी 'यारेगार' देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करने वाली एक अलग भाव और संवेदना की एक असाधारण है। यह कहानी दिव्या विजय की वैश्विक चिंता और वृहत्तर मानवीय संवेदना का भी परिचायक है। काबुल के समय और समाज में धंसकर एक अद्वितीय कथा का सृजन हिंदी के सीमित कथा संसार को भी विस्तार देता है।

इस कहानी में काबुल के हामिद और अफशीन के परिवार में तीन छोटे बच्चे हैं दो बेटे फरहाद और अली तथा एक बेटी शीर। फरहाद और अली दोनों बच्चों को पतंग उड़ाने का शौक हैं, पर कट्टर तालिबानियों के चलते काबुल में पतंग उड़ाना भी किसी जुर्म से कम नहीं हैं।

तालिबानियों को न बच्चों का पतंग उड़ाना पसंद है और न ही लड़कियों का स्कूल जाना। वहां आठ साल से बड़ी लड़कियों का स्कूल जाना मना है। इस प्रतिबंध के चलते शीर स्कूल नहीं जा पाती है और फरहाद, अली उन्मुक्त आकाश में अपनी पतंग नहीं उड़ा पाते हैं। तालिबान जैसे कट्टरपन्थी इस्लामिक संगठन तथा इस तरह के अन्य कट्टरपन्थी और धार्मिक संगठन का पहला निशाना बच्चे और औरत ही होती है।

दिसम्बर सन् 1996 के काबुल का परिवेश इस कहानी के केन्द्र में है। लेखिका इस कहानी में यह जानकारी भी पाठकों को देती हैं कि कन्धार से चलकर तालिबानी तब तक काबुल पहुँच चुके थे। उस समय काबुल के बहुत सारे लोगों ने उनका इस्तकबाल किया था। उन्हें इस कट्टरपन्थी संगठन से बेहतरी की उम्मीद थी। जैसा कि हर धार्मिक या मजहबी संगठनों से बहुसंख्यक वर्ग को होता है। उन्हें लग रहा था कि कम्युनिस्ट और मुजाहिद्दीनों ने जिस तरह से मुल्क का बेड़ा गर्क किया था वह अब खुश दिनों में बदल जाएगा। वैसे भी हर देश में बहुतायत जनता धर्म और मजहब के षड्यंत्रों का शिकार जाने-अनजाने बन ही जाती हैं।

जिन्हें विश्व इतिहास की जानकारी हैं वे जानते है कि सन् 1996 में अफगानिस्तान को किस तरह से तालिबानियों ने अपने कब्जे में ले रखा था। नागरिक स्वाधीनता या प्रजातन्त्र का वहाँ दूर-दूर तक कोई नामोनिशान शेष नहीं बचा था। इस इस्लामिक कट्टरपन्थी संस्था ने अफगानिस्तान में जिस क्रूरता और बर्बरता का परिचय दिया था वह इतिहास की एक शर्मनाक घटना बन चुकी है।

इस कहानी में नूर अहमद जैसा एक महत्त्वपूर्ण पात्र भी है, जो काबुल में पतंगे बनाता और बेचता है। फरहाद और अली नूर चाचा से ही पतंगे लेते हैं। वे बच्चों से बिना अफगानी लिए पतंग दे देते हैं। नूर के पूछने पर कि पतंग कहाँ उड़ाओगे। फरहाद कहता है, ''हमें कुछ महफूज जगहें मालूम हैं। वे इस जमीन पर अपना हक़ भले ही जता लें, आसमान को काबू में कर सकते हैं क्या?''

फरहाद का यह कथन गौर करने लायक है। दुनिया का कोई भी तानाशाह हो जमीन पर अपना हक़ भले ही जता ले पर आसमान तो सबके लिए एक है। यहाँ आसमान विचारों का पर्याय है। जैसे भगत सिंह कहते थे, 'हवाओं में रहेगी मेरे खयालों की बिजली'। इस खयालों की बिजली पर या आसमान पर किसी तानाशाह या तालिबानियों का हक़ कभी नहीं हो सकता है। कहानी आगे बढ़ती है। पतंग लेकर घर लौटते हुए बच्चों को आसिफ़ चचा मिलते हैं, जो गोश्त की दुकान बन्द करने की तैयारी में थे। वे दोनों बच्चों फरहाद और अली को हिदायत देते है कि 'तुम लोग सीधे घर जाओ। बदकारी के जुर्म में आज एक औरत पर पथराव होगा। उस औरत का धड़ जमीन के बीच होगा और सर बाहर। सब उस पर तब तक पत्थर फेकेंगे जब तक वो मर नहीं जाए', आसिफ चचा यह कहना भी नहीं भूलते हैं कि अल्लाह कैसे दिन आ गए।'

यह सन् 1996 के काबुल का चित्रण है। जहां लड़कियों का पढ़ना जुर्म है, स्त्रियों की आजादी के साथ घूमना फिरना और जीना अपराध है। जहां बच्चों का पतंग उड़ाना भी इस्लाम के खिलाफ है। अल्लाह सचमुच काबुल में ये कैसे दिन आ गए थे। नूर अहमद, फरहाद और अली इस कहानी के ऐसे पात्र हैं जो पतंग से मोहब्बत करते हैं और हर हालात में आसमान में पतंग उड़ाने में यकीन रखते हैं। नूर अहमद दोनों बच्चों के लिए 'बाज' नामक पतंग बनाता है। इस कहानी में लेखिका लिखती है बाज याने अफगानिस्तान का 'क़ौमी परिन्दा'। काबुल में पतंग के शौकीन दीवानावार इस बाज को आसमान में उड़ाना सबसे अधिक पसन्द करते हैं। बाज उनकी मोहब्बत और स्वतन्त्रता का पर्याय है।

कहानी जिस तरह से गुलाबी शहर जयपुर से प्रारंभ होती हैं, उसी तरह से उसका अंत भी जयपुर में ही होता है। अद्वैत और निशि के साथ बैठे हुए उस शख्स की निगाह दूर कहीं उफुक (क्षितिज) पर अटकी थी। कहानी के अंत में निशि उससे पूछती है आप कौन है? जिसके जवाब में वह शख्स कहता है, ''बरसों हुए मैं अपना नाम नहीं लेता फिर भी आप चाहें तो मुझे दगाबाज पुकार सकती हैं''।

'निशि को लगता है उसकी आंखों में दूर कही अली और फरहाद के कहकहे थे। शीर के लम्बे सुनहरे उड़ते बाल'। कहानी भले ही यहाँ समाप्त हो जाती है पर हमारे मन में ढ़ेर सारे अनुत्तरित सवालों को छोड़ जाती है।

उनचालीस पृष्ठों की इस सुदीर्घ कहानी में दिव्या विजय ने काबुल का जिस तरह से चित्रण किया है तथा तीन छोटे-छोटे बच्चों के माध्यम से तालिबानियों की बर्बरता को उजागर किया है, वह लेखिका की गहन पर्यवेक्षण, विश्वदृष्टि तथा वैश्विक संवेनशीलता का परिचायक है। मानवीय धरातल पर उन तीनों बच्चों के जीवन को उनके स्वप्न और छोटी-छोटी आकांक्षाओं को लेखिका ने जिस तरह से इस कहानी में उकेरा है, वह अद्भुत है। फरहाद, अली और शीर जैसे अफगानिस्तान के प्रतिनिधि

चरित्र है। जिनके माध्यम से हम मजहबी उन्माद में डूबे हुए काबूल और अफगानिस्तान में हो रहे जुल्म और अत्याचार को बखूबी समझ सकते हैं, जिसके कारण बच्चे, महिलाएँ और कोई भी व्यक्ति स्वयं को सुरक्षित महसूस नहीं कर पा रहा है। इस कहानी में लेखिका ने जैसे उस दौर के अफगानिस्तान को हमारी आँखों के सामने सजीव कर दिया है। यह दिव्या विजय जैसी सचेत लेखिका ही अपनी इस कहानी के माध्यम से सम्भव कर सकती थी।

इस कहानी में 'पतंग' का रूपक बेहद अर्थगर्भित है। इसका सीधा सम्बन्ध अफगानिस्तान में मानवीय मूल्यों और स्वाधीनता की स्थापना से है। 'पतंग' यहां विचारों की स्वतंत्रता का प्रतीक है। 'पतंग' को एक रूपक के रूप में केन्द्र में रखकर इतनी सुन्दर कहानी मेरी जानकारी में हिन्दी में लगभग नहीं है।

बहरहाल 'यारेगार' कहानी जिस तरह से देश और काल की सीमाओं का अतिक्रमण करती है। यथार्थ की ठोस जमीन के साथ फैण्टेसी को अपने साथ लेकर चलती है, वह इस कहानी को हमारे समय की अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं मार्मिक कहानी बना देती है। इस कहानी के शिल्प के जादू को, भाषा के सौन्दर्य को हम अपने भीतर देर तलक खुशबू एवं लय की तरह महसूस कर सकते हैं।

यहाँ यह भी गौरतलब है कि इस तरह की कहानी बहुत आसानी के साथ नहीं लिखी जा सकती है। अपने समय के वैश्विक इतिहास में पूरी तरह से धंसकर, अपने समय की बर्बरता के साथ गहरी मुठभेड़ कर ही इस तरह की वैश्विक संवेदना की कहानी लिखी जा सकती है।

भारत से दूर सन् 1996 में बहुत पीछे जाकर अफगानिस्तान के इतिहास के गलियारों से फरहाद, अली, शीर, मूसा तथा नूर अहमद जैसे असाधारण चरित्रों को पकड़ पाना, उनके साथ एक लम्बी अनथक यात्रा पर निकल पड़ना, कोई साधारण कार्य नहीं है। यह दिव्या विजय जैसी लेखिका ही सम्भव कर सकती थी। जो न जाने कितने दिनों, सप्ताह या महीनों तक इस कहानी को जुलाहे की तरह धीरे-धीरे बुनती रही होंगी।

यह कहानी काबुल की कहानी भर नहीं है, शायद इसका एक सिरा आज के भारत से भी जुड़ती हुई कहीं दिखाई देती है। आज जिस तरह से भारत में मजहबी, फिरकापरस्ती का दौर चल रहा है, उस तरफ भी यह कहानी कहीं इशारा करती हुई दिखाई देती है।

दिव्या विजय के इस संग्रह में संग्रहीत कहानियों को पढ़ते हुए सबसे पहले ध्यान उनकी भाषा के रचाव पर जाता है। उनकी कहानी की बनावट जितनी सुन्दर है, उतनी सुन्दर इसकी बुनावट भी है। वह भाषा को इस तरह अपनी कहानियों में बुनती है जैसे कोई जुलाहा महीनों तन्तुओं में डूबकर कोई महीन और खूबसूरत वस्त्र बुनता है। रूपविधान और भाषा दिव्या विजय की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति है। कहानियों में जिस तरह से वे वैविध्यपूर्ण विषयवस्तुओं का चयन करती हैं और अपने लिए नए-नए अन्तर्वस्तुओं की खोज में किसी कोलम्बस की तरह अपने जलपोत में किसी दुर्गम एवं बीहड़ प्रदेश की यात्रा में निकल पड़ती है, वह हिन्दी कथा साहित्य के लिए एक उपलब्धि है।

दिव्या विजय इस संग्रह की कहानियों में जिस तरह से काव्यात्मक बिम्बों की सृष्टि करती है, रूपक का एक नया इन्द्रजाल गढ़ती है, वह उनकी कहानियों को यथार्थ और फैण्टेसी की एक ऐसी दुनिया में ले जाती हैं जहाँ स्वप्नवत जीवन तथा जीवनवत स्वप्न अपने विविध रंगों और छवियों में एक साथ उपस्थित जान पड़ता है।

दिव्या विजय की कहानियों की सबसे बड़ी शक्ति उसकी भाषा है, जो बेहद महीन संवेदना में गूँथी हुई प्रतीत होती है। यह भाषा इधर की कहानियों में लगभग कम देखने को मिलती हैं। दिव्या विजय की इन कहानियों को किसी एक खांचे या फ्रेम में बाँधकर नहीं देखा जा सकता है। उनकी हर कहानी हिन्दी कहानी की रूढ़ परम्पराओं का विरोध करती हैं और अपना एक अलग कथा मुहावरा गढ़ती हैं। उनकी कहानियों का ओर-छोर देश और काल की सीमाओं से परे हैं।

उनकी कहानियां स्त्री के संघर्ष, स्वप्न, मुक्ति और प्रतिरोध का व्यापक संसार रचने वाली हमारे समय की अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानियां ही नहीं है वरन् हिन्दी साहित्य में एक नए मोड़ या परिवर्तन की सूचक कहानियाँ भी हैं। छोटे-छोटे काव्यात्मक वाक्य विन्यास तथा मित कथन के द्वारा जीवन के प्रेम, संघर्ष, स्वप्न और प्रतिरोध की विरल गाथा को अपनी कहानियों में संभव कर पाना दिव्या विजय जैसी असाधारण कहानी लेखिका के लिए ही संभव है।

'सगबग मन' में संग्रहीत इन नौ कहानियों को पढ़ने के पश्चात् यह सहज ही कहा जा सकता है कि दिव्या विजय की कहानियां हिन्दी कथा साहित्य की किसी विरल उपलब्धि से कम नहीं है। दिव्या विजय हमारे समय की एक ऐसी असाधारण एवं अद्वितीय लेखिका हैं, जिन्होंने हिन्दी गद्य को उसकी नीरसता और एकरसता से उबारकर, नए-नए अन्तर्वस्तुओं के सन्धान के लिए ही नहीं वरन् किस्सागोई का नया वृतान्त रचने के लिए भी प्रेरित किया है।

मो.: 09425202505

पृष्ठ 89 का शेष भाग **यह ग़ज़ल...**

गहरी पुकार है। पुराने समय में मनुष्य ने अन्धकार से सन्धि की थी, अब उसे प्रकाश की व्याख्या करनी होगी।

माधव कौशिक की इस सुदीर्घ ग़ज़ल यात्रा का अवलोकन करें तो महसूस होता है कि जैसे वो प्रकाश के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं। इस प्रकाश की खोज जितनी सामाजिक है उतनी आत्मिक भी। इस अनात्म समय में उनका ग़ज़ल लेखन, मनुष्यता और उसकी संवेदना को बचाए रखने की सच्ची कोशिश है। समय जटिल है। अवाम हताश है। लेकिन माधव कहते हैं— 'उम्मीदों की किरणोंवाला कभी तो सूरज निकलेगा।' यह उम्मीद जैसा तत्त्व, उन साधारण, संघर्ष करते लोगों के लिए है जो जीवन जी नहीं रहे, जीवन जीने की कोशिश कर रहे हैं।

माधव कौशिक, ग़ज़ल जैसी पेचीदा सिन्फ के सीमित परिसर में रहकर भी, अपनी अनुभवी तख़्लीक के जरिए, एक वैचारिक और संवेदनशील माहौल रचते हैं। इसी के ज़रिए मनुष्य की मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताएँ, जीवन चिन्तन को अश्आर में परिभाषित करती हैं।

निस्संग समय के अनामन्त्रित कोलाहल में, माधव कौशिक का ग़ज़ल संग्रह— 'नई उम्मीद की दुनिया', किसी जीवन राग की तरह है और संवेदन लय की तरह भी।

मो.: 09813491654

वरिष्ठ मलयाली कवि अक्कितम अच्युतन नम्बूदिरि 55वें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित

मलयालम के वरिष्ठ कवि अक्कितम अच्युतन नम्बूदिरि को केरल के कुमारन्नलूर में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह पुरस्कार प्राप्त करने वाले अक्कित्तम छठे मलयालम लेखक हैं। यह समारोह उनके निवास 'देवयानम' में कोविड प्रोटोकॉल का पालन करने के साथ आयोजित किया गया। मुख्यमंत्री पिनाराई विजयन ने बैठक का उद्घाटन ऑनलाइन माध्यम से किया। मंत्री ए.के. बालन ने मुख्यमंत्री की ओर से यह सम्मान अक्कितम को सौंपा। कोविड प्रतिबन्ध लागू होने के बाद, केवल 50 लोग इस कार्यक्रम में शामिल हुए।

अक्कितम को 2019 में घोषित 55वें ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए 93 वर्ष की आयु में चुना गया। इस पुरस्कार में 11 लाख रुपये का नकद पुरस्कार और वाग्देवी की कांस्य प्रतिमा भेंट की जाती है। इससे पहले, वर्ष 1995 में यह पुरस्कार एम.टी. वासुदेवन नायर को प्रदान किया जा चुका है जो इसी गाँव से हैं।

पलक्कड़ के मूल निवासी अक्कितम ने मलयालम में 43 से अधिक कृतियों की रचना की है। इरुपथम नुट्टांडिंट इतिहसम' उनकी प्रमुख कृति है। उन्हें 2017 में भारत सरकार के चौथे सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के रचयिता अक्कितम ने केंद्र और केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार और एजुथचन पुरस्कार सहित कई पुरस्कार प्राप्त किये हैं। अक्कितम ने आकाशवाणी के साथ पटकथा लेखक और सम्पादक के रूप में लगभग तीन दशकों तक काम किया था।

दिव्या विजय को 'कृष्ण प्रताप कथा सम्मान-2020' सम्मान

कहानी लेखन के लिए प्रतिष्ठित कृष्ण प्रताप कथा सम्मान इस बार जयपुर की युवा कथाकार दिव्या विजय को ज्ञानपीठ से प्रकाशित उनके संग्रह 'सगबग मन' के लिए दिया जा रहा है। इसके पहले उनका एक और कहानी-संग्रह 'अलगोजे की धुन पर' राजपाल प्रकाशन से आ चुका है। 'सगबग मन' की कहानियों में हमारे बदलते समय का यथार्थ तो है लेकिन आधुनिकता के नाम पर यथार्थवाद की फैशनपरस्ती नहीं है। कहानी होने की आवश्यक शर्त 'कहानीपन' की रक्षा करते हुए इन्होंने अपने भावों और अनुभूतियों को वयस्क और पारदर्शी भाषा में स्वाभाविकता के साथ अभिव्यक्त किया है, जो पढ़ते समय सहज ही पाठक को आकर्षित करता है।

कृष्ण प्रताप कथा सम्मान की निर्णायक समिति की तरफ से इसकी घोषणा करते हुए संयोजक डा. संजय श्रीवास्तव ने बताया कि यह सम्मान श्रीरामानंद सरस्वती पुस्तकालय, जोकहरा; आजमगढ़ में अक्टूबर महीने की निर्धारित तिथि को समारोहपूर्वक प्रदान किया जाएगा। किंतु आयोजन की तिथि कोविड-19 की दशाओं पर निर्भर होगी और प्रतिकूल स्थितियों में इसे आनलाइन भी किया जा सकेगा।

संयोजक ने बताया कि यह सम्मान विगत तीन वर्ष के अंदर प्रकाशित कहानी-संग्रह पर ही प्रदान किया जाता है। इस के लिए हमेशा की तरह इस बार भी कथाकारों, संपादकों, प्रकाशकों एवं पाठकों के माध्यम से प्रविष्टियां आमंत्रित की गयी थीं। इसके बाद प्राप्त कहानी संग्रहों पर विचार करने के लिए वरिष्ठ साहित्यकार भारत भारद्वाज, दिनेश कुमार शुक्ल एवं विभूति नारायण राय की तीन सदस्यीय निर्णायक समिति गठित की गयी जिसने युवा कथाकार दिव्या विजय के कहानी-संग्रह 'सगबग मन' की अनुशंसा की है।

अनुराधा सिंह को सम्मान

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा वर्ष 2018 में प्रकाशित सुपरिचित कवयित्री अनुराधा सिंह के चर्चित कविता संग्रह 'ईश्वर नहीं नींद चाहिए' को हाल ही में वर्ष 2019 के प्रतिष्ठित '15वें शीला सिद्धान्तकर सम्मान' से सम्मानित किया गया है। समकालीन कविता की एक सशक्त हस्ताक्षर अनुराधा सिंह समर्थ अनुवादक व गद्यकार भी हैं। वे मुंबई में रहती हैं।

विदुषी एवं कलाविद् कपिला वात्स्यायन का निधन

पद्मविभूषण और राज्यसभा की मनोनीत सदस्य कपिला वात्स्यायन (92) का दिल्ली में निधन हो गया। वह दक्षिण दिल्ली स्थित गुलमोहर पार्क इलाके में रहती थीं। वह हिंदी के यशस्वी साहित्यकार सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' की पत्नी थीं। कपिला इंडिया इंटरनेशनल सेंटर की आजीवन न्यासी भी थीं। प्रसिद्ध कला एवं नृत्य स्कॉलर कपिला के निधन पर कलाकारों ने शोक जताया है। इंडिया इंटरनेशनल सेंटर पदाधिकारियों ने बताया कि डॉ. कपिला वात्स्यायन 1930-40 के दशक में भारतीय नृत्य संबंधी अनुसंधानों के लिए जीती जागती रिकार्ड की तरह थीं। यह दशक नृत्य संस्थानों के निर्माण का एक दशक था। कपिला न केवल एक नृत्य विद्वान और इतिहासकार थीं, बल्कि भरतनाट्यम और ओडिसी के साथ कथक और मणिपुरी नृत्य विधा में भी पारंगत थीं।

कपिला का जन्म आजादी से पूर्व दिल्ली में 25 दिसंबर, 1928 में हुआ था। डॉ. कपिला वात्स्यायन ने वर्ष 1946 में दिल्ली विश्वविद्यालय के अंतर्गत आने वाले हिंदू कॉलेज से स्नातक व 1948 में इंग्लिश विभाग से स्नातकोत्तर किया था। वह भारतीय संगीत और कला की अच्छी जानकार थीं। संगीत नाटक अकादमी फेलो रह चुकी कपिला वात्स्यायन प्रख्यात नर्तक शम्भू महाराज और प्रख्यात इतिहासकार वासुदेव शरण अग्रवाल की शिष्या भी थीं। सन् 2006 में वो राज्यसभा की मनोनीत सदस्य नियुक्त हुई थीं। वात्स्यायन राष्ट्रीय इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, की संस्थापक सचिव थीं और इंडिया इंटरनेशनल सेंटर की आजीवन न्यासी भी थीं। उन्होंने भारतीय नाट्यशास्त्रऔर भारतीय पारंपरिक कला पर गंभीर पुस्तकें भी लिखी हैं। वह देश में भारतीय कला शास्त्र की आधिकारिक विद्वान मानी जाती थीं।

आलोचक रामनिरंजन परिमलेन्दु का निधन

पुरानी पीढ़ी के गिने चुने अनुसंधानकर्ताओं की तरह नि:स्वार्थ भाव से एकान्त साधना करने वाले अनुसंधानपरक आलोचना के अन्यतम योद्धा रामनिरंजन परिमलेन्दु का विगत 29 सितंबर को सुबह पटना के एक निजी अस्पताल में निधन हो गया। वे बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर के हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद गया में रहकर अपने अध्ययन और अनुसंधान के कार्य में संलग्न थे। पीठ में दर्द की शिकायत होने पर उन्हें एक सप्ताह पहले ही इलाज के लिए पटना लाया गया था। अनुसंधानपरक आलोचना के क्षेत्र में रामनिरंजन परिमलेन्दु का नाम अतुलनीय है। अन्तिम दिनों तक वे निरंतर अनुसंधान के काम में संलग्न थे। उन्होंने अपने अनुसंधान के क्रम में हमेशा मूल सामग्री का ही प्रयोग किया है। उनके निधन से अनुसंधानपरक हिन्दी आलोचना की बड़ी क्षति हुई है। हिन्दी अनुसंधान और आलोचना के क्षेत्र में उनकी महान देन का हम स्मरण करते हैं और उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

कथा यू.के. इंदु शर्मा कथा सम्मान 2015-2019 घोषित

इंदु शर्मा कथा सम्मान की घोषणा की जा चुकी है। वर्ष 2015 से 2019 के लिए पाँच सम्मान भारत के अलग अलग क्षेत्रों को जा रहे हैं। कलकत्ता (पश्चिम बंगाल), दिल्ली, बहादुरगढ़ (हरियाणा), लखनऊ (उत्तर प्रदेश) और जयपुर (राजस्थान)। निर्णायक मण्डल ने रचनाओं की गुणवत्ता एवं लेखकों के योगदान को ध्यान में रखते हुए पूरी ईमानदारी से निर्णय लिया है। अलका सरावगी (जानकीदास तेजपाल मैन्शन -2015), विवेक मिश्र (डॉमिनिक की वापसी-2016), ज्ञानप्रकाश विवेक (डरी हुई लड़की-2017), सुधाकर अदीब (कथा विराट-2018) और मनीषा कुलश्रेष्ठ (मल्लिका-2019) को प्रदान किये जाने की घोषणा की गयी है। ज्ञात हो कि वरिष्ठ कथाकार ज्ञानप्रकाश विवेक का पुरस्कृत उपन्यास 'डरी हुई लड़की' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित है। सभी सम्मानित लेखको को हमारी ओर से बहुत बहुत शुभकामनाएँ।

अमेरिकी कवयित्री लुईस ग्लूक को साहित्य का नोबेल पुरस्कार

साल 2020 का साहित्य का नोबेल पुरस्कार अमेरिकी कवयित्री लुईस ग्लूक को दिया गया है। स्वीडिस एकेडमी ने पुरस्कार की घोषणा करते हुए कहा कि लुईस को उनकी बेमिसाल काव्यात्मक आवाज के लिए यह सम्मान दिया गया है, जो खूबसूरती के साथ व्यक्तिगत अस्तित्व को सार्वभौमिक बनाता है। लुईस येल यूनिवर्सिटी में अंग्रेजी की प्रोफेसर हैं। उनका जन्म 1943 में न्यूयॉर्क में हुआ था।

आलोचना

भारतीय ज्ञानपीठ
ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

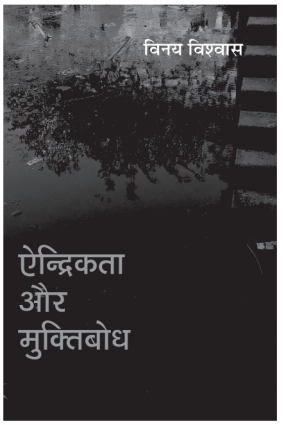

ऐन्द्रिकता और मुक्तिबोध
विनय विश्वास
मूल्य : 350 रु. मात्र

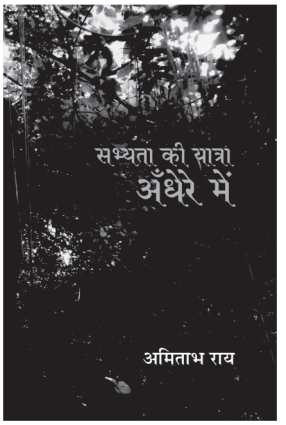

सभ्यता की यात्रा अँधेरे में
अमिताभ राय
मूल्य : 250 रु. मात्र

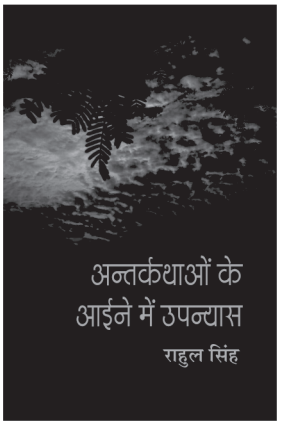

अन्तर्कथाओंके आइने में उपन्यास
राहुल सिंह
मूल्य : 250 रु. मात्र

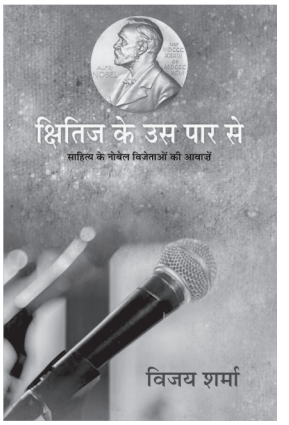

क्षितिज के उस पार से
विजय शर्मा
मूल्य : 380 रु. मात्र

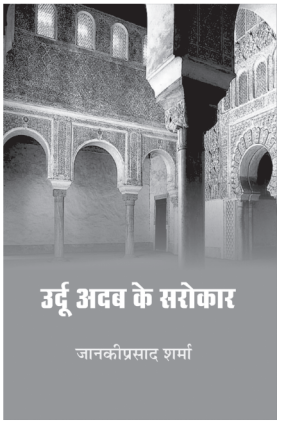

उर्दू अदब के सरोकार
जानकीप्रसाद शर्मा
मूल्य : 450 रु. मात्र

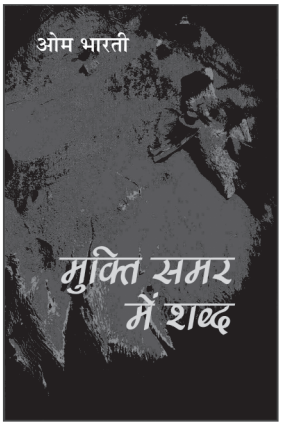

मुक्ति समर में शब्द
ओम भारती
मूल्य : 400 रु. मात्र

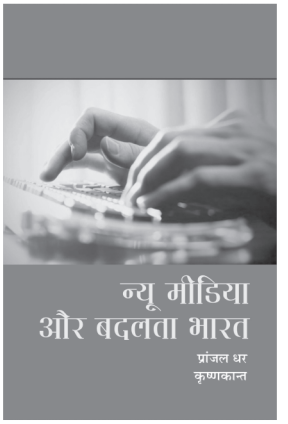

न्यू मीडिया और बदलता भारत
प्रांजल धर, कृष्णकान्त
मूल्य : 350 रु. मात्र

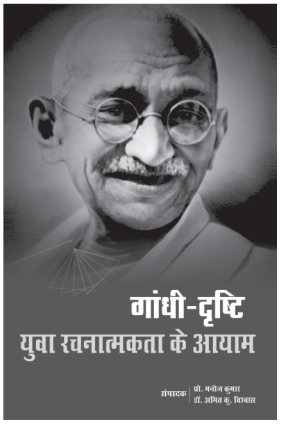

गांधी-दृष्टि युवा रचनात्मकता के आयाम
सम्पा. प्रो. मनोज कुमार, डॉ. अमित विश्वास
मूल्य : 650 रु. मात्र

www.jnanpith.net

Total Pages with Cover : 100
Posting Date : 02-03
Head Post Office : Lodhi Road New Delhi-03

ISSN 2278-2184

Regd. No. RNI : DELHIN / 2003 / 9468
Postal Regd. No. DL(S)-17 / 3089 / 2018-20

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित हिन्दी साहित्यकारों की प्रमुख पुस्तकें

भारतीय ज्ञानपीठ ज्ञान गरिमा के 76 वर्ष

केदारनाथ सिंह

कुँवर नारायण

श्रीलाल शुक्ल

अमरकान्त

निर्मल वर्मा

श्रीनरेश मेहता

महादेवी वर्मा

अज्ञेय

रामधारी सिंह दिनकर

सुमित्रानन्दन पंत

केदारनाथ सिंह

केदारनाथ सिंह संचयन (सम्पा.:लीलाधर मंडलोई)	540 रु.

अमरकान्त

अमरकान्त संचयन (रचना-संचयन)	480 रु.
अमरकान्त की सम्पूर्ण कहानियाँ	प्रत्येक खंड 520 रु.

कुँवर नारायण

वाजश्रवा के बहाने (खंड-काव्य) :	180 रु.
आत्मजयी (खंड-काव्य) :	120 रु.
कुमारजीव (कविता-संग्रह) :	250 रु.

निर्मल वर्मा

ग्यारह लम्बी कहानियाँ	330
प्रिय राम (निर्मल वर्मा के पत्र) सम्पा. गगन गिल	130
भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र	195

श्रीनरेश मेहता

पुरुष (काव्य-खण्ड) :	70 रु.
कितना अकेला आकाश (यात्रा-वृत्तान्त) :	40 रु.
चैत्या (कविता-संग्रह) :	150 रु.
एक समर्पित महिला (कहानी-संग्रह) :	100 रु.

महादेवी वर्मा

महादेवी : प्रतिनिधि कविताएँ	200 रु.
महादेवी : प्रतिनिधि गद्य-रचनाएँ	400 रु.

स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय'

कितनी नावों में कितनी बार (कविता-संग्रह) :	120 रु.
आँगन के पार द्वार (कविता-संग्रह) :	100 रु.
अरी ओ करुणा प्रभामय (कविता-संग्रह) :	150 रु.
बावरा अहेरी (कविता-संग्रह) :	70 रु.
अपने-अपने अजनबी (उपन्यास) :	80 रु.
जयदोल (कहानी-संग्रह) : 'अज्ञेय'	120 रु.
एक बूँद सहसा उछली (यात्रा-वृत्तान्त) :	220 रु.
तार सप्तक (कविता-संग्रह) :	175 रु.
दूसरा सप्तक (कविता-संग्रह) :	150 रु.
तीसरा सप्तक (कविता-संग्रह) :	150 रु.
आत्मनेपद (निबन्ध) :	200 रु.
अज्ञेय रचनावली (भाग 1 से भाग 13 तक)	6580 रु.

रामधारी सिंह 'दिनकर'

संचयिता (कविता-संग्रह) :	200 रु.

www.jnanpith.net

प्रकाशक : धर्मपाल तंवर द्वारा भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003 के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित
मुद्रक : चार दिशाएं, जी-39/40, सेक्टर-3, फेज-I, नोएडा (उ.प्र.) **सम्पादक : मधुसूदन आनन्द**